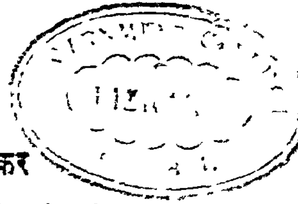


वैदिक व्याख्यान माला — ३१ वां व्याख्यान

वैदिक समयके

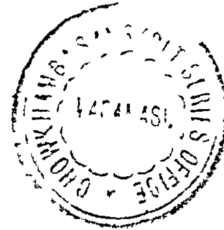
सैन्यकी शिक्षा और रचना



लेखक

पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

अध्यक्ष- स्वाध्यायमण्डल, साहित्यवाचस्पति, गीतालंकार



स्वाध्याय-मण्डल, पारडी (सूरत)

मूल्य छः आने

ॐ

वैदिक समयके
सैन्यकी शिक्षा और रचना

वैदिक समयके ऋषिकालमें सैन्य था, सेनामें वीरोंकी भरती होती थी, उन सबका मिलकर एक गणवेष था, सबके शस्त्र, अस्त्र समान थे आदिका वर्णन इसके पूर्वके व्याख्यानमें हुआ। अब देखना है कि उस सेनाकी रचना कैसी होती थी और उनको शिक्षा कैसी दी जाती थी।

पंक्तिमें सात

इन वीरोंकी पंक्तिमें — प्रत्येक पंक्तिमें सात सात सैनिक रहते थे। सैनिकोंकी पंक्ति सात सातकी होती थी, इस विषयमें ये वचन देखने योग्य हैं—

गणशो हि मरुतः। ताण्ड्य. ब्रा. १९।१४।२
मरुतो गणानां पतयः। तै. ब्रा. ३।११।४।२

'ये मरुत् वीर गणशः रहते हैं, ये मरुत गणोंके पति हैं।' इस तरह वीर मरुतोंका वर्णन गणके साथ होता है। नियत संख्यामें जहां लोग रहते हैं उनको गण कहते हैं। इनकी संख्या सात यह नियत की गई है, देखिये—

सप्त हि मरुतो गणाः। श०। ब्रा. ५।४।३।१७
सप्त गणा वै मरुतः। तै. ब्रा. १।६।२।३
सप्त सप्त हि मारुता गणाः। वा. यजु. १७।८०-८५; ३९।७; श. ब्रा. ९।३।१।२५

मरुतोंका गण अर्थात् संघ सातका होता है। अर्थात् एक कतारमें सात सैनिक होते हैं। इनको उपहार दिया जाता है उस समय सात कटोरियोंमें ही दिया जाता है—

मारुतः सप्तकपालः (पुरोडाशः)।
ताण्ड ब्रा. २१।१०।२३; श० ब्रा० २।५।१।१२; ५।३।१।६

मरुतोंके लिये उपहार सात कटोरियोंमें दिया जाता है। क्योंकि वे सात होते हैं। एक एक वीर एक एक कटोरी लेता है और अपना पुरोडाश लेता है और खाता है। और देखिये—

शृणवत् सुदानवः त्रिसप्तासः मरुतः
स्वादुसंमुदः। अथर्व. १३।१।३
सप्त मे सप्त शाकिनः। ऋ. ५।५२।१७
प्र ये शुम्भन्ते जनयो न सप्तयः। ऋ. १।८५।१
आ वो वहन्तु सप्तयः रघुष्यदः। ऋ. १।८५।६
भेषजस्य वहत सुदानवः यूयं सखायः सप्तयः।
ऋ. ८।२०।२३

"(सु-दानवः) उत्तम दान देनेवाले (त्रि-सप्तासः) तीन गुणा सात अर्थात् इक्कीस मरुत् वीर (स्वादु-संमुदः) प्रेमसे मीठा बर्ताव करनेवाले हमारी बात सुनें। सात गुणा सात अर्थात् एकोनपचास वीर (शाकिनः) बड़े सामर्थ्यवान् हैं। ये (सप्तयः) सात सातकी कतारमें रहनेवाले वीर (जनयः न शुम्भन्ते) स्त्रियोंके समान शोभते हैं। (रघुष्यदः सप्तयः) शीघ्र गतिसे जानेवाले ये वीर आपको ले जांय। (सु-दानवः) उत्तम दान देनेवाले (सप्तयः) सात सातकी कतारोंमें रहनेवाले (सखायः) परस्पर उत्तम मित्र (भेषजस्य वहत) औषधको आपके पास पहुंचा देवें।"

इन मंत्रोंमें 'सप्त, सप्ति, सप्तयः' ये पद हैं। ये यह भाव बता रहे हैं कि ये वीर सात सातकी कतार पंक्ति रचकर आते जाते और घूमते हैं। शत्रुपर हमला करनेके समयमें भी ये सात सातकी पंक्तिमें प्रायः जाते हैं।

ये वीर मरुत् हैं। ये (मा-रुद) रोते नहीं, परंतु (मर्-उत्) मरनेतक उठकर अपना कर्तव्य पालन करते हैं।

प्रजामेंसे आये वीर

ये मरुत् प्रजामेंसे आये वीर हैं अतः इनका वर्णन इस तरह किया मिलता है—

मरुतो ह वै देवविशः। कौ. ब्रा. ७।८
विशो वै मरुतो देवविशः। तां. ब्रा. ११९
मरुतो वै देवानां विशः। ऐ. ब्रा. ११९
देवानां मरुतो विट्। श. ब्रा. ४।५।२।१६
विट् वै मरुतः। तै. ब्रा. ११८।३।३
विशो मरुतः। श. ब्रा. २।५।२।६
कीनाशा आसन् मरुतः सुदानवः।
तै. ब्रा. २।४।८।७
मरुतो वै क्रीडिनः। श. ब्रा. २।५।३।२०
इन्द्रस्य वै मरुतः क्रीडिनः। गो. ब्रा. १।२३

' मरुत् वीर देवोंके प्रजाजन हैं। ये प्रजाजन हैं पर दिव्य प्रजाजन हैं। प्रजाजन ही मरुत् वीर हैं। किसान ही ये मरुत् वीर हैं, पर वे उत्तम दान देनेवाले हैं। मरुत् वीर उत्तम खिलाडी हैं। इन्द्रके साथ खेलनेवाले ये मरुत् वीर हैं।'

इन वचनोंमें यह कहा है कि मरुत् तो वीर सैनिक हैं, पर वे दिव्य प्रजाजन हैं और वे (कीनाशाः) किसान हैं। जिनका नाश नहीं होता वे की-नाश हैं। जो अच्छा किसान, भूमिको कसनेवाला है उसका नाश नहीं होता।

इस वर्णनसे पता चलता है कि वीर मरुत् ये सैनिक (कीनाश) किसान हैं, ये प्रजाजन हैं, कृषक हैं,। प्रजाजनोंमेंसे चुनकर सैनिकोंमें भरती करके वीर सैनिक बनाये हैं। सैनिक प्रजाजनोंमेंसे ही बनते हैं, किसानोंसे ही बनते हैं। और वे ही सैनिकीय शिक्षा सिखानेपर बडे लडनेवाले वीर सैनिक बन जाते हैं। आज भी ऐसा ही हो रहा है और सदा ऐसा ही होता रहेगा।

प्रजाजन ही सैनिक होते हैं और वे सबकी सुरक्षा करते हैं। विशेषकर किसान ही सेनामें भरती होते हैं और वे ही राष्ट्रकी सुरक्षा करनेके लिये युद्धमें लडते हैं।

इन सैनिकोंकी एक एक पंक्ति ७।७ की होती है। इस विषयमें पूर्व स्थानमें पर्याप्त वचन दिये हैं।' सप्त, त्रिःसप्त, सप्त सप्त ' ऐसे पद आये हैं, पूर्व स्थानमें ये दिये हैं। सात, तीन गुणा सात और सात गुणा सात यह इनकी गिनती है। इससे सेनाकी रचना ऐसी होती है—

(पार्श्वरक्षक) <—— सैनिक ——> (पार्श्वरक्षक)

```
× ० ० ० ० ० ० ० ×
× ० ० ० ० ० ० ० ×
× ० ० ० ० ० ० ० ×
× ० ० ० ० ० ० ० ×
× ० ० ० ० ० ० ० ×
× ० ० ० ० ० ० ० ×
× ० ० ० ० ० ० ० ×
```

सात सात सैनिकोंकी सात पंक्तियां यहां बनकर एक ७×७=४९ का एक गण बनता है। इनके दोनों बाजूमें एक एक पार्श्वरक्षक होता था। सात पंक्तियोंमें एक एक रक्षक रहा तो वे ७×२ = १४ पार्श्वरक्षक होते हैं। अर्थात् ४९+१४=६३ हुए। ऋग्वेदमें कहा है—

त्रिः षष्टिः त्वा मरुतो वावृधानाः।
ऋ. ८।९६।८

' तीन और साठ मरुत् वीर तुझे बढाते हैं।'

इस मंत्रपर सायनभाष्य ऐसा है—

" त्रिः त्रयः षष्टिःयुत्तर-संख्याकाः मरुतः। ते च तैत्तिरीयके ' ईदङ् चान्यादृङ् च। (तै. सं. ४।६।५।५) इत्यादिना नवसु गणेषु सप्त सप्त प्रतिपादिताः। तत्रादिताः सप्तगणाः संहितायामाम्नायन्ते ' स्वतवांश्च प्रघासी च सान्तपनश्च गृहमेधी च क्रीडी च शाकी चोज्जेषी ' (वा. सं. १७।७५) इति खैलिकः षष्ठो गणः। ततो ' धुनिश्च ध्वान्तश्च ' (तै. आ. ४।२४) इत्याद्यास्त्रयोऽरण्येऽनुवाक्याः। इत्थं त्रयः षष्टिसंख्याकाः। "

वा० यजु० अ० १७ मंत्र ८० से ८५ तकके मंत्रोंमें तथा ३९।७ में तथा तै० सं० ४।६।५।५; तै० आ० ४।२४ इनमें इन मरुतोंके गुणबोधक नाम दिये हैं ये नाम ऐसे हैं—

मरुत् सैनिकोंके नाम

	१	२	३	४	५	६	७
१	शुक्रज्योतिः	चित्रज्योतिः	सत्यज्योतिः	ज्योतिष्मान्	शुक्रः	ऋतपः	अत्यंहः
२	ईदृङ्	अन्यादृङ्	संदृङ्	प्रतिसंदृङ्	मितः	संमितः	सभरस्
३	ऋतः	सत्यः	ध्रुवः	धरुणः	धर्ता	विधर्ता	विधारयः
४	ऋतजित्	सत्यजित्	सेनजित्	सुषेणः	अन्तिमित्रः	दूरेऽमित्रः	गणः
५	ईदृक्षासः	एतादृक्षासः	सदृक्षासः	प्रतिसदृक्षासः	सुमितासः	संमितासः	सभरसः
६	स्वतवान्	प्रघासी	सांतपनः	गृहमेधी	क्रीडी	शाकी	उज्जेषी
७	उग्रः	भीमः	ध्वान्तः	धुनिः	सासह्वान्	अभियुग्वा	विक्षिपः

ये ४९ हैं। इनमें तै० आ० ४।२४ में अधिक दिये १४ मिलानेसे ६३ होते हैं—

१	ध्वन्	ध्वनयन्	निलिम्पः	विलिम्पः	सहसह्वान्	सहमान्	सहस्वान्
२	सहीयान्	एत्यः	प्रेत्यः	ध्वान्तः	मितः	ध्वनः	धरुणः

ये करीब करीब ६३ नाम हैं जो ऊपर दिये स्थानोंमें मिलते हैं। ये नाम गुणकर्मोंसे दिये गये हैं। सब नामोंके पारिभाषिक अर्थ जानना आज कठिन तथा अशक्य है, पर जो साधारण रीतिसे समझमें आते हैं वे अर्थ नीचे देते हैं। इनके अर्थ सैनिकीय परिभाषाके अनुसार देने चाहिये। वह साहित्य आज हमारे पास नहीं है। तथापि जो अर्थ जैसे समझमें आते हैं वैसे वे दिये हैं। आगे खोज होनेपर अर्थका निश्चय विद्वान् लोग करेंगे—

वीरवाचक नामोंके कुछ अर्थ

अत्यंहाः – (अति-अंहः)– निष्पाप, पाप दूर करनेवाला,
अन्ति-मित्रः– मित्रोंको अपने पास रखनेवाला,
अन्यादृक्– दूसरेके समान दीखनेवाला,
अभियुग्वा– शत्रुपर आक्रमण करनेवाला,
ईदृक्, ईदृक्षासः, एतादृक्षासः– इस तरहका आचरण करनेवाले,
उग्रः– वीर, प्रतापी शूर,
उज्जेषी– उत्तम रीतिसे शत्रुको जीतनेवाला,
ऋतः– सरल, सचा, ठीक तरह रहनेवाला,
ऋतजित्– सरलतासे शत्रुको जीतनेवाला,
ऋतपाः– सत्यपालक,
एत्यः– दौडकर आनेवाला,
क्रीडी– खेलोंमें प्रवीण,
गणः– गणनीय, प्रशंसनीय,
गृहमेधी– घरके लिये यज्ञ करनेवाला,
चित्रज्योतिः– अत्यंत तेजस्वी,
ज्योतिष्मान्– ,, ,,
दूरेऽमित्रः– शत्रुको दूर रखनेवाला,
धरुणः– धारण करनेवाला,
धर्ता– ,, ,,
ध्रुवः– स्थिर, अपना स्थान न छोडनेवाला,
ध्वन्– पुकारनेवाला,
धुनिः– शत्रुको हिलानेवाला,
ध्वान्तः– अन्धेरेमें कार्य करनेवाला,
प्रघासी– जलदी खानेवाला,
प्रतिसंदृक्, प्रतिसंदृक्षासः– ठीक देखनेवाला, प्रत्येकका ठीक निरीक्षण करनेवाला,
प्रेत्यः– जलदी जानेवाला,
भीमः– भयंकर दीखनेवाला,
मितः, मितासः– नाप लिया, प्रस्थापित, नापनेवाला,
विक्षिपः– फैलानेवाला, बिखुरनेवाला,
विलिंपः– तेलकी मालिश करनेवाला,
विधर्ता– विशेष धारण करनेवाला,
विधारय– ,, ,, ,,

शाकी- समर्थ, शक्तिमान्,
शुक्रः- वीर्यवान्,
शुक्रज्योतिः- बलसे तेजस्वी,
सत्यज्योतिः- सच्चाईके कारण तेजस्वी,
सत्यः- सच्चा,
सत्यजित्- सत्यसे जीतनेवाला,
सदृक्षासः- समान दर्शन जिनका है,
सभराः, सभरसः- समान रीतिसे भरणपोषण करनेवाला,
संमितः, सुमितः- अच्छी तरहसे प्रमाणबद्ध,
सहस्वान्, सहमान्, सहसह्वान्, सासह्वान्, सहीयान्- शत्रुको अच्छीतरह परास्त करनेवाला,
स्वतवान्- अपनी शक्तिसे शक्तिमान्,
सान्तपनः- शत्रुको ताप देनेवाला,
सुषेणः- उत्तम सेना जिसके पास है,
सेनजित्- सेनासे शत्रुको जीतनेवाला।

ये एक गणमें रहनेवाले वीरोंके नाम हैं। इनमें कुछ और भी होंगे, अथवा इनमें भी कई पुनरुक्त होंगे। सैनिकीय परिभाषाके अनुसार इनका ठीक ठीक अर्थ क्या है इसका निश्चय करनेका कार्य आज बडा कठिन हुआ है, क्योंकि वह सैनिकीय परिभाषा आज रही नहीं है और ये मंत्र यज्ञप्रक्रियामें किसी न किसी तरह लगा दिये गये हैं। इसलिये यह कार्य विद्वानोंके स्वाधीन करना और भविष्यकालके ऊपर छोडना ही आज हो सकता है।

यहां हमारे पास वीरोंकी सात कतारें हैं। एक एक पंक्तिमें सात वीर हैं। सात कतारोंमें ४९ वीर हुए। और प्रतिपंक्तिमें दोनों ओर एक एक रक्षक- अथवा पार्श्वरक्षक है। सात पंक्तियोंके ये १४ रक्षक हुए। ४९+१४ मिलकर ६३ सैनिक एक संघमें हुए। इनके ये नाम हैं। ये नाम गुणबोधक हैं, अर्थात् ये क्या कार्य करते हैं इसका ज्ञान इनके नामोंके अर्थोंसे समझमें आ सकता है। पर सैनिकीय परिभाषासे इनके अर्थ विदित होने चाहिये।

यह ज्ञान आज किसीके पास नहीं है। तथापि एक गणके ये ६३ सैनिक वीर पृथक् पृथक् कार्य करनेवाले हैं इसमें संदेह नहीं है। इस तरह एक सेनाविभागमें आवश्यक सैनिकीय कार्योंको करनेवाले जितने चाहिये उतने सैनिक उस संघमें रखे जाते थे, अर्थात् प्रत्येक सेनाविभाग अपने कार्य निभानेकी दृष्टिसे स्वयंपूर्ण रहता था।

विभागमें सेनाकी संख्या

सैन्यके छोटे और बडे विभाग होते हैं, पर वे सब ७की संख्यासे विभाजित होने योग्य रहते हैं। शर्ध, व्रात और गण ये तीन विभाग मुख्य हैं।

शर्धं शर्धं व एषां व्रातं व्रातं गणं गणं सुशस्तिभिः। अनुक्रामेम धीतिभिः॥ ऋ. ५।५३।११

(एषां वः) इन तुम्हारे (शर्धं शर्धं) प्रत्येक सेनापथकके साथ (व्रातं व्रातं) सेनासमूहके साथ और (गणं गणं) सैन्यके गणके साथ (सुशस्तिभिः धीतिभिः) उत्तम अनुशासनकी धारणाके साथ हम (अनुक्रामेम) अनुक्रमसे चलते हैं। '

यहां शर्ध, व्रात और गण इन सेनाविभागोंका उल्लेख है और ये शिस्तबद्ध पद्धतिसे तथा अनुशासन शीलताके साथ चलनेके समय अनुसरने योग्य हैं ऐसा भी कहा है।

अक्षौहिणीका सैन्य ऐसा होता है- २१८७० रथ, २१८७०हाथी, ६५६१० घोडे और १०९३५० पदाति सेना मिलकर एक अक्षौहिणी सेना होती है। इसके साथ रथ, हाथी, घोडोंके साथ कई मनुष्य होते हैं। इस सेनाके नाम तथा उनकी संख्या यहां देते हैं—

	गजरथ	अश्व	पदाती
१ पत्तिः	१	३	५
२ सेनामुख	३	९	१५
३ गुल्प	९	२७	४५
४ गण	२७	८१	१३५
५ वाहिनी	८१	२४३	४०५
६ पृतना	२४३	७२९	१२१५
७ चमू	७२९	२१८७	३६४५
८ अनीकिनी	२१८७	६५६१	१०९३५
९ अक्षौहिणी	२१८७०	६५६१०	१०९३५०

पत्तिसे अनीकिनीतक तीन गुणा सेनासमूह हुआ है, अनीकिनीसे दस गुणा अक्षौहिणी है। इस संख्यामें किसी किसीकी संमतिसे न्यूनाधिक भी होता है।

अपने मरुत् वीरोंकी संख्या ७ के अनुपातसे होती है। ७×७=४९ साधारण संघगण संख्या। इनमें पार्श्वरक्षक १४ मिलानेसे ६३ होती है। ६३×७=४४१ और ४९×४९=२४०१, ६३×६३=३९६९ ऐसी संख्या इनके सैनिकोंकी होती है। इस तरह संख्या बढती है। शर्ध, व्रात और गण इनकी संख्या कौनसी हैं यह मंत्रोंके प्रमाणसे निश्चित करना इस समय कठिण है। तथापि वह ७ के अनुपातसे रहेगी यह निश्चित है। अस्तु।

प्रथम ४९ अथवा ६३ का एक संघ इन वीरोंका होता है। ७।७ की सात पंक्तियां और दो बाजूके पार्श्वरक्षक। यह तो एक संघ विभाग है। इससे बढकर इसीके अनुपातसे सैनिकोंकी संख्या बढाई जा सकती है।

प्रतिबंधरहित गति

इस सेनाकी गति प्रतिबंधरहित होती है इस विषयमें एक मंत्र देखिये—

न पर्वता न नद्यो वरन्त वो
यत्राचिध्वं मरुतो गच्छथेदु तत्।
उत द्यावापृथिवी याथना परि
शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ऋ. ५।५५।७

'हे मरुद्वीरो! (न पर्वता) न पर्वत और (न नद्यः) न नदियां (वः वरन्त) आपके मार्गको प्रतिबंध कर सकती हैं, (यत्र आचिध्वं) जहां जाना चाहते हैं (तत् गच्छथ) वहां तुम पहुंचते ही हो। तुम द्यावापृथिवीके ऊपर जहां चाहे वहां (याथन) जाते हो (शुभं यातां) शुभ स्थानको जानेके समय (रथा अनु अवृत्सत) आपके रथ आगे ही बढते हैं। उनको कोई प्रतिबंध नहीं कर सकते।'

इन सैनिकोंको जहां जानेकी इच्छा हो, जहां जानेकी आवश्यकता हो वहां वे जाते हैं। बीचमें पर्वत आगया, नदी आगयी, तालाव आगया, तो इनका मार्ग रुकता नहीं। उस प्रतिबंधको दूर करके सेनाको वहां पहुंचना ही चाहिये।

ऐसी सेनाकी गति होगी, तभी तो सेना वहां जायगी और विजय प्राप्त करेगी। अपनी सेनाकी ऐसी निष्प्रतिबंध गति होगी ऐसा प्रबंध करना चाहिये।

चार प्रकारके मार्ग

सैनिकोंके चार मार्गोंका वर्णन निम्नलिखित मंत्रोंमें आगया है। ये चार मार्ग ये हैं—

आपथयो विपथयोऽन्तस्पथा अनुपथाः।
एतेभिर्मह्यं नामभिः यज्ञं विष्टार ओहते ॥ १० ॥
य ऋष्वा ऋष्टि विद्युतः कवयः सन्ति वेधसः।
तमृषे मारुतं गणं नमस्या रमया गिरा ॥ १३ ॥
सप्त मे सप्त शाकिन एकमेका शता ददुः।
यमुनायामधि श्रुतं उद्राधो गव्यं मृजे
निराधो अश्व्यं मृजे ॥ १७ ॥ ऋ. ५।५२

'(आपथयः) सीधे मार्गसे, (विपथयः) विरुद्ध या प्रतिकूल मार्गसे तथा (अन्तस्पथा) अन्दरके गुप्त मार्गसे, विवरके गुप्त मार्गसे, और (अनुपथाः) सबके लिये अनुकूल मार्गसे (एतेभिः नामभिः) इन प्रसिद्ध मार्गोंसे जानेवाले यज्ञके पास पहुंचते हैं।'

'जो (ऋष्वा) दर्शनीय (ऋष्टि विद्युतः) शस्त्रोंके तेजसे प्रकाशित हुए (कवयः वेधसः) ज्ञानी और विद्वान् हैं, (तं मारुतं गणं) उस मरुद्वीरोंके गणोंको (नमस्या गिरा रमय) नम्रताकी वाणीसे आनंदित करो।'

'(मे शाकिनः सप्त सप्त) वे सामर्थ्यशाली सात सातोंके संघ (एकं एका शता ददुः) एक एकको सौ सौ दान देते रहे। (यमुनायां विश्रुतं) नदीके तीरपर सुप्रसिद्ध (गव्यं राधः उद्मृजे) गोधन दानमें दिया (अश्व्यं राधः निमृजे) घोडोंका धन भी दिया।'

इनमें चार प्रकारके मार्गोंका वर्णन है। ये वीर इन चारों मार्गोंसे जाते हैं और किसी भी मार्गसे इनको प्रतिबंध नहीं होता। इनमें 'अन्तः पथा' अन्दरके गुप्त विवर मार्गका जो उल्लेख है वह विशेष देखने योग्य है। भूमिके अन्दर जो विवर मार्ग होता है वह यह है। यह मार्ग बनाना भी कठिन है, सुरक्षित रखना भी कठिन है और इस मार्गसे जाना भी कठिन है।

पहाडपरसे, पृथ्वीपरसे, भूमिके अन्दरके विवर मार्गसे, नदीपरके मार्गपरसे ऐसे अनेक मार्गोंसे वीर जाते हैं। जनताका संरक्षण करनेके कार्यके लिये इनको ऐसे मार्गोंसे जाना होता है। ये जाते हैं और विजयी होते हैं।

मरुतोंके रथ

ये मरुद्वीर पैदल चलते हैं, वैसे रथोंमें बैठकर भी जाते हैं इस विषयमें निम्नस्थानमें लिखे मंत्र देखने योग्य हैं—

मरुतां रथे शुभे शर्धः अभि प्र गायत। ऋ. १।३७।१

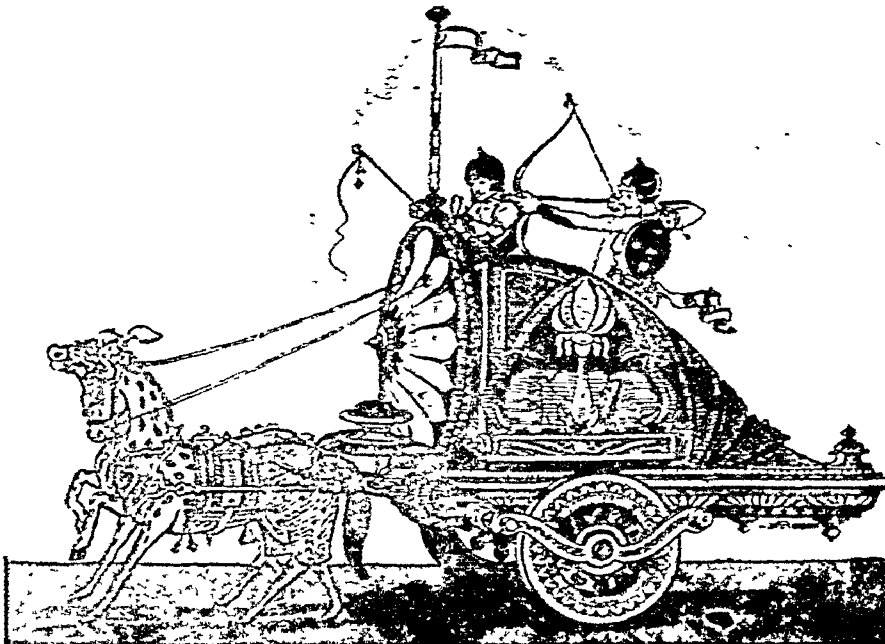
'उत्तम रथमें शोभनेवाला उनका सांघिक बल प्रशंसा करने योग्य है।' तथा और देखिये —

एषां रथाः स्थिराः सुसंस्कृताः । ऋ. १।३८।१२
वृषणश्वेन वृषप्सुना वृषनाभिना रथेन आगतं। ऋ. ८।२०।१०
वन्धुरेषु रथेषु वः आ तस्थौ। ऋ. १।६४।९
विद्युन्मद्भिः स्वर्कैः ऋष्टिमद्भिः अश्वपर्णैः रथेभिः आ यात । ऋ. १।८८।१
वः रथेषु विश्वा भद्रा । ऋ. १।१६६।९
वः अक्षः चक्रा समया वि ववृते । ऋ. १।१६६।९
मरुतो रथेषु अश्वान् आ युञ्जते । ऋ. २।३४।८
रथेषु वस्थुषः एतान् कथा ययुः॥ ऋ. ५।५३।२
युष्माकं रथान् अनु दधे । ऋ. ५।५३।५
शुभं यातां रथा अनु अवृत्सत ॥ ऋ. ५।५५।१

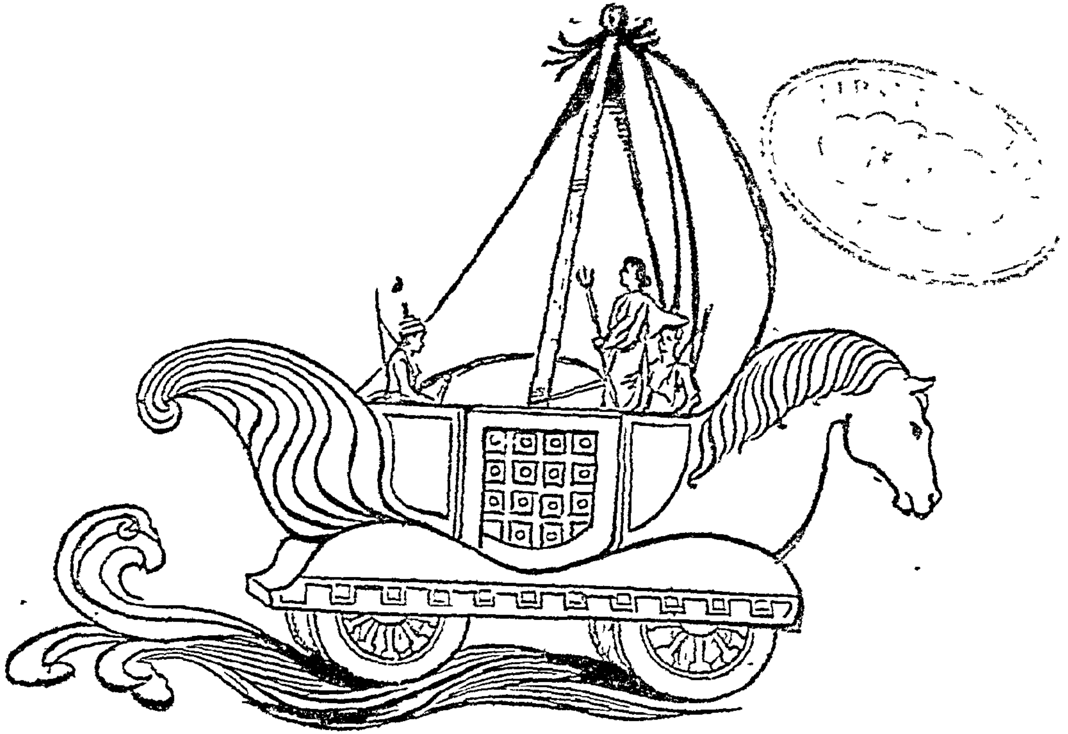
'(एषां रथाः) इन वीरोंके रथ (स्थिराः) स्थिर हैं, अर्थात् सुदृढ हैं और (सुसंस्कृताः) उत्तम संस्कारोंसे सुसंस्कृत हैं। जिनमें बैठनेके या युद्धके स्थान जैसे चाहिये वैसे कारीगरोंने किये हैं।'

'(वृषणश्वेन) बलवान् घोडे इनके रथोंको जोते हैं, (वृषप्सुना) बलवान् बंधन जिनमें लगे हैं और (वृषनाभिना) बलवान् रथ नाभी जिनमें लगी है। ऐसे रथोंसे ये जाते हैं। रथ दो प्रकारके होते हैं। एकमें सेठ लोग बैठकर इधर उधर जाते हैं। ये रथ साधारण बलवान् होते हैं। दूसरे रथ सैनिकीय रथ होते हैं। ये रथ अधिक बलिष्ठ होते हैं। गढोंमेंसे जाना, ऊंचे नीचे स्थानसे जाना, युद्धस्पर्धामें टिकना चाहिये। ऐसे विशेष मजबूत ये रथ होते हैं। इन युद्धके रथोंको घोडे भी विशेष मजबूत जोते जाते हैं। 'मिलिटरी कार' आजकल होते हैं और सादी गाडियां भी होती हैं। इन दोनोंमें जो फरक है वह बतानेके लिये 'वृषणश्व, वृषप्सु, वृषनाभी' ये शब्द यहां प्रयुक्त हुए हैं।

(विद्युन्मद्भिः) बिजलीके समान तेजस्वी (स्वर्कैः) उत्तम प्रदीप्त (ऋष्टिमद्भिः) भाले जिनमें हैं और (अश्वपर्णैः) अश्वोंकी गतिके समान जिनकी गति है। ऐसे रथोंसे ये वीर जाते हैं। यहां 'विद्युन्मद्भिः' इस पदसे रथ बिजलीके समान चमक रहे हैं यह भाव प्रकट हो रहा है। अत्यंत तेजस्वी रथ ये। 'स्वर्कैः' (सु-अर्कैः) उत्तम कान्तिवाले, जिनकी चमक धमक अत्यंत है यह भाव इस पदमें है। 'ऋष्टिमद्भिः' इस पदसे इनके रथोंमें भाले भरपूर रहते ये यह भाव प्रकट हो रहा है। 'अश्वपर्णैः' अश्वके समान गतिमान जिनका पंख है। यह पद विशेष गतिका भाव बता रहा है।



अश्वोंसे चलनेवाले रथ



अश्वपर्ण रथ

अश्वपर्ण रथ

इस मंत्रमें 'अश्व-पर्णैः' यह पद अधिक विचार करने योग्य है। अश्वके स्थानपर 'पर्ण' जिनपर रखा है ऐसा इसका अर्थ है। रथको खींचनेके लिये अश्व अर्थात् घोडे जोतते हैं। उस स्थानपर इनके रथको खींचनेके लिये 'पर्ण' जोडे होते हैं। 'पर्ण' वह होता है कि जो जहाज पर लगाया जाता है और जिसमें हवा भरकर जहाज चलता है। रथ भी ऐसे होते हैं कि जो बडे विस्तीर्ण वालुकामय प्रदेशमें ऐसे कपडेके पर्णोंसे चलते हैं। जहाजके समान रथोंपर ये लगाये जाते हैं इनमें हवा भरती है और उसके वेगसे ये रथ चलते हैं।

सहारा वालुप्रदेशमें, राजपुतानाके वालुके प्रदेशोंमें ऐसे रथ चल सकते हैं। अन्य भूमीपर नहीं चलते। क्योंकि विस्तीर्ण वालुप्रदेशमें हवा समुद्रपर चलती है वैसी चलती है और कपडेमें हवा भरनेसे रथको वेग भी मिलता है।

मरुत् वीरोंके अनेक प्रकारके रथ थे। इनमें ऐसे भी रथ हो सकते हैं। इस विषयकी अधिक खोज होनी चाहिये।

(वः रथेषु विश्वा भद्रा) आपके रथोंमें सब प्रकारके कल्याण करनेवाले पदार्थ भरे रहते हैं। (अक्षः चक्रा) आंस और चक्र (समया विववृते) योग्य समयपर फिरने लगते हैं। ये वीर (शुभं यातां रथाः अनु अवृत्सत) शुभ कार्य करनेके लिये जाते हैं, इसलिये इनके रथोंके पीछे पीछे लोग भी जाते हैं।'

ऐसे इन वीरोंके रथ हैं। इनके रथ अनेक प्रकारके होते हैं। इनमें हिरन जोडे रथ भी थे। जैसा देखिये—

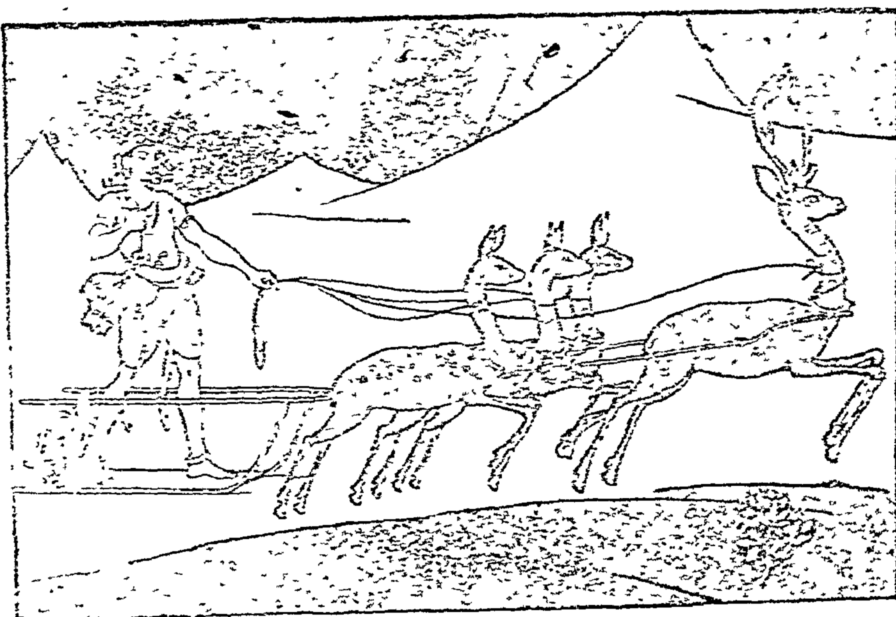
हिरन जोडे रथ

इन वीरोंके रथोंको हिरणियां तथा हिरनोंमेंसे बडे हिरन जोडे जाते थे इस विषयमें ये मंत्र देखने योग्य हैं—

ये पृषतीभिः अजायन्त। ऋ. १।३७।२
रथेषु पृषतीः अयुग्ध्वम्। ऋ. १।३९।६
एषां रथे पृषतीः। ऋ. १।८५।५; ८।७।२८
रथेषु पृषतीः अयुग्ध्वम्। ऋ, १।८५।४
पृषतीभिः पृक्षंयाथ। ऋ. २।३४।३
संमिश्ला पृषतीः अयुक्षत। ऋ. ३।२६।४

रोहितः प्रष्टिः वहति। ऋ. १।३९।६
॥ प्रष्टिः रोहितः वहति। ऋ. ८।७।२८

'पृषती' का अर्थ 'धब्बोंवाली हिरनियाँ' और 'रोहितः प्रष्टिः' का अर्थ 'बडे सींगवाला विशाल हरन' इन दोनोंको रथोंके साथ जोता जाता था, ऐसा इन मंत्रोंको देखनेसे पता चलता है।



हिरनसे चलनेवाले रथ

हिरनकी गाडियां बर्फानी भूमिपर ही चलती हैं। ऊंचे नीचे जमीनपर वे चल नहीं सकती। इन गाडियोंको चक्र नहीं होते इस विषयमें यह मंत्र देखिये—

सुषोमे शर्यणावति आर्जीके पस्त्यावति।
ययुः निचक्रया नरः॥ ऋ. ८।७।२९

(सु-सोमे) जहां उत्तम सोम होता है, वहां शर्यणा नदीके समीप, ऋजीकके समीप चक्ररहित रथसे ये वीर जाते हैं।

जहां उत्तमसे उत्तम सोम होता है वह स्थान १६००० फूट ऊंचाईपर होता है। यहां 'सु-सोम' पद है। इसलिये हलका सोम यहां नहीं कहा है। 'सु-सोम' उत्तमसे उत्तम सोम जहां होता है। वहां ये वीर (नी-चक्रया) चक्ररहित गाडीसे (ययुः) जाते हैं। इतनी ऊंचाईपर बर्फ होता है। ऐसे बर्फमय प्रदेशमें ये वीर हिरनियां और हिरन जोडी हुई चक्रहीन गाडियोंमेंसे जाते हैं।

आज भी बर्फमय प्रदेशमें चक्रहीन रथ जिनको अंग्रेजीमें 'स्लेज' (Sledge) कहते हैं, इन गाडियोंका उपयोग करते हैं। इनको हिरनियां तथा बडे हरिन जोते जाते हैं। ये रथ जल्दी जाते हैं और चक्र न होनेके कारण बर्फपरसे घसीटे हुए खेंचे जाते हैं।

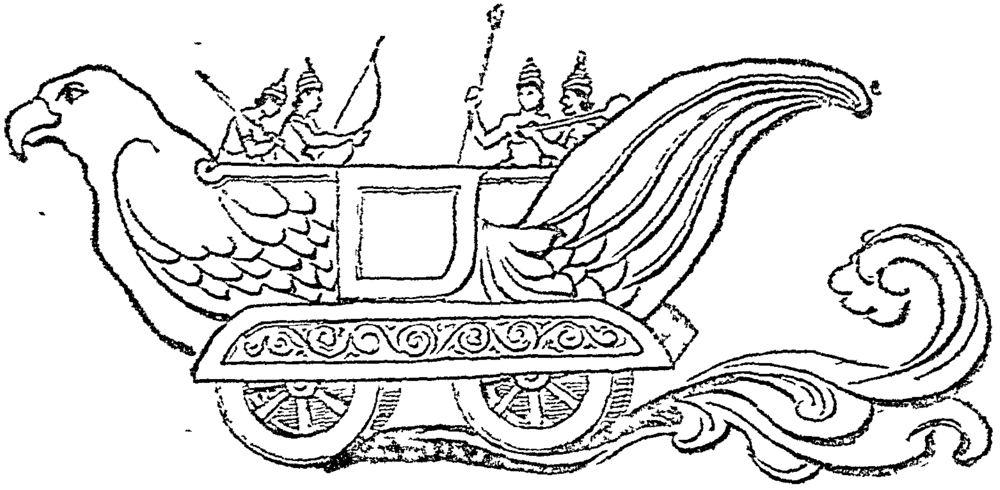
यहांतक इन वीरोंके हरिनोंके द्वारा चलाये जानेवाले रथोंका वर्णन हुआ। यह वर्णन अत्यंत स्पष्ट है इस कारण इसका अधिक विवरण करनेकी आवश्यकता नहीं है। अब इन वीरोंके 'अश्वरहित रथ' का वर्णन देखिये—

अश्वरहित रथ

मरुत् वीरोंका रथ और भी एक है वह अश्वरहित है। देखिये इसका वर्णन यह है—

अनेनो वो मरुतो यामोऽस्तु
अनश्वश्चिद् यमजत्यरथीः।
अनवसो अनभीशू रजस्तूः
वि रोदसी पथ्या याति साधन्॥ ऋ. ६।६६।७

'हे वीरो! आपका यह रथ (अन्-एनः) बिलकुल निर्दोष है। इसको (अन्-अश्वः) घोडे जोते नहीं हैं। घोडोंके विना ही यह रथ (अजति) दौडता है, वेगसे जाता है। (अ-रथीः) उत्तम रथी वीर इसमें न हो तो भी यह चलाया जाता है। उत्तम सारथी न होनेपर भी यह वेगसे चलता है। (अन्-अवसः) जिसको दूसरे पृष्ठरक्षककी आवश्यकता नहीं है। (अन्-अभीशुः) जिसको



अश्वरहित रथ

चलानेके लिये चाबूककी आवश्यकता नहीं है। घोडे अथवा हिरन जोते रहनेपर चाबूककी आवश्यकता रहती है। पर ये पशु जहां रहेंगे नहीं, पर जो रथ कलायन्त्रसे चलाया जाता हो उसके लिये चाबूककी आवश्यकता नहीं रहेगी।

(अनू-अवसः) अवस् रक्षकका नाम है। यह रथ वेगसे चलनेके कारन स्वयं अपना रक्षण करता है। दूसरे रक्षककी आवश्यकता नहीं रहती।

(रजस्-तूः) धूली उडाता हुआ, धूलीको पीछेसे उडाता हुआ (पथ्या साधन् याति) मार्गको साधता हुआ, अर्थात् इधर उधर न जाता हुआ, सीधा मार्गका साधन करके यह रथ चलता है।

इतने विवरनसे (१) घोडोंके रथ, (२) हिरनियोंका रथ, (३) घोडे जिसमें जोते नहीं ऐसे घोडोंके विना ही वेगसे धूलि उडाते हुए चलनेवाले रथ ऐसे रथ इन वीरोंके पास थे ऐसा प्रतीत होता है। आकाशयान भी थे ऐसा दीखता है वे मन्त्र ये हैं—

ते म आहुर्य आययुः उप द्युभिर्विभिर्मदे।
नरो मर्या अरेपसः इमान् पश्यन्निति ष्टुहि॥
ऋ. ५।५३।३

' वे (अरेपसः मर्याः नरः) हे निष्पाप वीर (मे) मेरे पास (द्युभिः विभिः उप आययुः) तेजस्वी पक्षी सदृश यानोंसे आकर (आहुः) कहने लगे कि (इमान् स्तुहि) इन वीरोंकी प्रशंसा कर। '

यहां ' द्युभिः विभिः ' पद है। तेजस्वी पक्षी ऐसा इनका अर्थ है। पक्षिके आकारके तेजस्वी विमान ऐसा भी इसका अर्थ हो सकता है। ' द्युभिः विभिः उप आययुः ' ' तेजस्वी पक्षियोंसे समीप आ गये ' यह इसका सरल अर्थ है। पर पक्षियोंसे समीप आना कैसे हो सकता है। इसलिये पक्षीके आकारवाले विमानसे आना संभव है। तथा—

वयः इव मरुतः केनचित् पथा। ऋ. १।८७।२

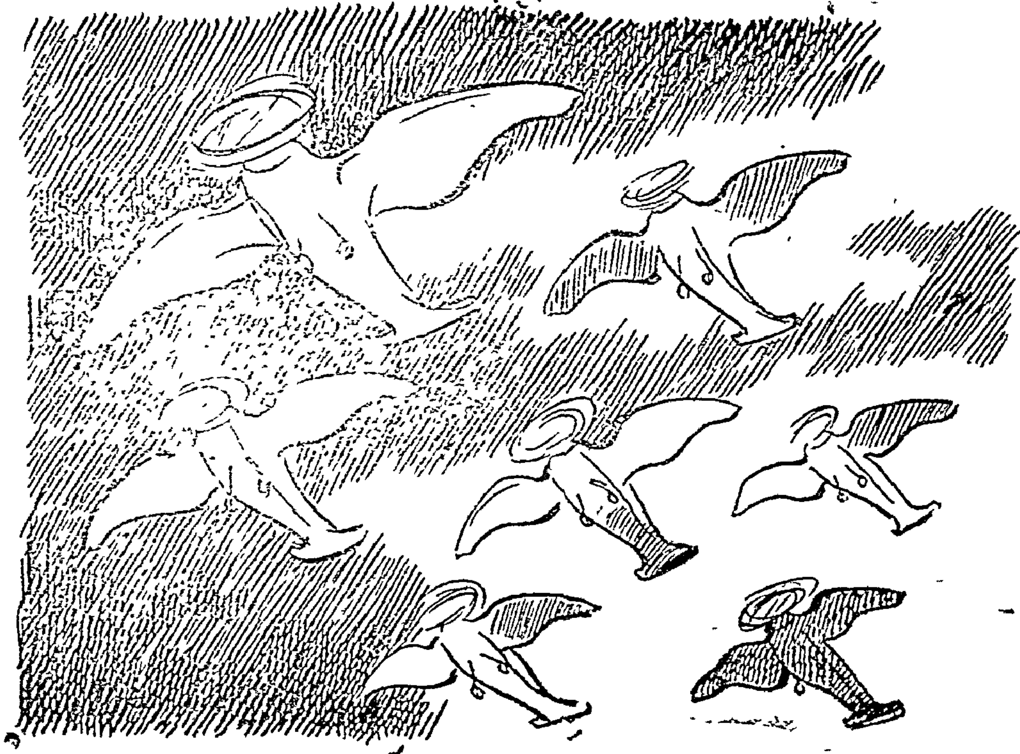
' ये मरुत् वीर (वयः इव) पक्षियोंके समान (केन चित् पथा) किसी भी मार्गसे आते हैं। किसी मार्गसे पक्षियोंके समान आनेका वर्णन यहां है। तथा—

आ विद्युन्मद्भिः मरुतः स्वर्कैः रथेभिः यात ऋष्टिमद्भिरश्वपर्णैः। आ वर्षिष्ठया न इषा वयः न पप्तत सुमायाः॥ ऋ. १।८८।१

(विद्युन्मद्भिः) बिजलीके समान तेजस्वी और (स्वर्कैः) चमकीले तथा (ऋष्टिमद्भिः अश्वपर्णैः) शस्त्रोंसे युक्त और अश्वोंके स्थानपर पर्ण जहां लगे हैं (रथोंसे आयात) आओ। हे (सुमायाः) उत्तम कुशल वीरो! (वयः न पप्तत) पक्षीयोंके समान आओ।

बिजलीके समान तेजस्वी रथ जिनपर अश्वकी गतिके लिये पर्ण लगाये हैं। अश्वपर्णसे ये खींचे जाते हैं, केवल अश्वोंसे नहीं।

इस तरहके संकेतोंसे कोई कह सकते हैं कि इन वीरोंके पास विमान थे। इस समय यह मंत्र देखने योग्य हैं—



मरुद्वीरोंके विमान

वयो न ये श्रेणीः पप्तुरोजसा
अन्तान् दिवो बृहतः सानूनस्परि।
अश्वास एषामुभये यथा विदुः
प्र पर्वतस्य नभनूँरचुच्यवुः। ऋ. ५।५९।७

ये वीर (वयः न) पक्षियोंके समान (श्रेणीः) श्रेणीयां बांधकर (ओजसा) वेगसे (दिवः अन्तान्) आकाशके अन्ततक तथा (बृहतः सानूनः परि) बडे बडे पर्वतोंके शिखरोंपर (परि पप्तु) उडते हैं, पहुंचते हैं। इनके (अश्वासः) घोडे पर्वतोंके टुकडे करके वहांसे (प्र अचुच्यवुः) जलको नीचे गिराते हैं।

इस मंत्रमें आकाशके अन्ततक श्रेणीयाँ पक्षियोंके समान बनाना और उडना, तथा पर्वतोंके शिखरोंपर पहुंचकर शिखरोंको तोडना यह विमानोंके विना नहीं हो सकता। आकाशमें पक्षी पंक्तियां बांधकर घूमते हैं, वैसे ही ये वीर पंक्तियां बनाकर विमानोंमें बैठकर आकाशके अन्ततक भ्रमण करते हैं। विमानोंकी श्रेणियोंसे ही यह वर्णन सार्थ हो सकता है।

इस तरह विमान भी इन वीरोंके पास थे, ऐसा हम कह सकते हैं। पक्षियोंके समान बडे आकाशमें पंक्तियां बांधकर भ्रमण करना हो तो अनेक विमान उनके पास चाहिये इसमें संदेह नहीं है। आकाशके अन्ततक " वयः न श्रेणीः दिवः अन्तान् परिपप्तुः। " पक्षियोंके समान श्रेणीयां या पंक्तियां बनाकर आकाशके अन्ततक भ्रमण करते हैं। यदि यह वर्णन सत्य है तो मरुद्वीरोंकी विमानें थी और वे विमानें आकाशमें श्रेणियोंसे घूमती थी। इसमें संदेह नहीं है। इस विषयमें और प्रमाण हैं वे यहां देखने योग्य है—

यत् अक्तून् वि, अहानि वि, अन्तरिक्षँ वि,
रजांसि वि अजथ, यथा नावः, दुर्गाणि वि,
मरुतो न रिष्यथ। ऋ. ५।५४।४

' जब रात्रीके समय, तथा दिनके समय, अन्तरिक्षमेंसे तथा (रजांसि) रजोलोकमेंसे नौकाओंके समान तुम जाते हो, तब कठिन प्रदेशको पार करते हैं, पर थकते नहीं हैं।'

यहां आकाशमें, अन्तरिक्षमेंसे दिनमें तथा रात्रीमें मरु-

तोंके भ्रमण करनेका उल्लेख स्पष्ट है । जिस तरह नौकासे समुद्र पार करते हैं, उस तरह ये आकाश और अन्तरिक्ष पार करते हैं यह उल्लेख स्पष्ट है । तथा—

उत अन्तरिक्षं ममिरे व्योजसा । ऋ. ५।५५।२

'(ओजसा) अपनी शक्तिसे अन्तरिक्षको घेरते हो ।' यहां अन्तरिक्षको घेरना स्पष्ट लिखा है । तथा—

आ अक्ष्णयावानो वहन्ति अन्तरिक्षेण पततः ।
ऋ. ८।७।३५

'अन्तरिक्षसे (पततः) उडनेवालोंके वाहन (अक्ष्णयावानः) आंखकी गतिसे जानेवाले उठा लेते हैं ।' अन्तरिक्षसे उडनेवाले वाहन शीघ्र गतिसे जाते हैं । अन्तरिक्षमेंसे उडना यहां स्पष्ट है । तथा और देखिये—

आ यात मरुतो दिव आ अन्तरिक्षात् अमात् उत ।
ऋ. ५।५३।८

'हे मरुद्वीरो ! आकाशसे अपरिमित अन्तरिक्षसे इधर आओ ।'

यहां स्पष्ट ही कहा है कि अपरिमित अन्तरिक्षसे यहां आओ । अन्तरिक्षसे आनेका अर्थ ही आकाशयानसे आना है । तथा—

श्येनानिव ध्रुजतः अन्तरिक्षे । ऋ. १।१६५।२

'श्येन पक्षीके समान तुम अन्तरिक्षमें भ्रमण करते हो।' श्येनपक्षी अन्तरिक्षमें ऊपर उडता रहता है, वैसे ये वीर अन्तरिक्षमें उडते हैं । तथा—

ये वावृधन्त पार्थिवा ये उरौ अन्तरिक्षे आ ।
वृजने वा नदीनां सधस्थे वा महः दिवः ॥
ऋ. ५।५२।७

'ये वीर पृथिवीपर, अन्तरिक्षमें, आकाशमें तथा नदियोंके स्थानोंमें बढते हैं ।' अर्थात् जिस तरह पृथ्वीपर ये वीरता दिखाते हैं, उसी तरह अन्तरिक्षमें भी ये वीरता दिखा सकते हैं। अन्तरिक्षमें वीरता दिखाना या अन्तरिक्षमें अपनी शक्तिसे बढना, इसका अर्थ ही यह है कि ये वीर अन्तरिक्षमें भ्रमण करते हैं और वहां शत्रुओंका पराभव कर सकते हैं ।

इससे भी इनके पास सब कठिनाइयां पार करनेके यान थे। जलको पार करनेके लिये नौका है, भूमिपर भ्रमण करनेके लिये घोडोंके रथ है, हिरनोंके रथ हैं तथा विना घोडोंके चलनेवाले भी रथ हैं । आकाशमें जानेके लिये विमान हैं । इसलिये इनकी गति किसी कारण रुकती नहीं ।

मरुत् वीर मनुष्य हैं

कई यहां कहेंगे कि वीर मरुत् देव हैं इसलिये वे जैसा चाहिये वैसा कर सकते हैं । पर ऐसा नहीं है । मरुत् वीर मनुष्य हैं, मर्त्य हैं ऐसा वर्णन वेदमें कई स्थानोंपर है। देखिये—

यूयं मर्तासः स्यातन वः स्तोता अमृतः स्यात् ।
ऋ. १।३८।४

'आप मर्त्य हैं, आपका स्तोता अमर होता है ।' आपका स्तोत्रगान करनेवाला स्तोत्रपाठ करनेसे अमर बनता है ।



वीर मरुत्

रुद्रस्य मर्याः दिवः जज्ञिरे । ऋ. १।६४।२

'रुद्रके ये मर्त्यवीर द्युलोकसे जन्मे हैं।' ये मर्त्य हैं, पर दिव्य वीर हैं। तथा—

मरुतः सगणाः मानुषासः । अथर्व० ७।३७।३

मरुतः विश्वकृष्टयः । ऋ. ३।२६।५

'ये मरुत् वीर अपने गणोंके साथ सबके सब मनुष्य ही हैं। ये मरुत् वीर सब कृषि कर्म करनेवाले कृषक (किसान) हैं।' अर्थात् किसानोंमेंसे ये भरती हुए हैं। तथा—

गृहमेधासः आ गत मरुतः । ऋ. ७।५९।१०

'ये मरुत् वीर गृहस्थी हैं।' अर्थात् ये वीर विवाह करके गृहस्थी बने हैं। इनके गृहस्थी होनेके विषयमें एक दो वेदमंत्र यहां देखने योग्य हैं—

युवानः निमिश्लां पज्रां युवतिं शुभे अस्थापयन्त।
ऋ. १।१६७।६

(युवानः) ये तरुण वीर (निमिश्लां) सहवासमें रहनेवाली (पज्रां) बलवती (युवति) तरुणी पत्नीको (शुभे) शुभ यज्ञकर्ममें रखते हैं। अपनी पत्नी उत्तम यज्ञकर्म करती रहे ऐसा वे करते हैं। तथा—

स्थिरा चित् वृषमनाः अहंयुः सुभागा जनीः वहते । ऋ. १।१६७।७

'(स्थिरा चित्) घरमें स्थिर रहनेवाली, (वृषमना) बलवान् मनवाली (अहंयुः) अपने विषयमें अभिमान धारण करनेवाली (सु-भागाः) सौभाग्यवाली (जनीः वहते) स्त्री गर्भको धारण करती है।' अर्थात् ये वीर गृहस्थ होते हैं, घरमें इनकी स्त्रियां रहती हैं, वह स्त्रियां उत्तम सौभाग्यवती, उत्तम मनवाली, पतिपर अनुरक्त रहनेवाली ऐसी उत्तम रहती हैं। और ये वीर इधर वीरताके कार्य करते हैं। इनके वीरत्वयुक्त कर्मोंको सुनकर उनकी पत्नियां घरमें सानन्द प्रसन्न रहती हैं। और पतिपर प्रेम करती रहती हैं। अर्थात् ये वीर गृहस्थी होते हैं, प्रजापर प्रेम करनेवाले रहते हैं, मातृभूमिपर प्रेम करते हैं। क्योंकि पत्नी और घरमें पुत्र उत्पन्न होनेके कारण उनमें प्रेमका अंकुर विकसित हुआ होता है।

गणका सेनामें महत्त्व

वीर मरुतोंकी सेनामें गणोंका महत्त्व विशेष था। गण गिने हुए या चुने हुए सैनिकोंका नाम था। गणोंमें शामील करनेके समय उनमें विशेष शौर्य, धैर्य, वीर्य, पराक्रम आदि गुण प्रकट होना आवश्यक था। ऐसे श्रेष्ठ वीर गणोंमें लिये जाते थे। इन गणोंके विषयमें ऐसे वर्णन वेदके मंत्रोंमें आते हैं—

आयतां मरुतां गणः । ऋ. १०।१३७।५

मरुत् वीरोंका गण हमारा संरक्षण करे। इस गणका कर्तव्य होता था कि वह प्रजाजनोंका संरक्षण करे। इस कर्तव्य पालनके लिये मरुतोंके गणोंको सदा सर्वदा तैयार ही रहना पडता था। किस समय कोई कार्य करना पडे तो सूचना आते ही ये गण उस कार्यको करनेके लिये सिद्ध और दक्ष रहते थे।

मारुतो हि मरुतां गणः। वा० य० १७।८५;
काठ० १८।३५

तस्यैष मारुतो गणः स एति शिक्याकृतः।
अ० १३।४।८

'मरुतोंका गण वायुवेगसे चलता है। यह मरुतोंका गण छिकेमें बैठा जैसा चलता है।' छिकेमें बैठे मनुष्य जैसे छिकेके साथ जाते हैं वैसे ये मरुद्वीर अपने गणोंके साथ जाते हैं। प्रत्येककी गति अपनी अपनी पृथक् पृथक् नहीं होती परंतु गणके साथ होती है। जहां गण जाता है वहां प्रत्येक जाता है। गणके सब सैनिक छिकेमें बंधे जैसे रहते हैं। उनकी पृथक् सत्ता ही नहीं रहती। ये बिखरे नहीं रहते परंतु संघमें संघटित रहते हैं। इस कारण इनकी विलक्षण शक्ति बडी चढी रहती है। यदि ये छिकेमें बंधे जैसे नहीं रहेंगे तो इनमें यह विलक्षण शक्ति नहीं रहेगी।

मरुतो गणानां पतयः । तै० ३।११।४।२

'मरुत् वीर गणोंके स्वामी हैं।' गणशः ही ये रहते हैं। कहीं कार्यके लिये जाना होतो ये गणशः ही जाते हैं। इस कारण सदा सर्वदा ये संघसे संघटित ही रहते हैं। यह बल इनका रहता है इस कारण इनका शत्रुपरका आक्रमण बडा प्रभावशाली होता है। व्यक्तिशः आक्रमण कितना भी हुआ तो भी वह संघशः आक्रमणके समान प्रभावी नहीं होगा। इस कारण सर्वत्र मरुत् सैनिकोंकी प्रशंसा होती है।

मरुतो मा गणैरवन्तु । अ० १९।४५।१०

'मरुत् वीर गणोंके साथ आकर मेरी सुरक्षा करें।' किसी भी मंत्रने अकेला अकेला वीर आये और मेरा संरक्षण करे ऐसा नहीं कहा है, परंतु 'गणैः अवन्तु' गणोंके साथ

आकर संरक्षणका कार्य करें ऐसा ही कहा है। इसका स्पष्ट कारण यह है कि इनका संघ ही विशेष प्रभावशाली होता है। इस कारण संरक्षण कार्यके लिये मरुतोंके गणोंको ही बुलाया जाता है।

गणश एव मरुतस्तर्पयति। काठ० २११३६

गणशो हि मरुतः। ताण्ड्य० १९।१४।२

मरुद् वीर गणके साथ ही अपना संरक्षणका कार्य करते हैं। मरुतोंको तृप्ति करनेके लिये भी जिस समय बुलाते हैं, उस समय संघशः ही उनको बुलाते हैं और संघशः ही उनको खानेपीनेके लिये अन्न और रस अर्पण करते हैं। किसी समय अकेले अकेलेको बुलाकर उसको खानपान देकर उसका पृथक् पृथक् सत्कार किया ऐसा कभी होता ही नहीं। उनको अन्न देना हो, पीनेके लिये रस देना हो तो सब समयोंमें उनको बुलाना हो तो संघमें ही बुलाना, बिठलाना हो तो संघमें ही बिठलाना, और खानपान अर्पण करना हो तो संघशः ही अर्पण करना होता है।

अर्थात् उनका रहनसहन जीवन संघशः ही होता है। अतः कहा है—

वन्दस्व मारुतं गणं त्वेषं पनस्युम्। ऋ. १।३८।१५

तं ऋषे मारुतं गणं नमस्य। ऋ. ५।५२।१३

शर्धन्तमा गणं मरुतां अव ह्वये। ऋ. ५।५६।१

त्वेषं गणं तवसं खादिहस्तं वन्दस्व। ऋ. ५।५८।१

मारुतं गणं वृषणं हुए। ऋ. ८।९४।१२

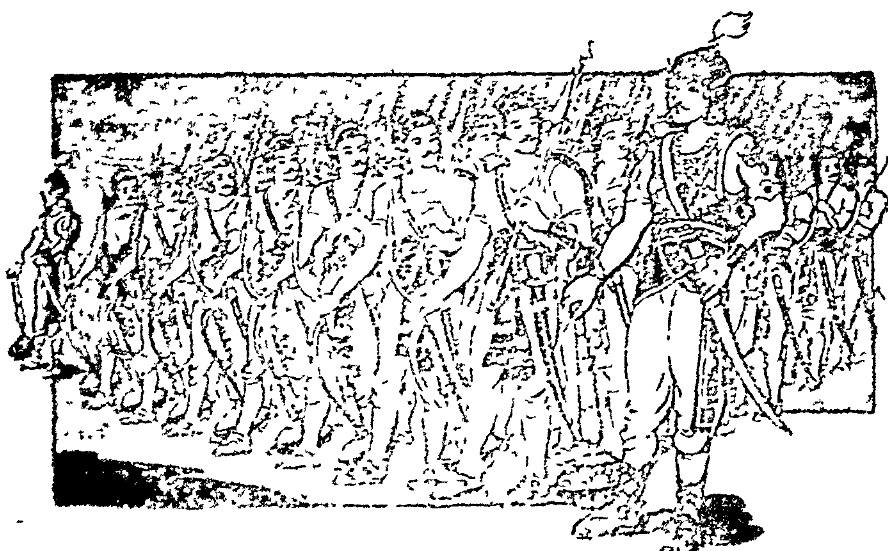
व्रातं व्रातं गणं गणं सुशस्तिभिः ओज ईमहे।
ऋ. ३।२६।६

व्रातं व्रातं गणं गणं सुशस्तिभिः अनुक्रामेम।
ऋ. ५।५३।११

प्र साकमुक्ष अर्चत गणाय। ऋ. ७।५८।१

इन मंत्रोंमें मरुतोंकी सेवा लोकोंने संघशः ही करनी चाहिये ऐसा कहा है। एक एककी पृथक् पृथक् पूजा होने लगी तो एक एकका अहंकार बढेगा और संघशक्ति कम होगी। इसलिये उनका सत्कार संघशः ही हो ऐसा स्पष्ट कहा है। यह महत्त्वकी बात है और यह संघटना करनेवालोंको अवश्य ध्यानमें धारण करने योग्य है—

'उत्साही कार्यकर्ता मरुतोंके गणोंको वन्दन कर। हे ऋषे! तू मरुतोंके संघको ही- गणको ही- वन्दन कर। मैं पराक्रम करनेवाले मरुतोंके संघको ही बुलाता हूं। उत्साही बलवान् आभूषणोंको हाथमें डालकर कार्य करनेवाले मरुतोंके संघको प्रणाम कर। मरुतोंके बलशाली संघको मैं बुलाता हूं। प्रत्येक गणके, प्रत्येक समूहके उत्तम प्रशस्तियोंसे हम बल प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं। क्रमशः प्रत्येक गणको और संघको हम प्रशंसाके स्तोत्रोंसे प्रशंसित करना चाहते हैं। गणोंको संघशः साथ साथ ही सुपूजित कर।'



मरुतोंका गण

इन मंत्रोंके वर्णनोंसे यह स्पष्ट होता है कि मरुतोंका सत्कार संघशः ही करना चाहिये, न कि व्यक्तिशः। इसका कारण भी स्पष्ट है। जनता सैनिकोंकी व्यक्तिशः प्रशंसा करने लगी तो उनकी संघटना टूट जानेकी संभावना होगी। इस भयको दूर करनेके लिये वेदमें ऐसी आज्ञाएं हैं।

गण, शर्ध और व्रात ये मरुत वीरोंके सर्वोत्

नाम हैं। इनमें सैनिकोंकी संख्यासे ये बनते हैं। शर्धके विषयमें वेदमंत्रोंमें ऐसा वर्णन आया है—

तं वः शर्धं मारुतं सुम्नयुः गिरा। ऋ. २।३०।११

'आपका वह संघ वाणीद्वारा प्रशंसा योग्य है।' अर्थात् प्रशंसा करने योग्य कार्य आपके सैनिकीय संघद्वारा होता है।

तं वः शर्धं रथानाम्। ऋ. ५।५३।१०

'आपका रथोंका संघ है।' पदाती सैनिकोंका संघ होता है वैसा रथोंवाली सेनाका भी संघ होता है। इस तरह पदाति सैनिक, रथी सैनिक, घुडसवार सैनिक, वैमानिक सैनिक ऐसे अनेक संघ मरुतोंकी सेनामें होते हैं।

तं वः शर्धं रथेशुभं त्वेषं आहुवे। ऋ. ५।५६।९

'तुम्हारा वह रथोंमें शोभनेवाला बलवान् संघ है, उसको मैं बुलाता हूं।' यहां रथमें शोभनेवाले संघका वर्णन है।

प्र वः शर्धाय घृष्वये त्वेषद्युम्नाय शुष्मिणे।
ऋ. १।३७।४

'आपके शूर तेजस्वी बलवान् संघके लिये हम सम्मान अर्पण करते हैं।' तथा—

वृष्णे शर्धाय सुमखाय वेधसे सुवृक्तिं भर।
ऋ. १।६४।१

'बलवान् उत्तम पूजनीय, विशेष श्रेष्ठ कर्म करनेवाले वीरोंके संघकी प्रशंसा कर।' और देखिये—

प्र शर्धाय मारुताय स्वभानवे पर्वतच्युते अर्चत।
ऋ. ५।५४।१

प्र शर्धाय प्र यज्यवे सुखादये तवसे भन्ददिष्टये धुनिव्रताय शवसे। ऋ. ५।८७।१

'मरुतोंके अत्यंत तेजस्वी पर्वतोंको भी हिलानेवाले संघका सत्कार करो।'

'अत्यंत पूज्य, उत्तम सुन्दर आभूषण शरीरपर धारण करनेवाले, बलवान्, आनन्दसे इष्ट कार्य करनेवाले, शत्रुको उखाडनेवाले, अतिबलवान् मरुतोंके संघका स्वागत करो।'

इन मन्त्रोंमें ये मरुत् वीरोंके संघ क्या करते हैं, इनका बल कैसा होता है आदि बहुत बातें मननीय हैं। तथा और—

या शर्धाय मारुताय स्वभानवे श्रवः अमृत्यु धुक्षत।
ऋ. ६।४८।१२

दिवः शर्धाय शुचयः मनीषा उग्रा अस्पृध्रन्।
ऋ. ६।६६।११

'मरुत् वीरोंके तेजस्वी संघके लिये अक्षय धन दे दो। वीरोंके संघके लिये उग्र वीरताको प्रसवनेवाले शुद्ध स्तोत्र चलते रहें।'

इन वीरोंके काव्य शुद्ध होते हैं, वीर्य बढानेवाले हैं, तेजस्विताका संवर्धन करनेवाले हैं इस कारण वे काव्य गाने योग्य हैं। जो ये काव्य या स्तोत्र गायेंगे वे उस वीर्य-शौर्यादि गुणोंसे युक्त होंगे। और देखिये—

धृष्णे शर्धाय मारुताय भरध्वं हव्या
वृष प्रयाव्ने॥ ऋ. ८।२०।९

'जिनका आक्रमण बलशाली होता है उस वीरोंके संघके लिये अन्न भरपूर दे दो।' तथा और भी देखो—

उग्रं व ओजः स्थिरा शवांसि। अध मरुद्भिः
गणः तुविष्मान्। शुभ्रो वः शुष्मः क्रुध्मी
मनांसि धुनिर्मुनिरिव शर्धस्य धृष्णोः॥
ऋ० ७।५६।७-८

'हे वीरो! आपका बल बडा प्रखर है, आपके बल उत्तम स्थिर हैं। और मरुत वीरोंका संघ बडा बलशाली है। आपका बल निर्मल है, मन शत्रुपर क्रोध करनेवाले हैं। आपके आक्रमणका वेग मननशील मुनिके समान विचारसे होता है, आपके शत्रुपर आक्रमण ऐसे निर्दोष होते हैं।'

ये वीर शत्रुपर वेगसे आक्रमण करते हैं तथापि उनमें शत्रुका नाश करनेका सामर्थ्य होनेपर भी वे अविचारसे आक्रमण नहीं करते, परन्तु ऋषिमुनिके समान वे विचार-पूर्वक जो करना है वह करते हैं, उनमें शत्रुपर क्रोध है, शत्रुका नाश करनेकी इच्छा है, पर अविचार नहीं है। इस कारण इन वीरोंको यश प्राप्त होता है। इस कारण इन वीरोंका आदर होना चाहिये। तथा—

क्रीळं वः शर्धो मारुतं अनर्वाणं रथे शुभम्।
कण्वा अभि प्र गायत॥ १॥
ये पृषतीभिर्ऋष्टिभिः साकं वाशीभिरञ्जिभिः।
अजायन्त स्वभानवः॥ २॥ ऋ० १।३७।१-२

'क्रीडा-मर्दानी खेल खेलनेमें कुशल, आपसमें झगडा न करनेवाले, रथमें शोभनेवाले, मरुत् वीरोंके संघका हे

कण्वो ! वर्णन करो । जो धब्बोंवाली हरिणोंको अपने रथोंको जोतते हैं, कुल्हाडे, भाले आदि वीरोंके योग्य शस्त्र धारण करनेवाले, तथा अपने अलंकारोंसे शोभनेवाले तेजस्वी वीर हैं उनका वर्णन करो । ' तथा—

शर्धो मारुतं उत् शंस । सत्यशवसम् ।

ऋ० ५।५२।८

अभ्राजि शर्धो मरुतो यत् अर्णसम् ।
मोषत वृक्षं कपना इव वेधसः ॥ ऋ० ५।५४।६

' सत्य पराक्रम करनेवाले वीरोंके बलकी प्रशंसा कर । वीरोंका संघ चमक उठा है । जैसा वायु बडे सागवानके वृक्षको उखाडता है वैसे ये वीर शत्रुको उखाडकर फेंकते हैं इस कारण इन वीरोंका यह संघ प्रशंसा करने योग्य है । '

मरुतोंका सांघिक बल इस तरह वेदमन्त्रोंमें वर्णित है । शत्रुका संपूर्ण नाश करनेमें यह संघ प्रवीण है, इनमें आपसमें झगडे नहीं होते, पर्वतोंको भी ये उखाडकर फेंक देते हैं और वहीं सीधा मार्ग करते हैं । इनके सामने प्रबल शत्रु भी ठहर नहीं सकता ।

इनके वर्णनोंमें विशेषतः यह है कि ये संघमें रहते हैं इस कारण इनका सत्कार संघमें ही करना चाहिये । इनके संघोंके नाम ' गण, व्रात और शर्ध ' ये हैं । इनके अनेक मन्त्रोंमें वर्णन यहांतक किये हैं । इससे इनके प्रबल संघटनकी कल्पना पाठकोंको आ सकती है । इमसे यही बोध लेना है ।

वीरोंके आक्रमण

वीरोंकी अनुशासनयुक्त संघव्यवस्था हमने देखी, उनके रथ, वाहन, उनकी सेनाकी व्यवस्था हमने देखी । इतनी तैयारी होनेके पश्चात् अब हम इनकी आक्रमणशक्ति कैसी थी यह देखेंगे । इस विषयमें ये मन्त्र देखने योग्य हैं—

आ ये रजांसि तविषीभिरव्यत
प्र व एवासः स्वयतासो अध्रजन् ।
भयन्ते विश्वा भुवनानि हर्म्या
चित्रो वो यामः प्रयतास्वृष्टिषु ॥ ऋ० १।१६६।४

(ये) जो तुम वीर (तविषीभिः) अपनी सामर्थ्योंसे (रजांसि आ अव्यत) लोकोंका संरक्षण करते हो (वः एवासः) तुम्हारे वेगके आक्रमण (स्वयतासः) अपने संयमपूर्वक (प्र अध्रजन्) शत्रुपर वेगसे होते हैं । तब (प्रयतासु ऋष्टिषु) अपने शस्त्रास्त्र संभालकर जो (वः यामः चित्रः) आपका आक्रमण विलक्षणसा होता है उसको देखकर (विश्वा भुवनानि) सब भुवन और (हर्म्या) बडे महल भी (भयन्ते) भयभीत होते हैं । ' ऐसे भयंकर आक्रमण इन वीरोंके होते हैं । इनके ये शत्रुपर हुए हमले देखकर सबको भय लगता है तथा—

चित्रो वोऽस्तु यामः चित्र ऊती सुदानवः ।
मरुतो अ-हि-मानवः । ऋ. १।१७२।१

' हे उत्तम दान देनेवाले मरुद्वीरो ! (अ-हि-मानवः) आपका तेज कम नहीं होता और (वः यामः चित्रः) आपका शत्रुपर होनेवाला आक्रमण बडा विलक्षण भयंकर होता है । ' तथा—

चित्रं यद्वो मरुतो याम चेकिते । ऋ. २।३४।१०

' आप मरुद्वीरोंका आक्रमण अर्थात् शत्रुपर होनेवाला हमला बहुत ही विलक्षण प्रभावशाली होता है । ' शत्रुपर इनका हमला हुआ तो उसको पलटा देना असंभव होता है । कोई शत्रु तुम्हारे इस हमलेको सह नहीं सकता । तथा और देखिये—

नि वो यामाय मानुषो दध्र उग्राय मन्यवे ।
जिहीत पर्वतो गिरिः ॥ ७ ॥
येषामज्मेषु पृथिवी जुजुर्वां इव विश्पतिः ।
भिया यामेषु रेजते ॥ ८ ॥ ऋ. १।३७।७-८

' (वः उग्राय मन्यवे यामाय) आपके उग्र क्रोधसे होनेवाले आक्रमणके लिये डरकर (मानुषः) मनुष्य (नि दध्रे) आश्रयमें जाकर रहता है, पर उससे पर्वत और पहाड भी कांपने लगते हैं ॥ ७ ॥ जिनके (यामेषु अज्मेषु) आक्रमणोंके समय (जुजुर्वान् विश्पतिः) क्षीण निर्बल राजाके समान पृथिवी भी (भिया रेजते) भयसे कांपती है ॥ ८ ॥

इस तरह इन वीरोंके हमले भयंकर होते हैं जिनको देखकर डरकर सब भयभीत होते हैं, कांपते हैं, आसरा ढूंढकर वहां जाते हैं, पृथिवी, पहाड और पर्वत कांपते हैं, फिर बाकी निर्बल मानव घबरा गये तो उसमें आश्चर्य ही क्या है ? और देखिये—

यः यामेषु भूमिः रेजते । ऋ. ८।२०।५

वः यामः गिरिः नियेमे । ऋ. ८।७।५
वः यामाय मानुषा अबीभयन्त । ऋ. १।३९।६

'आपका आक्रमण होनेपर पृथ्वी कांपती है, आपके आक्रमणसे पर्वत भी स्तब्ध होते हैं। आपके आक्रमणके लिये सब मनुष्य भयभीत होते हैं। ' तथा—

दीर्घं पृथु यामभिः प्रच्यावयन्ति । ऋ. १।३७।११
यत् यामं अचिध्वं पर्वताः नि अहासत ।
ऋ. ८।७।२

' आपके हमलोंसे आप-बडे तथा सुदृढ विशाल शत्रुको भी हिला देते हैं। आप जब अपना हमला चढाते हैं उस समय पर्वत भी कांपते हैं। '

इस तरह इन वीरोंका आक्रमण शत्रुपर होता है जो प्रखर और विशेष ही प्रभावी होता है। इस निबंधमें निम्न-लिखित बातें सिद्ध हो चुकी हैं—

१ वीरोंकी सेनामें सात सात वीरोंकी एक एक पंक्ति होती थी। ऐसी सात पंक्तियोंका एक पथक होता था।

२ ये वीर प्रजाजनोंमेंसे भरती होते थे ।

३ सात सातकी एक पंक्ति ऐसी सात पंक्तियां, मिलकर ४९ वीर और सात पंक्तियोंके दो दो पार्श्वरक्षक मिलकर १४ अर्थात् ये ६३ वीर होते थे ।

४ ये ६३ वीर मिलकर अनेक कार्य करनेवाले वीरोंका समूह होता था। इसलिये यह पथक स्वावलंबी होता था।

५ विभागशः सेनाकी संख्या पत्ती, गण, पृतना आदि नामोंसे पृथक् पृथक् होती थी ।

६ इन वीरोंकी गति निष्प्रतिबंध होती थी ।

७ इन वीरोंके चार प्रकारके मार्ग थे । आपथ, विपथ, अन्तःपथ और अनुपथ ये नाम उन मार्गोंके थे ।

८ मरुतोंके रथ अनेक प्रकारके थे, अश्वरथ, हिरन रथ, अश्वरहित रथ, आकाश संचारी रथ, अश्वपर्ण रथ, आकाशमें विमानोंकी पंक्तियां करके इनका संचार होता था ।

९ ये रथ, दिनमें, रात्रीमें, अन्धेरेमें संचार कर सकते थे ।

१० इन रथोंकी गति प्रतिबंधरहित होती थी ।

११ मरुद्वीर मनुष्य ही थे । इनको देवत्व उनके शुभ कर्मोसे प्राप्त हुआ था।

१२ मरुद्वीर गृहस्थी होते थे ।

१३ इन वीरोंके आक्रमण भयंकर और सबको भयभीत करनेवाले होते थे ।

ये बातें इस निबंधमें बतायी हैं ।



वेदके व्याख्यान

वेदोंमें नाना प्रकारके विषय हैं, उनको प्रकट करनेके लिये एक एक व्याख्यान दिया जा रहा है। ऐसे व्याख्यान २०० से अधिक होंगे और इनमें वेदोंके नाना विषयोंका स्पष्ट बोध हो जायगा।

मानवी व्यवहारके दिव्य संदेश वेद दे रहा है, उनको लेनेके लिये मनुष्योंको तैयार रहना चाहिये। वेदके उपदेश आचरणमें लानेसे ही मानवोंका कल्याण होना संभव है। इसलिये ये व्याख्यान हैं। इस समय तक ये व्याख्यान प्रकट हुए हैं।

१ मधुच्छन्दा ऋषिका अग्निमें आदर्श पुरुषका दर्शन।
२ वैदिक अर्थव्यवस्था और स्वामित्वका सिद्धान्त।
३ अपना स्वराज्य।
४ श्रेष्ठतम कर्म करनेकी शक्ति और सौ वर्षोंकी पूर्ण दीर्घायु।
५ व्यक्तिवाद और समाजवाद।
६ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।
७ वैयक्तिक जीवन और राष्ट्रीय उन्नति।
८ सप्त व्याहृतियाँ।
९ वैदिक राष्ट्रगीत।
१० वैदिक राष्ट्रशासन।
११ वेदोंका अध्ययन और अध्यापन।
१२ वेदका श्रीमद्भागवतमें दर्शन।
१३ प्रजापति संस्थाद्वारा राज्यशासन।
१४ त्रैत, द्वैत, अद्वैत और एकत्वके सिद्धान्त।
१५ क्या यह संपूर्ण विश्व मिथ्या है?
१६ ऋषियोंने वेदोंका संरक्षण किस तरह किया?
१७ वेदके संरक्षण और प्रचारके लिये आपने क्या किया है?
१८ देवत्व प्राप्त करनेका अनुष्ठान।
१९ जनताका हित करनेका कर्तव्य।
२० मानवके दिव्य देहकी सार्थकता।
२१ ऋषियोंके तपसे राष्ट्रका निर्माण।
२२ मानवके अन्दरकी श्रेष्ठ शक्ति।
२३ वेदमें दर्शाये विविध प्रकारके राज्यशासन।
२४ ऋषियोंके राज्यशासनका आदर्श।
२५ वैदिक समयकी राज्यशासन व्यवस्था।
२६ रक्षकोंके राक्षस।
२७ अपना मन शिवसंकल्प करनेवाला हो।
२८ मनका प्रचण्ड वेग।
२९ वेदकी दैवत संहिता और वैदिक सुभाषितोंका विषयवार संग्रह।
३० वैदिक समयकी सेनाव्यवस्था।
३१ वैदिक समयके सैन्यकी शिक्षा और रचना।

आगे व्याख्यान प्रकाशित होते जायंगे। प्रत्येक व्याख्यानका मूल्य ।=) छः आने रहेगा। प्रत्येकका डा. व्य. =) दो आना रहेगा। इस व्याख्यानोंका एक पुस्तक सजिल्द लेना हो तो उस सजिल्द पुस्तकका मूल्य ५) होगा और डा. व्य. १॥) होगा।

मंत्री — स्वाध्यायमण्डल आनन्दाश्रम, पारडी जि. सूरत

मुद्रक और प्रकाशक- व. श्री. सातवलेकर, बी. ए., भारत-मुद्रणालय, किल्ला पारडी (जि. सूरत)



वैदिक व्याख्यान माला — ३१ वाँ व्याख्यान

वैदिक देवताओंकी व्यवस्था

लेखक

पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

अध्यक्ष- स्वाध्याय-मण्डल, साहित्यवाचस्पति, गीतालंकार

स्वाध्याय-मण्डल, पारडी (सूरत)

मूल्य छः आने

ॐ

वैदिक देवताओंकी व्यवस्था

देवताओंकी व्यवस्था

वेदमंत्रोंमें अग्नि, इन्द्र, मरुत्, वरुण आदि अनेक देवताएं हैं। ये सब देवताएं परस्पर संपूर्णतया पृथक् पृथक् हैं अथवा इनका कोई परस्पर संबंध है, जिस संबंधसे वे परस्पर निगडित हैं, इसका विचार करना है। अग्नि देवताको लेकर हम इसीका विचार करेंगे और देखेंगे कि यह अग्नि देव कहां और किस रूपमें रहता है और इसका अन्यान्य देवताओंके साथ संबंध है वा नहीं, और यदि संबंध है, तो वह किस तरहका संबंध है। इन देवताओंके संबंधमें अथर्ववेदमें ऐसा वर्णन किया है—

यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्षमुतोदरम्। दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ ३२ ॥
यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः। अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ ३३ ॥

अथर्व. १०।७

'भूमि जिसके पांव हैं, और अन्तरिक्ष पेट है, तथा द्युलोकको जिसने अपना मस्तक बनाया उस ज्येष्ठ ब्रह्मको नमस्कार है।'

'सूर्य जिसका नेत्र है, पुनः नया नया होनेवाला चन्द्रमा भी जिसका दूसरा नेत्र है तथा अग्निको जिसने अपना मुख बनाया है उस ज्येष्ठ ब्रह्मको नमस्कार है।' तथा और देखिये—

'यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरङ्गिरसोऽभवन्। दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ ३४ ॥ अथर्व. १०।७।३४

'वायु जिसके प्राण अपान हैं, अंगिरस जिसके चक्षु हैं, जिसने दिशाओंको अपने श्रोत्र-कान- बनाया उस श्रेष्ठ ब्रह्मके लिये मेरा नमस्कार है।' इस तरह इन मन्त्रोंने जो कहा है वह यह है। इसकी ऐसी तालिका बनती है—

द्यौः	मूर्धा (सिर)
सूर्यः	चक्षु (नेत्र)
अंगिरसः	,, ,,
दिशः	कान
अन्तरिक्षं	उदर (पेट)
चन्द्रमाः	नेत्र
वायुः	प्राण
अग्निः	वाणी (मुख)
भूमिः	पांव

इस तरह ये सब देवताएं परमात्माके विश्वशरीरके अंग और अवयव हैं, यह इस वर्णनसे स्पष्ट हुआ। ये देवताएं परमात्माके अवयव हैं अतः वे उससे पृथक् नहीं हैं। इस विषयमें और ये मंत्र देखने योग्य हैं—

कस्मादङ्गाद्दीप्यते अग्निरस्य कस्मादङ्गात्पवते मातरिश्वा। कस्मादङ्गाद्वि मिमीतेऽधि चन्द्रमा मह स्कंभस्य मिमानो अङ्गम् ॥ २ ॥
कस्मिन्नङ्गे तिष्ठति भूमिरस्य कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्यन्तरिक्षम्। कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्याहिता द्यौः कस्मिन्नङ्गे तिष्ठत्युत्तरं दिवः ॥ ३ ॥

अथर्व. १०।७।२-३

'इसके किस अंगसे अग्नि प्रकाशता है, इसके किस अंगसे वायु बहता है, इसके किस अंगसे चन्द्रमा कालको मापता है? बडे आधारस्तंभ परमात्माके अंगको (अपनी गतिसे) मापता है।'

'इसके किस अंगमें भूमि रहती है, इसके किस अंगमें अन्तरिक्ष रहा है, इसके किस अंगमें द्युलोक स्थित है और द्युलोकसे जो ऊपरका द्यु है वह इस परमात्माके किस अंगमें रहा है।' तथा और देखिये—

यस्मिन्भूमिरन्तरिक्षं द्यौर्यस्मिन्नध्याहिता ।
यत्राग्निश्चन्द्रमाः सूर्यो वातस्तिष्ठन्त्यार्पिताः ॥१२॥
यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अङ्गे सर्वे समाहिताः ॥१३॥

अथर्व. १०।७

' जिसमें भूमि अन्तरिक्ष और द्यौ आश्रय लेकर रहे हैं, जिसमें चन्द्रमा, सूर्य और वायु रहे हैं । जिसके अंगमें सब तैंतीस देव रहे हैं । ' तथा—

यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अङ्गे गात्रा विभेजिरे ।
तान् वै त्रयस्त्रिंशद्देवानेके ब्रह्मविदो विदुः ॥

अथर्व० १०।७।२७

' तैंतीस देव जिसके अंगमें गात्ररूप बनकर रहे हैं । उन तैंतीस देवोंको अकेले ब्रह्मज्ञानी ही जानते हैं । '

इस तरह तैंतीस देव परमेश्वरके विश्वरूपी शरीरमें अंग और अवयव बनकर रहे हैं । इस वर्णनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि परमात्माका यह विश्व शरीर है और इस शरीरमें ये तैंतीस देव उसके अपने शरीरके अंग बनकर रहे हैं । ये देव परमात्माके विश्वरूपी शरीरके अंग हैं, गात्र हैं अथवा अवयव हैं । अग्नि उसका मुख है, सूर्य उसका नेत्र है, दिशाएं उसके कान हैं । इस तरह अन्य देव उसके अन्य अवयव हैं । इस रीतिसे अग्निका वर्णन जो वेदमंत्रोंमें है वह परमात्माके मुखका वर्णन है, और किसीके मुखका वर्णन किया तो वह उस पुरुषका ही वर्णन होता है । किसी भी अवयवका वर्णन किया तो उस अवयवी पुरुषका वर्णन होता है । इस कारण अग्निका वर्णन परमात्माके-ज्येष्ठ ब्रह्मके मुखका वर्णन है, अतएव यह वर्णन परमात्माका ही वर्णन है । इसलिये ' अग्नि ' का अर्थ ' आग ' या केवल Fire कहना अशुद्ध है । यह तो परमात्माके मुखका वर्णन है, अतः यह वर्णन परमात्माका ही वर्णन है ।

इस विषयमें और भी विचार होना चाहिये । हम परमात्माके अमृतपुत्र हैं । वेदने ' अमृतस्य पुत्राः ' (ऋ. १०।१३।१) कहा है और इस तत्त्वको बतानेवाले मन्त्र भी हैं । देखिये—

१ प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या ।
व्यानोदानौ वाङ्मनस्ते वा आकूतिमावहन् ॥४॥

२ ये त आसन् दश जाता देवा देवेभ्यः पुरा ।
पुत्रेभ्यो लोकं दत्त्वा कस्मिंस्ते लोकमासते ॥१०॥

३ संसिचो नाम ते देवा ये संभारान्त्समभरन् ।
सर्वं संसिच्य मर्त्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥१३॥

४ अस्थि कृत्वा समिधं तदष्टापो असादयन् ।
रेतः कृत्वा आज्यं देवाः पुरुषमाविशन् ॥ २९ ॥

५ या आपो याश्च देवता या विराड् ब्रह्मणा सह ।
शरीरं ब्रह्म प्राविशन् छरीरेऽधि प्रजापतिः ॥३०॥

६ सूर्यश्चक्षुर्वातः प्राणं पुरुषस्य विभेजिरे ॥ ३१ ॥

७ तस्माद्वै विद्वान् पुरुषमिदं ब्रह्मेति मन्यते ।
सर्वा ह्यस्मिन्देवता गावो गोष्ठ इवासते ॥ ३२ ॥

अथर्व. ११।८

' प्राण, अपान, चक्षु, श्रोत्र, अविनाश, विनाश, व्यान, उदान, वाणी, मन इन (दस देवों) ने संकल्पको इस शरीरमें लाया है ' ॥ ४ ॥

' जो ये दस देव देवोंसे उत्पन्न हुए, वे अपने पुत्रोंको स्थान देकर स्वयं वे किस लोकमें बैठ रहे हैं ? ' ॥ १० ॥

' इकट्ठे सींचनेवाले ऐसे प्रसिद्ध वे देव हैं कि जिन्होंने ये सब संभार तैयार किये हैं; इन्होंने सब मर्त्यको सिंचित करके ये देव इस पुरुषमें प्रविष्ट हुए हैं ' ॥ १३ ॥

' उन्होंने हड्डीकी समिधा बनायी, आठ प्रकारके जलोंको टिकाया । वीर्यका घी बनाकर ये देव पुरुष शरीरमें प्रविष्ट हुए हैं ' ॥ २९ ॥

' जो जल थे, जो देवताएं थी, जो विराट् थी ये सब ब्रह्मके साथ इस शरीरमें प्रविष्ट हुए । इस शरीरमें अधिष्ठाता प्रजापति हुआ है ' ॥ ३० ॥

' सूर्य चक्षु हुआ, वायु प्राण हुआ इस तरह देव यहां आकर रहने लगे ' ॥ ३१ ॥

' इसलिये ज्ञानी निःसन्देह इस पुरुषको ' यह ब्रह्म है ' ऐसा मानता है । क्योंकि सब देवताएं यहां गौवें गोशालामें रहनेके समान रहती हैं ' ॥ ३२ ॥

इस तरह यह वर्णन मनुष्य शरीरका वेदमें किया है, इसमें निम्न स्थानमें लिखि बातें हैं—

१– प्राण, अपान, नेत्र, कान, व्यान, उदान, अविनाश व विनाश ये शरीरमें आयें और इनके कारण मनमें संकल्प विकल्प उठने लगे हैं ।

२– दस देवोंने अपने दस पुत्रोंको उत्पन्न किया, यहां इस शरीरमें उन दस पुत्रोंको स्थान दिया और वे अपने स्थानमें विराजते रहे ।

३– इस मर्त्यदेहमें देवोंने जीवनका जल सींचन किया और पश्चात् वे इस शरीरमें आकर रहने लगे ।

४– इस पुरुषमेधमें हड्डियोंकी समिधाएं बनायीं, रेतकी आहुति बनायी और इस यज्ञमें देव इस शरीररूपी यज्ञशालामें आकर बैठे हैं ।

५– जो जल आदि देवताएं हैं, वे सब देव ब्रह्मके साथ शरीरमें प्रविष्ट हुए हैं । शरीरका पालक प्रजापति हुआ है ।

६– सूर्य आंख बनकर और वायु प्राण बनकर इस शरीरमें रहने लगे हैं ।

७– इसलिये इस बातको जाननेवाला ज्ञानी इस पुरुषको ' यह ब्रह्म है ' ऐसा मानता है, क्योंकि सब देवताएं, गौवें गोशालामें रहनेके समान यहां रहती हैं ।

यहां यह बात सिद्ध हुई कि जिस तरह परमात्माके विश्वशरीरमें जैसी सब ३३ देवताएं हैं उसी तरह जीवात्माके इस मानवी शरीरमें भी उन सब ३३ देवताओंके अंश हैं । परमात्माके विश्वदेहमें प्रत्येक देवता सम्पूर्ण रूपसे है, पर इस मानवदेहमें अंशरूपसे है । पूर्व स्थानमें दिये मन्त्रमें ३३ देवताएं अंगोंके गात्रोंमें रहती हैं ऐसा कहा, वैसी ही जीवात्माके इस शरीरमें भी ३३ देवताएं हैं, परन्तु अंशरूपसे हैं ।

यही वर्णन ऐतरेय उपनिषद्में अधिक स्पष्ट रीतिसे कहा गया है—

देवोंके अंशावतार

अग्निः वाक् भूत्वा मुखं प्राविशत् ।
वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत् ।
आदित्यः चक्षुः भूत्वाऽक्षिणी प्राविशत् ।
दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशन् ।
ओषधिवनस्पतयो लोमानि भूत्वा त्वचं प्राविशन् ।
चन्द्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशत् ।
मृत्युः अपानो भूत्वा नाभिं प्राविशत् ।
आपो रेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशन् ।

ऐतरेय उ. १।२।४

१ ' अग्नि वाणीका रूप धारण करके मुखमें प्रविष्ट हुआ । '
२ ' वायु प्राण बनकर नाकमें प्रविष्ट हुआ । '
३ ' सूर्य आंख बनकर आंखोंमें प्रविष्ट हुआ । '
४ ' दिशाएं श्रोत्र बनकर कानोंमें बसने लगीं । '
५ ' औषधि वनस्पतियां केश बनकर त्वचामें रहने लगीं ।'
६ ' चन्द्रमा मन बनकर हृदयमें रहने लगा । '
७ ' मृत्यु अपान बनकर नाभीमें रहने लगा । '
८ ' जल रेत बनकर शिस्नमें रहने लगा । '

इस तरह अन्यान्य देवताएं अंशरूपसे इस शरीरके अन्यान्य भागोंमें रहने लगीं । अर्थात् यह शरीर देवताओंका मन्दिर है । यहां जो शरीरका वर्णन है वह देवसंघका वर्णन है । इसलिये कहा है कि—

ये पुरुषे ब्रह्म विदुः ते विदुः परमेष्ठिनम् ।

अथर्व० १०।७।१७

' इस मानव शरीरमें जो ब्रह्मको देखते हैं वे परमेष्ठी प्रजापतिको जान सकते हैं । ' क्योंकि इस शरीरमें जैसी व्यवस्था है, वैसी ही विश्वमें व्यवस्था है । तथा जैसी विश्व शरीरमें व्यवस्था है वैसी ही इस शरीरमें व्यवस्था है ।

सब बडे देव परमात्माके विश्व शरीरमें हैं और उनके अंशरूप देव ईश्वरके अमृतपुत्रके शरीरमें–मनुष्य शरीरमें– हैं । इन देवोंसे ही यह शरीर बना है । इन देवोंके सिवाय यहां कुछ भी नहीं है । पंचमहाभूत ये पांच देव हैं । ये पंचमहाभूत जैसे विश्व शरीरमें हैं वैसे ही इस मानव शरीर में हैं । दोनोंमें ' बडे देव और अंशरूप छोटे देव ' इतना ही फरक है । बडे हुए तो भी वे देव ही हैं और अंश हुए तो भी वे देव ही हैं ।

यह शरीर पांचभौतिक है इसका अर्थ ही यह है कि ये पांचों देव एक विशेष व्यवस्थामें यहां निवास कर रहे हैं । यही बात विश्वमें है । बडे छोटेपनको छोड दिया जाय तो दोनों स्थानोंकी व्यवस्था समान ही है ।

परमेश्वर मेरा पिता है और उसका मैं पुत्र हूं । पिता-पुत्रके शरीरोंकी व्यवस्था समान ही होती है । एक बडा होता है, और दूसरा छोटा होता है । परंतु पिताके देहमें जैसी ३३ देवताएं होती हैं वैसी ही पुत्रके देहमें होती हैं ।

पिण्ड और ब्रह्माण्ड

इस व्यवस्थाको शास्त्रीय परिभाषामें पिण्ड-ब्रह्माण्ड व्यवस्था कहते हैं । मनुष्यका शरीर ' पिण्ड ' है और विश्वको ' ब्रह्माण्ड ' कहा जाता है । पिण्ड छोटा है, ब्रह्माण्ड विशाल

है। पर जो पिण्डमें होता है वही विस्तृत रूपमें ब्रह्माण्डमें होता है।

अग्नि, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र आदि देव जैसे इस ब्रह्माण्डमें हैं वैसी ही रीतिसे वे अंशरूपमें इस शरीरमें भी हैं।

हमने इस समय 'अग्नि' देवताको ब्रह्माण्डमें देखा और पिण्डमें वाणीके रूपसे मुखमें हमने देखा। अर्थात् शरीरमें अग्नि मुखमें वाणीके रूपमें है और विश्वमें अग्नि परमेश्वरका मुख है। इस तरह अग्नि केवल 'आग (Fire)' नहीं है, परंतु वाणी (शब्द) भी अग्नि ही है।

पिण्ड और ब्रह्माण्डके बीचमें एक और ईश्वरका स्वरूप है वह 'मानव समष्टि' है। इसका वर्णन वेदमें इस तरह किया है—

मानव समष्टि

मानव समष्टि भी पुरुषका एक रूप है। इसका वर्णन ऐसा किया है—

वैश्वानरो महिना विश्वकृष्टिः। ऋ. १।५९।७

अग्निका नाम 'वैश्वानर' है और वैश्वानरका अर्थ 'विश्व-कृष्टि' है। 'विश्व-कृष्टि' का अर्थ सर्व मनुष्य है। 'वैश्वा-नर' का अर्थ भी सब मनुष्य है। इस विषयमें भाष्यकार ऐसा लिखते हैं—

विश्वकृष्टिः। कृष्टिरिति मनुष्य नाम।
विश्वे सर्वे मनुष्याः यस्य स्वभूताः स तथोक्तः॥
ऋग्वेद सायनभाष्य १।५९।७

वैश्वानरः सर्वनेता। विश्वकृष्टिः विश्वाः
सर्वाः कृष्टीः मनुष्यादिकाः प्रजाः।
ऋग्वेद दयानन्द भाष्य १।५९।७

अर्थात् "वैश्वानरः, विश्वकृष्टिः" का अर्थ 'सर्व मानव' है। 'विश्वचर्षणि' का भी वही अर्थ है। सर्व मानव समाजरूपी यह अग्नि है। इसका स्पष्ट भाव इन पदोंका अर्थ देखनेसे मालूम होता है। परंतु अधिक स्पष्ट करनेके लिये वेदमंत्र ही देखिये—

ब्राह्मणोऽस्य मुखं आसीत् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥
ऋ. १।९०।१२; वा. यजु. ३१।११

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्योऽभवत्।
मध्यं तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥
अथर्व. १९।६।६

'इस पुरुषका मुख ब्राह्मण है, बाहू क्षत्रिय हुआ है, ऊरु अथवा इसका मध्यभाग वैश्य है और इसके पांव शूद्र हैं।'

चार वर्णोंका यह राष्ट्र पुरुष है। यह भी परमात्माका एक रूप है। विश्वपुरुषमें अग्नि परमात्माका मुख है, इन्द्र बाहु है, मध्य अन्तरिक्ष है और पांव पृथिवी है। इसकी तालिका ऐसी बनती है—

विश्वपुरुषः	राष्ट्रपुरुषः	व्यक्तिपुरुषः
अग्निः	ब्राह्मणः	मुख
जात-वेदाः	वक्ता	वाणी
इन्द्रः	क्षत्रियः	हाथ
अन्तरिक्ष	वैश्यः	मध्य, पेट, ऊरू
पृथिवी	शूद्रः	पांव

यहां यह स्पष्ट हुआ कि प्रत्येक देवता विश्वपुरुषमें रहती है, राष्ट्रपुरुषमें उसका स्वरूप भिन्न होता है और वही देवता व्यक्तिमें भी होती है। हमारा प्रचलित विषय अग्नि देवता है। विश्वमें वह अग्नि है, व्यक्तिमें वह वाणीके रूपमें है और राष्ट्रमें वही वक्ता अथवा पंडितके रूपमें है। तीन स्थानोंमें अग्निके ये तीन रूप हैं। अग्निके वर्णनमें हम ये रूप देख सकते हैं।

'ब्राह्मण इसका मुख है, क्षत्रिय बाहू हैं, वैश्य इसका पेट है और शूद्र इसके पांव हैं।' यह वर्णन मानव समाज-रूपी जनता जनार्दनका है। यह वेदोंमें वर्णन है। परमे-श्वरका मुख अग्नि है, अग्नि वाणीके रूपसे मानव व्यक्तिमें रहा है और ब्राह्मणमें वही वाणी प्रवचन सामर्थ्य रूपसे रहती है। ये तीनों अग्निके रूप तीनों स्थानोंमें रहते हैं।

अधिदैवत, अधिभूत, अध्यात्म

व्यक्तिके अन्दरका जो वर्णन होता है इसको 'अध्यात्म' कहते हैं देखिये—

तदेतत् चतुष्पाद् ब्रह्म वाक् पादः, प्राणः पादः,
चक्षुः पादः, श्रोत्रं पादः इत्यध्यात्मम्॥
छां. उ. ३।१८।२

अथाध्यात्मं य एवायं मुख्यः प्राणः।
छां. उ. १।५।३

मनो ब्रह्मेत्युपासीतेत्यध्यात्मम्। छां. उ. ३।१८।१

यश्चायमध्यात्मं शारीरस्तेजोमयः।

यश्चायमध्यात्मं रेतसः तेजोमयः ।
यश्चायमध्यात्मं वाङ्मयः तेजोमयः ।
यश्चायमध्यात्मं प्राणस्तेजोमयः ।
यश्चायमध्यात्मं चाक्षुषः ।
यश्चायमध्यात्मं श्रौत्रः ।
यश्चायमध्यात्मं मानसः ।
यश्चायमध्यात्मं शाब्दः ।
यश्चायमध्यात्मं हृद्याकाशः ।
यश्चायमध्यात्मं मानुषः । बृ. उ. २।५।१-१२

ये उपनिषद्वचन देखनेसे प्रतीत होता है कि शरीरमें रहनेवाले वाणी, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, रेत, शब्द, मन, हृदय, अर्थात् मनुष्य शरीरके अन्दर दीखनेवाली अवयवोंमें रहने वाली शक्तियां अध्यात्म शक्तियां हैं। शरीरके अन्दर आत्मा, बुद्धि, मन, इन्द्रियां, प्राण आदि शक्तियां अध्यात्म कहलाती हैं।

प्रस्तुत विचार हम अग्निका कर रहे हैं। यह अग्नि अध्यात्ममें वाणी या शब्द है। अग्निका आध्यात्मिक स्वरूप वक्तृत्व है।

अग्निका आधिदैवत स्वरूप अग्नि, तेज, आदि तेजोगोल हैं। अधिदैवतका रूप देखिये—

अथाधिदैवतं य एवासौ तपति ।
अथाधिदैवतं आकाशो ब्रह्म ।
छांदोग्य १।३।१; १।१८।१

अधिदैवत पक्षमें सूर्य, आकाश ये देवता आधिदैवतामें आती हैं। अग्नि, विद्युत, सूर्य, नक्षत्र, वायु, चन्द्रमा यह अधिदैवत है।

अथाधिदैवतं अग्निः पादो वायुः पाद
आदित्यः पादः दिशः पाद इत्यधिदैवतं ।
छां. उ. ३।१८।२

अग्नि, वायु, आदित्य, दिशा इत्यादि देवताएं आधिदैवतमें आती हैं। यहांतक अध्यात्मसे व्यक्तिके शरीरकी शक्तियोंका बोध हुआ और अधिदैवतसे विश्वव्यापक अग्नि आदि शक्तियोंका बोध हुआ। अधिभूतसे प्राणीयोंका बोध होता है।

यः सर्वेषु तिष्ठन् सर्वेभ्यो भूतेभ्यो अन्तरो
यं सर्वाणि भूतानि न विदुः यस्य सर्वाणि
भूतानि शरीरं ... इत्यधिभूतम्। बृह. उ. ३।७।१५

'सब प्राणी जिसका शरीर है वह अधिभूत है।' अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र मिलकर जो होता है वह अधिभूत है। इसीको हम 'जनता जनार्दन' कह रहे हैं। अर्थात् प्रत्येक देवताके इन तीन क्षेत्रोंमें तीन स्वरूप होते हैं—

अध्यात्म क्षेत्रमें अग्निका स्वरूप शब्द है ।
अधिभूत ,, ,, ,, वक्ता है ।
अधिदैवत ,, ,, ,, आग है ।

अग्निके ये स्वरूप ध्यानमें धारण करनेसे ही अग्निके मंत्रोंका ठीक ठीक ज्ञान हो सकता है। केवल आग या Fire इतना ही इसका अर्थ लेनेसे अग्निका संपूर्ण स्वरूप ज्ञात नहीं हो सकेगा। वैदिक कल्पना संपूर्ण रीतिसे ध्यानमें आ गई तो ही वेदमंत्रोंका अर्थ साकल्यसे समझमें आ सकता है।

यहां हमने केवल अग्निके रूप तीनों क्षेत्रोंमें कैसे हैं यह देख लिया। इतनेसे ही कार्य नहीं हो सकता। अग्नि, इन्द्र, मरुत् आदि देवताओंके रूप तीनों क्षेत्रोंमें कैसे हैं यह भी समझना चाहिये। यहां हम संक्षेपसे यह बताते हैं—

अधिदैवत	अधिभूत	अध्यात्म
विश्व	राष्ट्र	व्यक्ति
अग्नि	ज्ञानी	वाणी, वक्तृत्व
इन्द्र	सेनापति	बाहुबल
मरुत्	सैनिक	प्राण
अश्विनौ	चिकित्सक	श्वासोच्छ्वास
नास-त्य	आरोग्यरक्षक	नासिकास्थानमें रहनेवाले प्राण
सोम	सोमरसनिष्पादक	उत्साह
ऋभवः	कारीगर	कौशल्य
बृहस्पतिः	ज्ञानी	ज्ञान
पुरुषः (विश्व)	पुरुषः (समाज)	पुरुषः (व्यक्ति)

इस तरह अन्यान्य देवताओंके विषयमें जानना चाहिये। इस विषयमें सब विद्वानोंको उचित है कि वे देवताओंके मंत्र देखकर देवताके तीनों क्षेत्रोंमें जो रूप हैं उनकी खोज करें। चारों वेदों, सब ब्राह्मणों और आरण्यकोंमें ३३ देवताओंके तीनों क्षेत्रोंके रूप क्या हैं वे स्पष्टतया किसी भी स्थानपर दिये नहीं हैं। वेदमंत्रोंमें आठ दस देवताओंके

स्थान दिये हैं, वे भी पूर्णतया नहीं, आरण्यकों और उपनिषदोंमें दस बारह देवताओंके स्थान निर्देश हैं, श्रीमद्भागवतमें १५।१६ देवताओंके स्थान निर्देश हैं। पर किसी भी स्थानपर ३३ देवताओंके स्थान निर्देश नहीं हैं। पर देवता ३३ हैं और वे तीन स्थानोंमें ग्यारह ग्यारह हैं ऐसा यजुर्वेदमें कहा है—

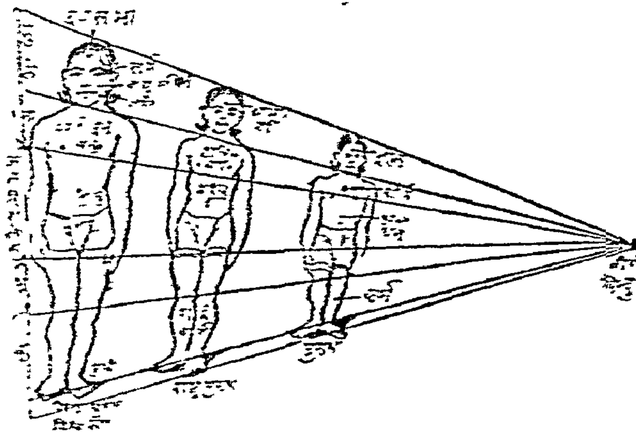
त्रया देवा एकादश त्रयस्त्रिंशाः सुराधसः।

वा० यजु २०।११

ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामेकादश स्थ। अप्सु क्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम्॥ वा० यजु. ७।१९

' देव ३३ हैं और वे भूस्थानमें ११, अन्तरिक्ष स्थानमें ११ और द्युस्थानमें ११ मिलकर तैंतीस हैं। ' इनमें भी एक देव अधिष्ठाता है और दस देव उनके सहकारी हैं। इस तरह यह व्यवस्था है।

ये जो तैंतीस देव हैं, वे ऐसे ही व्यक्तिके शरीरमें हैं और राष्ट्रशरीरमें भी हैं और वहां भी ग्यारह ग्यारहके तीन विभाग हैं। इस विषयकी खोज होनी है। पर पूर्वोक्त तीनों स्थानोंपर ये देवगण हैं इसमें संदेह नहीं है।



विराट्-राष्ट्र-व्यक्ति-वीर्यविन्दु

इस चित्रसे स्पष्ट दिखाई देगा कि विराट् पुरुषका अंश राष्ट्र पुरुष है अर्थात् विश्वपुरुषमें यह राष्ट्रपुरुष शामील है। तथा राष्ट्रपुरुषका अंश व्यक्तिपुरुष है और व्यक्ति राष्ट्रपुरुषमें शामिल है। इसी तरह व्यक्तिका सार उसका वीर्य बिन्दु है। वीर्य बिन्दुमें पुरुषकी सब शक्तियां संकुचित रूपमें रहती हैं। इसी वीर्य बिंदुसे अन्दरकी सब शक्तियां विकसित होकर पुनः पुरुष बनता है।

इसीको ' वृक्ष-बीज ' न्याय कहते हैं। वृक्षसे बीज और बीजसे वृक्ष यह क्रम अनादिकालसे चलता आया है। बीजमें संपूर्ण वृक्ष संकुचित रूपमें समाया है, उसो बीजसे पुनः उन सुप्त शक्तियोंका विकास होकर वैसा ही वृक्ष बनता है।

ऐसा ही वीर्य बिन्दु विकसित होकर मनुष्य बनता है। एक वीर्य बिंदुमें सब शक्तियां रहती हैं। ऐसा ही मनुष्य शरीर यह ईश्वरके विश्वशरीरका एक बिंदु-सार बिन्दु-है। इसीलिये विश्वकी सब देवताएं इसमें अंशरूपसे रहती हैं। परमेश्वरके विश्वदेहमें अग्नि, वायु, सूर्य, आदि प्रत्यक्ष हैं और इस मानवदेहमें अंशरूपसे वे सब देव रहते हैं। विश्वरूपका महान् स्वरूप और मानवदेहका अणुस्वरूप विचारमें न लिया जाय, तो दोनों स्थानोंकी देवताएं एक ही हैं। अग्नि विश्वरूपमें तथा मानवरूपमें एक ही है। इसलिये वेदके मंत्रोंमें अखण्ड अग्नि लिया है, इसमें विश्वरूपका अग्नि आ गया, व्यक्तिरूपमें रहनेवाला अग्नि भी आ गया।

वेदमंत्रकी दृष्टिसे दोनों अग्नि ही हैं, परंतु हमारे दृष्टिबिंदुसे जो उनके रूपमें आसमान अन्तर है वह पूर्वस्थानमें बताया ही है।

यहांतक तत्त्व प्रतिपादनकी दृष्टिसे वर्णन किया, इसमें देवताओंके अर्थके क्षेत्रकी व्याप्ति कैसी है, यह स्पष्ट हुआ है। इस कारण जो अग्नि देवताको केवल ' आग या Fire ' मानते हैं वे मंत्रके रहस्य अर्थका ग्रहण नहीं कर सकते। इसलिये देवताको संपूर्ण रूपसे ध्यानमें धारण करना चाहिये और मंत्रका अर्थ देखना चाहिये। तथा तीनों क्षेत्रोंमें उस अर्थको घटाकर उस अर्थका भाव समझना चाहिये।

अग्निके गुणोंका दर्शन

' अग्नि ' यह पद ' अग्निदेवता ' का बोधक है। इसका अर्थ लौकिक भाषामें आग या Fire ऐसा समझा जाता है। मान लीजिये कि यहां अंधेरी रात है, उस समय मार्ग

दीखता नहीं, कहां पत्थर हैं, गढे हैं, कहां विषैले जानवर हैं, कहां भय है इसका ज्ञान नहीं हो सकता; क्योंकि अंधेरेने सब घेरा है। कुछ भी दीखता नहीं। ऐसी अवस्थामें लकडी जलाकर अग्नि किया तो सब दीखने लगता है। मार्ग कौनसा है, वह कैसा है, अग्निके प्रकाशसे सब दीखने लगता है। इस तरह अग्नि मार्गदर्शक है, मार्ग दिखाकर आगे जानेका सुन्दर मार्ग दिखाता है, आगे अग्रभागमें चलाता है, इसलिये इसका मूल नाम 'अग्र-णी' है। अग्रणीका छोटा रूप 'अग्नि' हुआ है।

निरुक्तकार यास्काचार्य कहते हैं कि "अग्निः कस्मात् अग्रणीर्भवति।" (निरुक्त) इस आगको अग्नि क्यों कहते हैं क्योंकि वह 'अग्र-णी' है, आगे मार्गदर्शन करके आगे ले जाता है। अग्रतक चलाता है।

'अग्-र-णी' पदसे 'र' कारका लोप होकर 'अग्नि' पद बना है। आगे चलानेवाला इस अर्थका यह पद है। अग्रभागतक संभालकर यह ले चलता है, मार्ग दर्शाकर आगे चलाता है। अन्ततक सहायता करता है। अतएव यह अग्रणी है।

राष्ट्रमें 'अग्रणी' ही राष्ट्रके लोगोंको आगे चलाता है, इस कारण वह अग्निकी ही विभूति है। वक्ता भी अग्रणी है क्योंकि वह अपने वक्तृत्वसे जनताको मार्गदर्शन करता है। अग्नि मुख है और मुख वक्तृत्व करके अनुयायियोंको मार्गदर्शन करता है। इसके उपदेशानुसार चलकर अनुयायी लोग जहां पहुंचना है, वहां पहुंच जाते हैं। यह अग्निके साथ अग्रणीका संबंध देखने योग्य है।

जो अन्धेरेमें अग्नि कार्य करता है वही उपदेशक अपने प्रवचनसे करता है और राष्ट्र नेता वही उपदेश करके अपने अनुयायियोंको इष्ट स्थानपर पहुंचाता है। इन तीनों स्थानोंमें अग्निका संचालन समान ही है। यही 'अग्नि' के अन्दरका रहस्यार्थ है। यह अर्थ बतानेके लिये 'अग्निः कस्मात् अग्रणीः भवति' ऐसा यास्कने कहा है। तीनों स्थानोंमें तीन प्रकारका मार्गदर्शन है, तीनों क्षेत्रोंमें तीन प्रकारका अज्ञान है, अतः तीनों प्रकारका मार्गदर्शन आवश्यक है। अग्निका अर्थ केवल 'आग या Fire' लेनेसे यह गूढ अर्थ मालूम नहीं हो सकता। इसलिये वेदका अर्थ इन तीनों क्षेत्रोंमें देखनेका अध्ययन करना आवश्यक है।

मेरा यह कहना नहीं है कि वेदके प्रत्येक पद, वाक्य और मंत्रके तीन या अधिक अर्थ होते हैं, परंतु जहां होते हैं, वे हमारे अज्ञानके कारण हमसे दूर रहें, यह उचित नहीं है। इस कारण हमें इस आर्ष पद्धतिका ज्ञान प्राप्त करना चाहिये और इस पद्धतिसे विचार करनेका अवलंबन करना चाहिये।

अपां न-पात्

अब और एक उदाहरण देखिये। 'अपां न-पात्' यह पद देखिये। सायणने इसका दो प्रकारसे भाव दिया है—

१ अपां न पातयिता।

२ अद्भ्य ओषधय ओषधिभ्योऽग्निः।

अर्थात् (१) जलोंको न गिरानेवाला, अग्नि जलकी भाप बनाता है और उनको ऊपर ले जाकर मेघमंडलमें रखता है। जलोंको न गिरानेका अग्निका यह गुण है। इसलिये मेघ बनते हैं। सब भूमंडलपर जो जल है उसको ऊपर ले जाकर मेघमंडलमें रखनेका अग्निका कार्य प्रत्यक्ष दीखनेवाला है। (२) दूसरा अर्थ भी 'जलोंका नप्ता, पौत्र अग्नि है।' जलसे वृक्षरूप पुत्र उत्पन्न होते हैं और वृक्षोंसे अग्नि उत्पन्न होता है। इस तरह जलके पुत्रका पुत्र अर्थात् नप्ता या पौत्र अग्नि है। सायन इतने अर्थ देता है।

'अपां न-पात्' जलोंको नीचे न गिरानेवाला, जलोंको ऊपर ले जाकर ऊपर रखनेवाला यह इस पदका अर्थ प्रत्यक्ष दीखनेवाला है। यह तो अधिदैवत क्षेत्रका अर्थात् देवताओंके क्षेत्रका अर्थ हुआ।

दैवत क्षेत्रमें जो जल या 'आप्' तत्त्व है वही व्यक्तिके शरीरमें वीर्य होकर रहा है। इस विषयमें ऐतरेय उपनिषद्में कहा है "आपो रेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशन्।" 'जल रेत (वीर्य) बनकर शिश्नमें प्रविष्ट हुआ है।' जो बाह्यविश्वमें आप् तत्त्व है वही शरीरमें वीर्य है।' इसलिये इस अर्थको लेकर 'अपां न-पात्' का अर्थ शरीरमें क्या होता है वह देखते हैं। 'वीर्यको न गिरानेवाला, ब्रह्मचर्य पालन करके ऊर्ध्वरेता बननेवाला।'

इस तरह 'अपां न-पात्' का अर्थ ठीक 'ऊर्ध्व-रेता' है। जलोंको ऊपर खींचनेवाला, वही वीर्यको ऊपर आकर्षित करनेवाला है। योगशास्त्रमें ऊर्ध्वरेता बननेकी जो विधि है वह ऊर्ध्व आकर्षण विधि ही कहलाती है। प्राणा-

याममें रेचक करनेके समय मनसे वीर्यस्थानकी गमनाडि-योंका ऊर्ध्व भागकी ओर आकर्षण करना होता है। इस रीतिसे प्राणायाम तथा इस तरहका ऊर्ध्व आकर्षणका अभ्यास करनेसे मनुष्य ऊर्ध्वरेता बनता है।

'अपां न-पात्' का 'वीर्यको न गिराना' ऊर्ध्व आकर्षण करके ऊपर खींचना यह अर्थ अध्यात्मक्षेत्रमें अर्थात् व्यक्तिके शरीरके क्षेत्रमें होता है। यह अर्थ इस पदका होता है यह सत्य है। यदि 'जल वीर्य बनकर शरीरके मध्यमें रहा है' यह ऐतरेय उपनिषद्‌का कथन सत्य है और यदि अथर्ववेद मंत्रका कथन 'रेतका घी बनाकर सब देव शरीरमें प्रविष्ट हुए हैं' यह कथन सत्य है, तो इस अपां-न-पात् का यह अर्थ सरल है इसमें संदेह नहीं है। शरीरमें अग्नि उष्णताके रूपमें है, जाठर अग्नि अन्नका पाचन करता है। इस तरह अनेक स्थानोंमें अग्निके अनेक रूप हैं। यदि हम इन अग्नियोंको अपने अधीन करके रखेंगे तो प्राणायामादि यौगिक साधनोंसे वीर्यका अधःपतन न होकर ऊर्ध्व स्थानमें आकर्षण होकर साधक ऊर्ध्वरेता बन सकता है और इससे सौ सवासौ वर्षोंतक साधक स्वस्थ, नीरोग, कार्यक्षम और प्रभावशाली रह सकता है।

योगशास्त्रमें अनेक साधन इस सिद्धिके लिये लिखे हैं। और इनको करनेवाले भी अनेक लोग आज हैं। 'अपां न-पात्' का अर्थ तरुणोंको जीवन व्यवहार आनन्दमय और तेजस्वी बनानेमें सहायक होगा और लाभदायक भी होगा इसमें संदेह नहीं है।

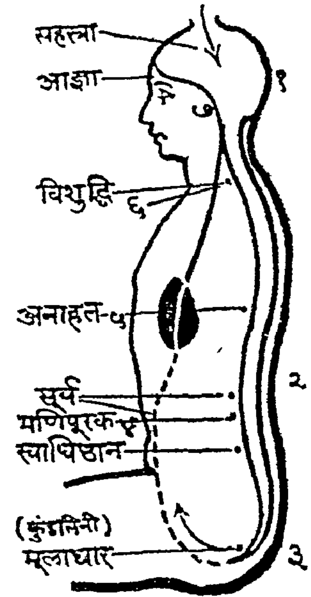
३३ देव शरीरमें हैं

पूर्व स्थानमें दिये अथर्ववेदके मंत्रमें कहा है कि 'रेतः कृत्वा आज्यं देवाः पुरुषं आविशन्' वीर्य बिन्दुमें सब देवताओंके अंश रहते हैं और उस वीर्य बिन्दुके विकसित होकर शरीर बननेसे उस शरीरमें ३३ देवताओंके अंश विकसित होते हैं।

ये ३३ देवताओंके शरीरमें स्थान जानने चाहिये। सिरसे लेकर गुदातक पृष्ठवंशमें ३३ मांस ग्रंथियां हैं। गुदासे प्रथमकी ७।८ लग्न हड्डी जैसी बनी हैं, पर उसके ऊपरके ग्रंथी अच्छी अवस्थामें हैं। योगके चक्र नामसे ये प्रसिद्ध, मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, सूर्य, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा, सहस्रार ये आठ चक्र इस समय भी योगी लोग ध्यानधारणाके लिये उपयोगमें लाते हैं। वेदमें कहा है—

> अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
> अस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः।
> तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते।
> तस्मिन् यद्यक्षमात्मन्वत् तद्वै ब्रह्मविदो विदुः॥
>
> अथर्व १०।२।३१-३२

'देवोंकी पुरी अयोध्या आठ चक्रोंवाली और नौ द्वारोंवाली है, उसमें सुनहरी कोश हृदयकमल है जो तेजसे घिरा हुआ स्वर्ग ही है। इस तीन आरोंवाले और तीन आधारवाले सुनहरी कोशमें जो आत्मवान् यक्ष-पूज्य देव है, उसको निःसंदेह ब्रह्मज्ञानी ही जानते हैं।'



अष्टचक्रा नगरी

इस मंत्रमें आठ चक्रों और नौ द्वारोंवाली ब्रह्मनगरी अयोध्या नामसे देवोंकी नगरीका वर्णन है। आठ चक्र ऊपर बताये हैं और दो आंख, दो कान, दो नाक, मुख, शिस्न और गुदा ये नौ द्वार हैं। द्वारावती– या द्वारका यही नगरी है। यहां ३३ देव रहते हैं इसलिये इसको 'देवानां पूः' देवोंकी नगरी कहा है। देवताएं इसमें रहती हैं। ३३ देवताएं विश्वान्तर्गत देवताओंके अंश यहां रहते हैं। ये देवताओंके अंश विदृति द्वारसे अन्दर प्रवेश करते हैं और मस्तकमेंसे मस्तिष्क द्वारा पृष्ठवंशमें आकर यथाक्रम निवास करते हैं।

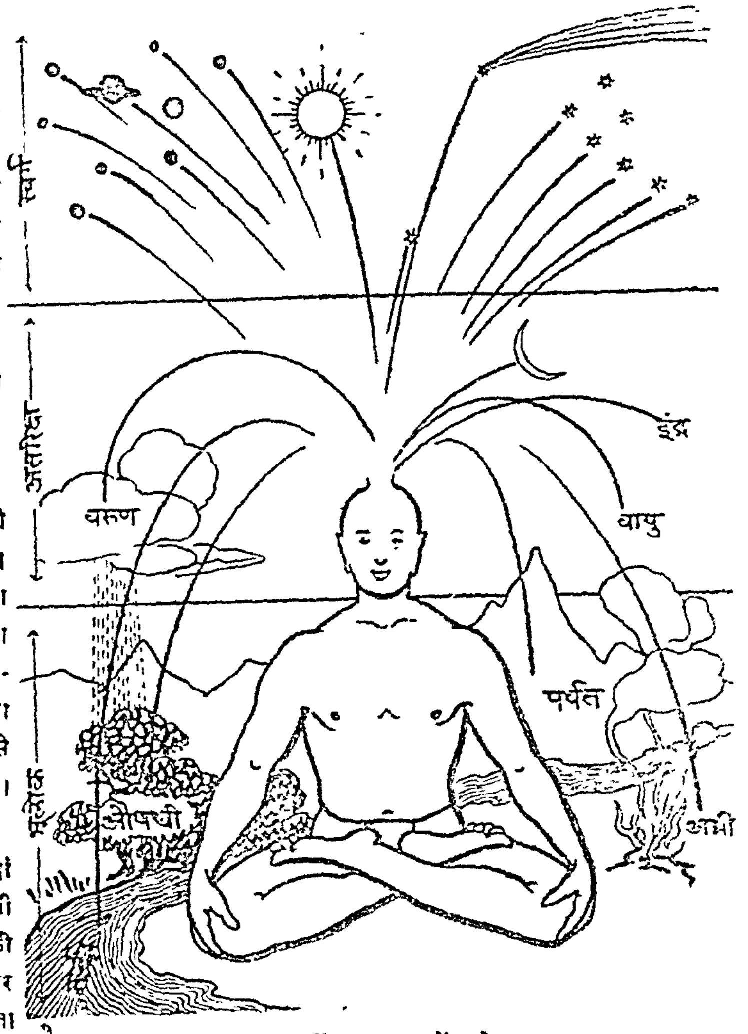
योगशास्त्रमें यद्यपि आठ ग्रंथियोंका वर्णन है और ऊपरके मंत्रमें भी आठ चक्रोंका वर्णन है, परंतु पृष्ठवंशमें ३३ चक्र हैं। पृष्ठवंशके तीन भाग हैं ऐसी कल्पना कीजिये। प्रति-

विभागमें ग्यारह, ग्यारह देवताएं हैं । इस तरह ३३ देवताएं शरीरमें कार्य करतीं हैं। पृष्ठवंशमें रहकर शरीरके अपने अपने विभागमें इनका कार्य होता रहता है । वेदमें तथा योगग्रंथोंमें इनको चक्र कहा है । इस प्रत्येक चक्रमें अनेक मज्जातंतु आये हैं और इनके द्वारा शरीरभर ये चक्र कार्य करते हैं । यदि किसी ग्रंथीपर असाधारण दबाव आ जाय तो वह ग्रंथी कार्य नहीं करती और उस भागको लकवा हुआ ऐसा कहा जाता है ।

इन्द्र-ग्रंथी

मस्तकमें 'इन्द्र ग्रंथी' है । इसको अंग्रेजीमें 'पीनियल ग्लण्ड' कहते हैं । इसका वर्णन 'सा इन्द्रयोनिः' ऐसा उपनिषदोंमें किया है । इससे जीवनरसका स्राव होता है । योगसाधनमें इसपर मनः-संयम करनेसे जीवनरसका जो स्राव होता है, उसको अधिक प्रमाणमें प्राप्त करनेसे मनुष्य दीर्घ जीवन प्राप्त कर सकता है । ऐसा फल लिखा है और वह सत्य है ।

सूर्यचक्रमें मनका संयम करनेसे वहां जाग्रती होती है जिससे पाचन शक्ति बढती है, अनाहत चक्रपर संयम करनेसे हृदयकी शक्ति बढती है। इस तरह इन चक्रोंपर संयम करनेसे इनमें शक्तिकी उत्तेजना होती है जिससे साधकको लाभ होते हैं ।



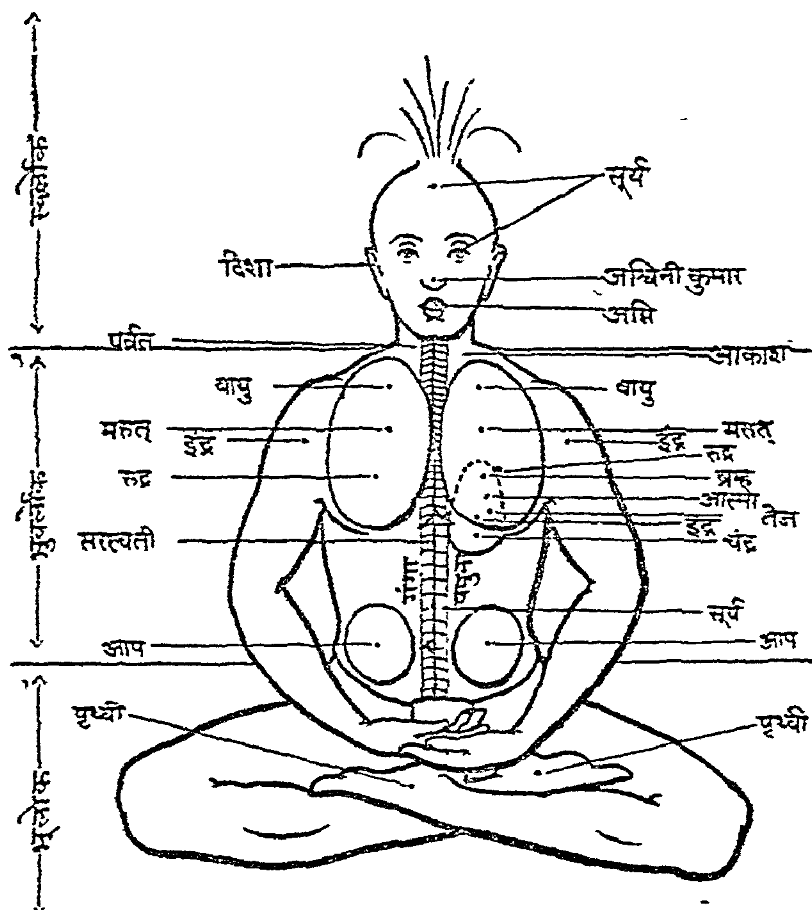
देवताओंका शरीरमें प्रवेश

जो ३३ शक्तियां बाहरके विश्वमें हैं, उनके ही अंश शरीरमें पूर्वोक्त स्थानोंमें रहे हैं । इनको 'पिता और पुत्र' कहा है । विश्वके बडे देव पिता हैं और शरीरके अन्दर रहनेवाले उनके पुत्र हैं, उनके अंश हैं ।

इन अंशोंपर अर्थात् जहां जो अंश पृष्ठवंशमें रहता है उसमें उस देवतांशपर मन एकाग्र करनेसे उस देवता ग्रंथीमें बाह्य देवताकी शक्तिका संचार होता है और उस ग्रंथीकी शक्ति बढती है ।

जिस तरह प्राणायामसे वायुकी शक्ति प्राप्त होकर प्राणका बल बढता जाता है, सूर्यपर टकटकी थोडी थोडी करनेसे नेत्र शक्ति बढती है । इसी तरह अन्यान्य शरीरके केन्द्रोंकी शक्तियां भी बढायी जा सकती हैं । उन उन चक्रोंमें मनः संयम तथा वहांकी देवताका स्मरण या ध्यान करनेसे वहांकी शक्ति बढती है । यह शास्त्र काल्पनिक नहीं है । प्रत्यक्ष प्रयोगसे यह साक्षात् प्रत्यक्ष होनेवाला ज्ञान है ।

इस कारण शरीरमें जो ३३ देवताएं हैं, उनका संबंध बाहरकी ३३ देवताओंके साथ है, यह प्रत्यक्ष देखा जाता है । अन्न, जल, वायु, अग्निके संबंध तो हरएक जान सकता है । इसी तरह अन्यान्य देवताओंके संबंध भी अनुभव किये जा सकते हैं ।



शरीरमें देवताओंका स्थान

मनुष्योंके संघ होना स्वाभाविक ही है। और प्रत्येक संघमें उस उस देवता विशेषकी शक्ति विशेष प्रमाणसे विकसित हुई होती है। इस कारण वहां उस देवताकी विभूति है ऐसा माना गया है वह योग्य ही है।

अस्तु। इस तरह व्यक्तिमें, समाज या राष्ट्रमें तथा विश्वमें ये देवताएं हैं, अतः उनका अस्तित्व वहां देखना योग्य है और मंत्रोंके वर्णन उन स्थानोंमें घटाकर देखना भी योग्य है। यह ज्ञान आज हमें अपरिचितसा लगता होगा, अथवा खींचा तानीका भी दीखता होगा, परंतु हमारे अज्ञानके कारण ही यह ऐसा बना है। इस कारण हमें मननपूर्वक यह ज्ञान प्राप्त करनेका यत्न करना चाहिये।

अतः यह ३३ देवताओंका शरीरमें निवास और उनके पितारूपी बाह्यदेवोंका इनसे संबंध यह कोई ख्याली कल्पना नहीं है। ध्यानधारणासे यह परस्पर संबंध प्रत्यक्ष होनेवाला है और इस ज्ञानसे मनुष्य अपनी स्वास्थ्य बल तथा दीर्घायु भी प्राप्त कर सकता है।

यदि यह ध्यानमें आगया तो अधिभूत क्षेत्रमें भी ये ही देवताएं हैं, यह ध्यानमें आना असंभव नहीं है। जो व्यक्तिमें है, वही समुदायमें है, क्योंकि व्यक्तियोंका ही समुदाय बनता है।

इसलिये (१) ज्ञानप्रधान समुदाय, (२) बल या शौर्यवीर्य प्रधान समुदाय, (३) कृषिकर्म या क्रयविक्रय करनेवाला समुदाय और (४) कर्मप्रधान समुदाय ऐसे जो जनसंघके चार वर्ग माने गये हैं, वे प्रत्येक मनुष्यमें के गुण हैं, इसलिये गुणप्रधान

यहांतक तत्वज्ञानकी दृष्टिसे विचार हुआ, अब हम मन्त्रोंके अभ्यास इस दृष्टिसे कैसे करने चाहिये, इसका विचार करेंगे। प्रथम कुछ विशेष मंत्र देखिये—

पहिला मानव अग्नि

त्वां अग्ने प्रथमं आयुं आयवे।
देवा अकृण्वन् नहुषस्य विश्पतिम् ॥ ऋ. १।३१।११

' हे अग्ने ! (त्वां प्रथमं आयुं) तुझ पहिले मानवको (आयवे) मनुष्यमात्रके लिये (नहुषस्य विश्पतिं) मानवी प्रजाके पालन करनेके लिये (देवाः अकृण्वन्) देवोंने बनाया। ' पहिला मनुष्य जो जन्मा वह अग्नि ही था। इसी विषयमें और भी देखिये—

त्वं अग्ने प्रथमो अंगिरा ऋषि'''अभवः।
ऋ. १।३१।१

'हे अग्ने! तू पहिला अंगिरा ऋषि हुआ था।' तथा-

त्वं अग्ने प्रथमो अंगिरस्तमः कविः। ऋ. १।३१।२

'हे अग्ने! तू अंगिरसोंमें पहिला कवि हुआ है।'

पहिला मानव, पहिला अंगिरा ऋषि यह अग्नि था। यह एक कल्पना वेदमंत्रोंमें है। यह यहां प्रथम देखने योग्य है। तथा और—

अग्निं धीषु प्रथमम्। ऋ. ८।७१।१२

'बुद्धियोंमें पहिला अग्नि' यह अग्नि आत्मा ही है। इसीके संबंधमें अब यह मन्त्र देखिये—

त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोता। ऋ. ६।१।१

'हे अग्ने! तू पहिला मनोता है' अर्थात् जिसका मन उसमें ओतप्रोत हुआ है ऐसा है। यह आत्माग्नि ही है आत्माके आधारसे ही मन रहता है। तथा—

अयं होता प्रथमः पश्यतेमं।
इदं ज्योतिः अमृतं मर्त्येषु॥ ऋ. ६।९।४

'यह पहिला होता है, इसको देखो। यह मर्त्योंमें अमर ज्योति है।' मर्त्य शरीरमें अमर ज्योति आत्मा ही है।

धीषु प्रथमं अग्निं। ऋ. ८।७१।१२
त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोता। ऋ. ६।१।१
इदं ज्योतिः अमृतं मर्त्येषु॥ ६।९।४

इन तीन मंत्रोंमें जो वर्णन है वह अमर आत्माका ही वर्णन स्पष्ट है। अग्निको ही ब्रह्म या परमात्मा वेदमें माना है। देखिये—

तदेवाग्निः तदादित्यः तद्वायुः तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः॥
वा. यजु. ३२।१

'वह ब्रह्म ही अग्नि है, वह ब्रह्म ही यह आदित्य है, वही ब्रह्म वायु है, वही ब्रह्म चन्द्रमा है, वह ब्रह्म ही शुक्र है, वह ब्रह्म ही ज्ञान है, वह ब्रह्म ही जल है, वह परमात्मा ही प्रजापति है।'

इस तरह वेदने स्पष्ट कहा है कि अग्नि, सूर्य, वायु, चन्द्रमा, जल आदि सब देव ब्रह्म ही हैं। अर्थात् ब्रह्म ही इन रूपोंमें हमारे सामने और हमारे चारों बाजूमें है। यह विश्वरूप ब्रह्मका, परमात्माका ही रूप है। गीतामें, उपनिषदोंमें, वेदोंमें जो विश्वरूप कहा है वह यही रूप है।

यही विश्वरूप परमात्माका, परब्रह्मका सब रूप है। उपनिषदोंमें कहा है कि—

सर्वं खलु इदं ब्रह्म। छां० उप० ३।१४।१

'निःसंदेह यह सब ब्रह्म है।' वेदमंत्रमें भी यही कहा है—

इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते। ऋग्वेद ६।४७।१८

'इन्द्र अपनी अनन्त शक्तियोंसे बहुरूप बना है।' इन्द्रने अपनी शक्तियोंसे अग्नि, जल, वायु, सूर्य, चन्द्र आदि अनन्तरूप धारण किये हैं। यह सब वर्णन अग्नि, वायु आदि देवताओंको ब्रह्मका रूप कहता है। इसी तरह व्यक्ति, राष्ट्र, विश्व भी परब्रह्मके ही रूप हैं। इसीमें प्रकृतिका जड भाव, आत्माका चेतनरूप, आत्माका अंशरूपी जीवभाव, और परमात्माका ब्रह्मभाव समाविष्ट हुआ है।

त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत्। श्वेत० उ०

'प्रकृति, जीव और परमात्मा जिस समय इकट्ठे मिलते हैं, उस मीलनको ब्रह्म कहते है।' और यह मीलन ही सदा शाश्वत है।

इससे स्पष्ट होता है कि अग्नि ब्रह्म है केवल आग Fire ही नहीं है। युरोपीयन जिस समय Fire बोलते हैं उस समय उनके सामने केवल आग ही आती है, परंतु वैदिक ऋषि जिस समय 'अग्नि' कहते हैं, उस समय उनके सामने वह परब्रह्म परमात्माका रूप होता है और इस रूपमें व्यक्तिमें वक्तृत्व, राष्ट्रमें ज्ञानी और विश्वमें तैजस पदार्थ तथा जीवात्मा आदि तैजस तत्वका विश्वरूप आता है। यह दृष्टिका बिंदु ही भिन्न है। इसलिये वैदिक शब्द जिस समय युरोपीयन देखते हैं उस समय उनके सामने स्थूल वस्तु खडी होती है, परंतु वे ही पद वैदिक परंपरासे देखनेवालेके सामने आते हैं, उस समय 'वे ही पद अद्भुत दिव्य भाव दिखानेवाले प्रतीत होते हैं।' इसके कुछ उदाहरण यहां दिखाते हैं।

अग्निमंत्रोंको देखकर युरोपीयन कहते हैं कि 'आर्य लोग आगकी पूजा करते थे।' उनको अग्निपदमें आगके विना दूसरा कुछ भी दीखता नहीं है। परंतु वेदका कहना इस विषयमें स्पष्ट है—

इन्द्रं मित्रं वरुणं अग्निं आहुः
अथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।

एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति
अग्निं यमं मातरिश्वानं आहुः ॥ ऋ. १।१६४।४६

' एक ही सत् वस्तु है, ज्ञानी लोग उसी एक सद्वस्तुका अनेक प्रकारोंसे वर्णन करते हैं। वे उसी एक सत्य वस्तुको-उसी एक ब्रह्मको अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण, दिव्य सुपर्ण, गुरुत्मान्, यम, मातरिश्वा आदि कहते हैं। ' अर्थात् वेदमें जो अग्नि, वायु, इन्द्र, आदि देव हैं वे मुख्यतः उस एक सद्वस्तु-ब्रह्म-के ही नाम हैं और इन नामोंसे उसी एक सद्वस्तुका वर्णन होता है। यह एक मुख्य विषय है। युरोपीयनोंकी दृष्टिमें और ऋषियोंकी दृष्टिमें यह फरक है यह सबसे प्रथम ध्यानमें रखना चाहिये।

हम अब अग्निके जो विशेषण आये हैं, जो पद अग्निका वर्णन यहां इन मंत्रोंमें कर रहे हैं, उनको देखेंगे और वे आगमें सार्थ होते हैं, या उनसे कुछ और भी बोध मिलता है इसका विचार करेंगे।

अपां न-पात्— व्यक्तिमें इसका अर्थ रेतको न गिरानेवाला, जीवनको न गिरानेवाला, ब्रह्मचर्य पालनका अनुष्ठान करनेवाला। अग्निके विषयमें इसका अर्थ जलोंको न गिरानेवाला, अर्थात् जलोंको ऊपर ही ऊपर मेघमण्डलमें धारण करनेवाला है। यहां ऊपर उठानेवाला, गिरावट न करनेवाला यह अर्थ है जो बोधप्रद है। राष्ट्रके विषयमें इसीका अर्थ ' शत्रुपराभवकी शक्ति (सहः), सामर्थ्य (ओजः), सुख, क्षात्रबल, यश, अन्न, तेज, वीर्य, जीवन, कर्म आदिमें गिरावट न करनेवाला। राष्ट्रमें ये गुण बढने ही चाहिये। निघण्टुमें (३।१२) ये अर्थ दिये हैं।

१ सहसः सूनवे अग्नये नव्यसीं तव्यसीं वाचः धीतिं मतिं प्रभरे— बलको प्रसवनेवाले, अग्रणीके लिये मैं नवीन बलवर्धक वाणीकी धारणावती मतिको-बुद्धिको-विशेष रीतिसे भर देता हूं।

यहां ' सहसः सूनुः ' पद महत्त्वका है। ' बलका पुत्र ' ऐसा इसका सरल अर्थ है। ' सहः ' का अर्थ ' बल, शत्रुका पराभव करनेकी शक्ति, शत्रुका आक्रमण होनेपर अपने स्थानपर स्थिर रहनेका सामर्थ्य '। और ' सूनु ' का अर्थ ' पुत्र ' है, इसका धात्वर्थ ' प्रसव करनेवाला, ऐश्वर्य बढानेवाला है। ' सु प्रसव-ऐश्वर्ययोः ' यह धातु इसमें है। अर्थात् ' बलका प्रसव करनेवाला और बलका ऐश्वर्य बढानेवाला। ' यह इसका धात्वर्थ हुआ।

जो अग्रणी अपने अनुयायियोंका सामर्थ्य बढाता है और उनका ऐश्वर्य उत्कर्ष युक्त करता है वह प्रशंसा करने योग्य है। ऐसे अग्रणीके लिये हम नवीन सामर्थ्यको बढानेवाला, धारणा शक्ति बढानेवाला स्तोत्र गाते हैं।

यहां नवीन रचना करना और सामर्थ्य बढानेवाली रचना करना ऐसा कहा है। जो लेख लिखते हैं उनको उचित है कि वे अपनी लेखन रचनामें नवीनता रखें और सामर्थ्य बढानेवाली वह रचना हो। सामर्थ्य घटानेवाली, और किसी दूसरेसे ली हुई न हो। अपनी बुद्धिसे, अपने मननसे नयी की हुई अपनी रचना हो और जो उस काव्यका गान करे उसका सामर्थ्य उससे बढे ऐसी रचना हो।

वेदमंत्रमें जो वर्णन आता है वह इस तरह अपने जीवनमें ढालना चाहिये।

२ अपां-न-पात् ऋत्वियः प्रियः होता वसुभिः सह पृथिव्यां न्यसीदत्— जीवनको न गिरानेवाला, ऋतुके अनुसार कर्म करनेवाला, प्रिय, ज्ञानीयोंको बुलानेवाला वसुओंके साथ पृथिवीपर बैठे।

' वसु ' का अर्थ ' बसानेवाला, पृथ्वीपरका निवास सुखमय करनेवाला ' है। इस भूमिपरका मानवोंका निवास जिनसे सुखमय हो सकता है वे वसु हैं। ये वसु आठ हैं। इनके साथ वह नेता यहां रहे।

' ऋत्वियः ' ऋतुके अनुकूल आचरण करनेवाला, वसंत, ग्रीष्म ये जैसे ऋतु हैं वैसे ही बाल्य, कौमार, तारुण्य, वृद्धत्व, जरा ये भी मनुष्यके जीवनमें ऋतु हैं। इन ऋतुओंमें जैसा आचरण करना चाहिये वैसा आचरण जो करता है वह ' ऋत्वियः ' कहलाता है।

' होता ' उसको कहते हैं कि जो ' आह्वाता ' अर्थात् दिव्यजनोंको बुलाता और अपने साथ रखता है। सदा अपने साथ दिव्यजनोंको रखनेवाला। जिसके साथ सदा दिव्यजन रहते हैं।

' ऋतुके अनुसार आचरण करनेवाला, विद्वानोंको अपने साथ रखनेवाला अत एव सबको प्रिय नेता अनेक धनोंको साथ रखकर यहां रहे। ' कैसा उत्तम उपदेशपर यह अर्थ है।

न यो वराय मरुतामिव स्वनः
सेनेव सृष्टा दिव्या यथाशनिः ।
अग्निर्जम्भैस्तिगितैरत्ति भर्वति
योधो न शत्रून् त्स वनान्यृञ्जते ॥ ऋ. १।१४३।५

'(यः वराय न) जो निवारण करनेके लिये अशक्य है जैसा (मरुतां स्वनः) वायुओंका शब्द, (सृष्टा सेना इव) शत्रुपर भेजी सेना, (यथा दिव्या अशनिः) जैसी आकाशकी बिजली । (योधः शत्रून् न) योद्धा जैसा शत्रुओंका नाश करता है (सः वनानि ऋञ्जते) वह अग्नि वनोंको जलाता है, खाता है । (अग्निः तिगितैः अत्ति भर्वति) अग्नि तीक्ष्ण दांतोंसे शत्रुको खाता है और शत्रुका नाश करता है ' ॥५॥

इस मंत्रमें ' शत्रुके द्वारा निवारण करनेके लिये अशक्य ' ऐसे सामर्थ्यका वर्णन है और इसके लिये आदर्श ये बताये हैं—

१ मरुतां स्वनः— झंझावातका प्रचंड शब्द ऐसा है कि जिसको रोकना अशक्य है ।

२ सृष्टा सेना इव— शत्रुपर हमला करनेके लिये सुसज्ज होकर जानेवाली सेना रोकनेके लिये अशक्य होती है । अपने राष्ट्रकी सेना ऐसी चाहिये ।

३ यथा दिव्या अशनिः— जैसी आकाशकी बिजली रोकी नहीं जा सकती ।

४ योधः शत्रून् न— जैसा योद्धा शत्रुओंका नाश करता है उस समय रोका नहीं जा सकता ।

इसी तरह (५) अग्निः वनानि ऋञ्जते— अग्नि वनोंको जलाता है, अग्निः तिगितैः अत्ति भर्वति— अग्नि अपने तीक्ष्ण दांतोंसे वनोंको खाता है और उनका नाश करता है ।

इसमें ' सृष्टा सेना इव ' तथा ' योधः शत्रून् न ' ये दो वाक्य राष्ट्रकी सैन्यव्यवस्था कैसी होनी चाहिये इसका उपदेश दे रहे हैं । जैसी आकाशकी विद्युत जिस पर गिरती है, उसका नाश करती है, वैसी हमारी सेना होनी चाहिये । जिसपर हमला करे वह शत्रु पूर्णतया विनष्ट हो जाय । जो उदाहरण दिये हैं उनसे भी यही सिद्ध होता होता है । ' अग्नि ' का अर्थ ' अग्रणी ' है और वह अपने अनुयायियोंको ऐसा तैयार करे यह भाव इस मंत्रमें है । अग्नि और लकडीका शत्रुत्व है । दोनों एक स्थानपर प्रेमसे तथा मित्रभावसे नहीं रह सकते । दोनों एक स्थानपर आ गये तो अग्नि लकडीको खा ही जायगा । इसलिये यह वर्णन शत्रुके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये यह बतानेके लिये बडा उपदेश दे रहा है । अग्निका जैसा बर्ताव लकडीके साथ होता है, वैसा हमारा बर्ताव शत्रुके साथ होना चाहिये । इतना वीर्य, पौरुष और सामर्थ्य अपने वीरोंमें रहना चाहिये ।

अप्रयुच्छन् न प्रयुच्छद्भिरग्ने
शिवेभिर्नः पायुभिः पाहि शग्मैः ।
अदब्धेभिरदृपितेभिरिष्टे
ऽनिमिषद्भिः परि पाहि नो जाः ॥ ऋ. १।१४३।८

१ अप्रयुच्छन् अप्रयुच्छद्भिः शिवेभिः शग्मैः पायुभिः नः पाहि— स्वयं प्रमाद न करता हुआ तू प्रमादरहित, कल्याणकारक, सुखकारी, संरक्षणके साधनोंसे हमारा संरक्षण कर । राष्ट्रीय संरक्षण करनेके साधन उत्तमसे उत्तम चाहिये, उनमें प्रमाद नहीं होने चाहिये, उन साधनोंमें न्यूनता नहीं रहनी चाहिये । तथा उन साधनोंको– उन शस्त्रास्त्रोंके बर्तनेवाले वीर भी प्रमाद न करनेवाले होने चाहिये । तभी उत्तम संरक्षण हो सकता है ।

२ अदब्धेभिः अदृपितेभिः अनिमिषद्भिः नः जाः परि पाहि— न दबनेवाले, न पराभूत होनेवाले और आलस्य न करनेवाले साधनोंसे हमारे पुत्रपौत्रोंका संरक्षण कर । यहां भी राष्ट्रका संरक्षण करनेवाले वीर कैसे चाहिये और संरक्षणके साधन कैसे चाहिये इसका उत्तम वर्णन है । न वीर शत्रुके दबावके नीचे दबें, न शत्रुसे पराभूत हों और आलस्यमें समय भी व्यतीत न करें । यह राष्ट्रसंरक्षणका आदर्श इस मंत्रमें स्पष्ट शब्दोंमें कहा है ।

शत्रु लकडियोंके समान है और हमारे राष्ट्रके वीर अग्निके समान हैं । इतना समझनेसे सब भाव समझमें आ जायगा । अग्निके वर्णनमें ऐसे गूढ अर्थ भरे हैं । अग्निका वर्णन केवल आगका वर्णन करनेके लिये ही नहीं है, परंतु मानवोंको श्रेष्ठ बननेके लिये जिन गुणोंकी आवश्यकता है उन गुणोंको इस तरह अग्निके वर्णनमें बताया है ।

सखायस्त्वा ववृमहे देवं मर्तास ऊतये ।
अपां न-पातं सुभगं सुदीदितिं सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥
ऋ. ३।९।१

' (सखायः मर्तासः) एक कार्यमें लगे मनुष्य हम सब (अग्नं न-पातं) जीवनको अधःपतित न करनेवाले (सुभगं सुदीदितिं) उत्तम भाग्यवान् और उत्तम तेजस्वी (सुप्रतूर्तिं अनेहसं) उत्तम तारक और निष्पाप (त्वा देवं) तुझ देवको (ऊतये वतृमहे) हमारे रक्षणके लिये हम स्वीकारते हैं। '

अपने रक्षण करनेके लिये जिसको नियुक्त करना है उसमें अधःपतित जीवन न हो, तेजस्विता हो, तारण करनेका सामर्थ्य हो, उसमें पाप न हो। ऐसे संरक्षकको अपनी सुरक्षाके लिये नियुक्त किया जावे। कितना महत्त्वपूर्ण यह उपदेश है। जिसका जीवन अधःपतित हो, जो दीन हो, निस्तेज हो, जिसमें तारण करनेका सामर्थ्य न हो, जो पापी हो, ऐसे नीचको अगर संरक्षणके कार्यमें नियुक्त किया जाय तो वही मारक सिद्ध होगा। इस दृष्टिसे यह मंत्र कितना उत्तम बोध दे रहा है, देखिये। इस मंत्रका यह उपदेश सरल है और इसमें खींचातानी करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। अग्निके गुण ऐसी शैलीसे वर्णन किये हैं कि उससे अग्निका भी वर्णन होता है और साथ साथ राष्ट्रके रक्षकोंको भी उपदेश मिलता है।

अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इव सुधितो गर्भिणीषु। दिवे दिवे ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः॥ ऋ. ३।२९।२

(गर्भिणीषु सुधितः गर्भ इव) गर्भ धारण करनेवाली स्त्रियोंमें जैसा गर्भ उत्तम रीतिसे धारण किया होता है, उस प्रकार (जातवेदाः अरण्योः निहितः) जातवेद अग्नि दो अरणियोंमें रहता है। यह अग्नि (जागृवद्भिः हविष्मद्भिः मनुष्येभिः) जाग्रत रहनेवाले अन्न पास रखनेवाले मनुष्योंको (दिवे दिवे ईड्यः) प्रतिदिन स्तुति करने योग्य है।

यहां प्रथम गर्भिणीयोंमें सुव्यवस्थित रहे गर्भके समान अरणियोंमें अग्नि रहा है ऐसा कहा है। दो अरणियां स्त्री और पुरुषकी प्रतीक हैं और उनका पुत्र अग्नि है। दो अरणियां लकडीकी होती हैं, उनसे अति तेजस्वी और शौर्य, वीर्य और तेजःसंपन्न अग्निरूपी पुत्र होता है। इस तरह माता और पिताकी यह महत्त्वाकांक्षा हो कि हमारा पुत्र भी ऐसा तेजस्वी, वीर्यवान्, प्रकाशमान और शत्रुको जीतनेवाला हो। मातापिताके सन्मुख यह आदर्श यहां रखा है। लकडियां- दोनों अरणियां-निस्तेज होती हैं, प्रकाशरहित होती हैं, परंतु वे तेजस्वी और वीर्यवान परम पूजनीय पुत्रको उत्पन्न करती हैं। स्त्रीपुरुष इस तरह गर्भका पालन करें और ऐसे उत्तम पुत्रको उत्पन्न करें। यह कितना उत्तम उपदेश है ?

जागृवद्भिः हविष्मद्भिः मनुष्येभिः अग्निः दिवे दिवे ईड्यः— जागृत रहकर अन्न पास रखनेवाले मनुष्योंने यह अग्नि-यह पुत्र-प्रतिदिन अन्नके साथ प्रशंसा करने योग्य है। मातापिता प्रतिदिन पुत्रकी सेवा, शुश्रूषा करनेके लिये जागृत रहें, प्रतिदिन योग्य अन्न उसे अर्पण करें और उस पुत्रको योग्य अन्न देकर उसको बढावें। यहां ' ईड ' धातु है। यह प्रशंसार्थक है वैसा यह अन्नवाचक भी है। इडा, इरा, इला ये पद अन्नवाचक हैं। इस कारण ' अग्निं ईडे ' का अर्थ अग्निको मैं खानेके लिये देता हूं और प्रशंसा भी करता हूं।

पुत्रके लिये माता और पिता योग्य अन्न दें और उसकी प्रशंसा भी करें। प्रतिदिन उसकी सेवा भी योग्य अन्न समर्पण करके करें। यहां अग्निके वर्णनसे पुत्रके उत्तम पालन करनेका उपदेश है।

यहां अग्निका नाम ' जातवेदाः ' है। जिससे वेद प्रकट हुए वह जातवेदा है। उत्तम ज्ञानी यह इसका अर्थ है। पुत्रको जातवेदा बनाना चाहिये। जितना अधिक ज्ञान उसको प्राप्त हो उतना उत्तम प्रबंध कर उसको उत्तम ज्ञानी बनाना चाहिये।

मन्थता नरः कविमद्वयन्तं प्रचेतसममृतं सुप्रतीकम्। यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरस्तादग्निं नरो जनयता सुशेवम् ॥ ५ ॥ ऋ. ३।२९।५

' हे (नरः नरः) नेता लोगो ! (कविं) ज्ञानी (अद्वयन्तं) अनन्यभाव धारण करनेवाले (प्रचेतसं) विशेष चिन्तन करनेवाले (अमृतं) अमर, सदा उत्साही (सुप्रतीकं) उत्तम सुन्दर (यज्ञस्य केतुं) यज्ञके लिये ध्वज जैसे (सु-सेवं अग्निं) उत्तम सेवा करने योग्य अग्निको- तेजस्वी पुत्रको- (मन्थत जनयत) मन्थनसे उत्पन्न करो।'

मातापिताको यह उत्तम उपदेश है कि वे ऐसा यत्न करें कि अपना पुत्र ज्ञानी, अनन्यभाव धारण करनेवाला, सुविचारी, मननशील, सदा उत्साही, जो कदापि भी

अनियतका नहीं होगा, उत्तम सुन्दर रमणीय, शुभकर्म करनेवाला, उत्तम सेवा करनेवाला अथवा उत्तम सेवः करने योग्य तेजस्वी बने। ये गुण पुत्रमें हों ऐसा यत्न करना मातापिताका कर्तव्य है।

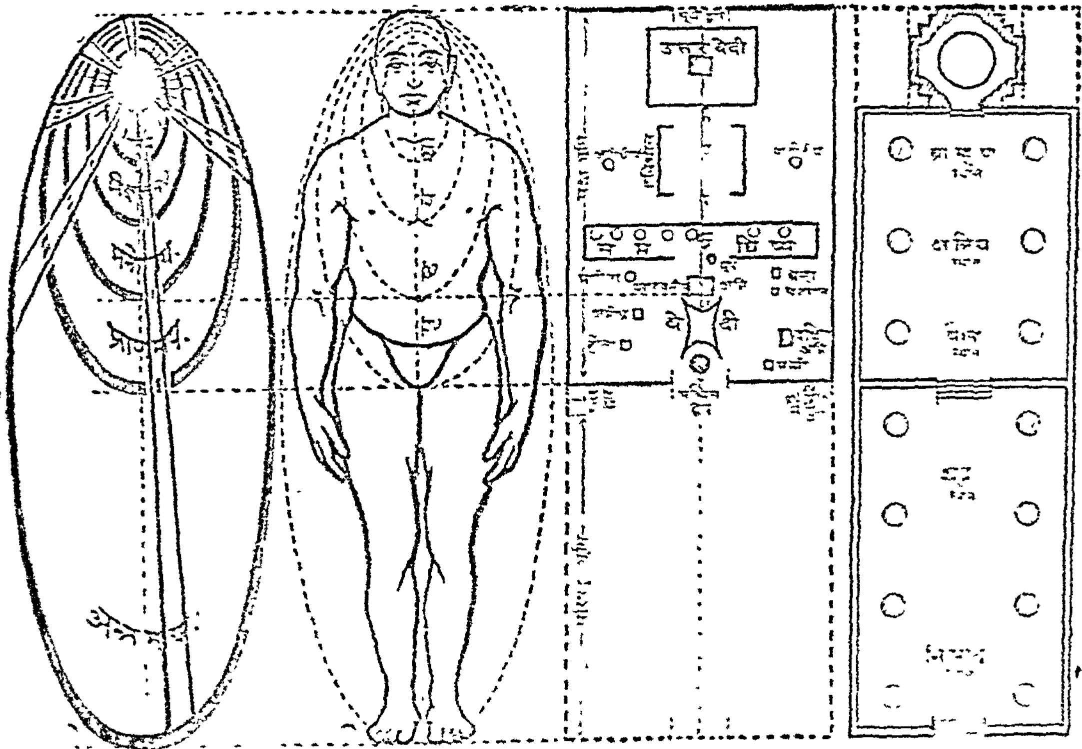
यज्ञभूमिमें अग्नि

यहां यज्ञभूमिके विषयमें थोडासा कहना आवश्यक है। यज्ञभूमिका चित्र पञ्चकोश तथा अपने शरीरके आधारपर आधारित है। यहां जाठर अग्नि है, प्रजननाग्नि है। उत्तर-वेदी यह मस्तक है। यज्ञमंडपका चित्र और शरीरकी तुलना यहां करने योग्य है। शरीरमें आत्मा, बुद्धि आदि जहां हैं वह वैसी ही संकेतरूपसे यज्ञशालामें अग्नियां हैं। आहवनीय अग्नि जाठर अग्नि है। शरीरमें, अध्यात्ममें जो गुप्त रीतिसे अन्दर ही अन्दर चल रहा है, वह बाहर बतानेके लिये यज्ञशालाका नकशा रचा है। और जिस समय यज्ञ बंद हुए उस समय देवताके मंदिर उसी यज्ञशालाके स्थान पर रचे गये हैं।

मुख्य अग्निके स्थानपर वहां देवताकी मूर्ति रखी, अग्निके स्थानपर घीका दीप आया, और हवन सामग्रीका सुगंध बतानेके लिये अगरकी बत्ती आगयी। यज्ञमें घीकी आहुतियां देते हैं वहां घीके दीपमें घी जलने लगा और सुगंधित सामग्रीके स्थानपर अगरबत्ती जलने लगी। इस तरह देवता मंदिर यज्ञशालाका प्रतीक ही है।

यह यज्ञशाला शरीरान्तर्गत आत्मा, बुद्धि आदिका कार्य बतानेके लिये थी, वही कार्य बतानेके लिये देवता मंदिरमें आत्माके स्थान पर देवतामूर्ति रखी, हवनका कार्य घृतदीप और अगरबत्तीने किया। इस तरह यह योजना शरीर और आत्माका स्वरूप बतानेके लिये थी। पर अब वह विपरीत बन गयी है यह हमारा दोष है।

अर्थात् यज्ञ भी आत्माका कार्य बतानेके लिये था। इसलिये इसको 'यज्ञस्य केतुः' कहा है। केतु सूचक होता है। केतु देखकर केतुके स्थानपर क्या हो रहा है इसकी सूचना मिलती है। आत्मा इस शरीरमें शतसांवत्सरीक यज्ञ सत्र



करनेके लिये आया है । इस यज्ञमें विघ्न करनेवाले राक्षस चारों ओर बैठे हैं । इन राक्षसोंको दूर करके इसने यह शतसांवत्सरीक यज्ञ करना है । शरीरका जीवन आत्मासे सूचित होता है । यह जीवित है या नहीं है यह दूरसे ही पता लगता है । कुत्ता या गीधको दूरसे ही पता लगता है कि यह प्राणी जीवित है वा प्रेत है । यह केतु कुत्ते और गीधको दूरसे ही दीखता है । इस कारण जीवित प्राणीके पास वे आते नहीं, परंतु प्रेतपर वे स्वयं विना डर आक्रमण करते हैं । इससे इस शतसांवत्सरीक यज्ञका यह केतु कैसा है यह ध्यानमें आ सकता है ।

तनूनपादुच्यते गर्भ आसुरो
नराशंसो भवति यद्विजायते।
मातरिश्वा यदमिमीत मातरि
वातस्य सर्गो अभवत्सरीमणि ॥ ऋ० ३।२९।११

' यह अग्नि (गर्भः) गर्भमें आता है तब (आसुरः) प्राणको चलानेवाला होनेके कारण (तनू-न-पात् उच्यते) शरीरोंको न गिरानेवाला कहा जाता है। (यत् विजायते) जब यह जन्मता है तब यह (नराशंसः) मानवोंद्वारा प्रशंसा करने योग्य (भवति) होता है । (यत्) जब यह (मातरि अमिमीत) माताके उदरमें था तबतक उसको (मातरि-श्वा) माताके अन्दर श्वास लेनेवाला कहा जाता था । (सरीमणि) जब यह हलचल करता है उस समयमें (वातस्य सर्गः अभवत्) वायुका सर्ग होता है । प्राणकी गति अधिक होती है । '

यहांके कई शब्द महत्त्वके हैं । पहिला ' तनू-न-पात् ' शरीरोंको न गिरानेवाला यह है । यह आत्मा शरीरोंको गिराता नहीं । शरीरोंको धारण करता है । यह शरीरमें रहकर शरीरोंको धारण करता है । यह शरीरमें न रहा तो शरीर गिरते हैं, मरते हैं ।

' मातरि-श्वा ' यह पद भी महत्त्वका भाव बताता है । माताके अन्दर गर्भ अवस्थामें जबतक यह रहता है तबतक वहां माताके पेटमें ही श्वासोच्छ्वास करता है ।

जब (सरीमणि) यह बाहेर आकर हलचल करने लगता है तब (वातस्य सर्गः) प्राण वायुकी हलचल शुरू (अभवत्) होती है । इसके पश्चात् (नर-आशंसः भवति) लोग इसकी प्रशंसा करने लगते हैं, क्योंकि यह विद्वान होता है, अच्छे कर्म करने लगता है । इसके कर्मोंको देखकर सब लोग इसकी प्रशंसा करते हैं ।

इस तरह अनेक बोध अग्निके वर्णनसे मिलते हैं । अग्नि अरणियोंके अन्दर गर्भ रूपसे रहता है तो उस समय ' वह लकडीके शरीरको धारण करता है, इस कारण उसको ' तनू-न-पात् ' कहते हैं। जब यह प्रकट होता है तब सब ओरसे प्रकाशित होता है। तब सब ऋत्विज उसकी स्तुति करते हैं इसलिये उसको नराशंस कहते हैं । इस तरह ये पद अग्नि पर लगते हैं और मनुष्यपर भी लगते हैं ।

इस तरह अग्नि मंत्रोंका मनन होना चाहिये । जिससे वैदिक ज्ञान जीवित और जागृत है ऐसा प्रतीत होगा ।

वेदके व्याख्यान

वेदोंमें नाना प्रकारके विषय हैं, उनको प्रकट करनेके लिये एक एक व्याख्यान दिया जा रहा है। ऐसे व्याख्यान २०० से अधिक होंगे और इनमें वेदोंके नाना विषयोंका स्पष्ट बोध हो जायगा।

मानवी व्यवहारके दिव्य संदेश वेद दे रहा है, उनको लेनेके लिये मनुष्योंको तैयार रहना चाहिये। वेदके उपदेश आचरणमें लानेसे ही मानवोंका कल्याण होना संभव है। इसलिये ये व्याख्यान हैं। इस समय तक ये व्याख्यान प्रकट हुए हैं।

१ मधुच्छन्दा ऋषिका अग्निमें आदर्श पुरुषका दर्शन।
२ वैदिक अर्थव्यवस्था और स्वामित्वका सिद्धान्त।
३ अपना स्वराज्य।
४ श्रेष्ठतम कर्म करनेकी शक्ति और सौ वर्षोंकी पूर्ण दीर्घायु।
५ व्यक्तिवाद और समाजवाद।
६ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।
७ वैयक्तिक जीवन और राष्ट्रीय उन्नति।
८ सप्त व्याहृतियाँ।
९ वैदिक राष्ट्रगीत।
१० वैदिक राष्ट्रशासन।
११ वेदोंका अध्ययन और अध्यापन।
१२ वेदका श्रीमद्भागवतमें दर्शन।
१३ प्रजापति संस्थाद्वारा राज्यशासन।
१४ त्रैत, द्वैत, अद्वैत और एकत्वके सिद्धान्त।
१५ क्या यह संपूर्ण विश्व मिथ्या है?
१६ ऋषियोंने वेदोंका संरक्षण किस तरह किया?
१७ वेदके संरक्षण और प्रचारके लिये आपने क्या किया है?
१८ देवत्व प्राप्त करनेका अनुष्ठान।
१९ जनताका हित करनेका कर्तव्य।
२० मानवके दिव्य देहकी सार्थकता।
२१ ऋषियोंके तपसे राष्ट्रका निर्माण।
२२ मानवके अन्दरकी श्रेष्ठ शक्ति।
२३ वेदमें दर्शाये विविध प्रकारके राज्यशासन।
२४ ऋषियोंके राज्यशासनका आदर्श।
२५ वैदिक समयकी राज्यशासन व्यवस्था।
२६ रक्षकोंके राक्षस।
२७ अपना मन शिवसंकल्प करनेवाला हो।
२८ मनका प्रचण्ड वेग।
२९ वेदकी दैवत संहिता और वैदिक सुभाषितोंका विषयवार संग्रह।
३० वैदिक समयकी सेनाव्यवस्था।
३१ वैदिक समयके सैन्यकी शिक्षा और रचना।
३२ वैदिक देवताओंकी व्यवस्था।

आगे व्याख्यान प्रकाशित होते जायंगे। प्रत्येक व्याख्यानका मूल्य ।≈) छः आने रहेगा। प्रत्येकका डा. व्य. ≈) दो आना रहेगा। दस व्याख्यानोंका एक पुस्तक सजिल्द लेना हो तो उस सजिल्द पुस्तकका मूल्य ५) होगा और डा. व्य. १॥) होगा।

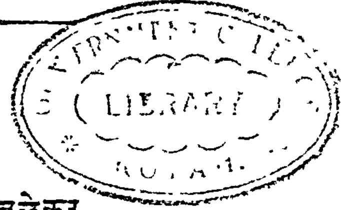
मंत्री — स्वाध्यायमण्डल आनन्दाश्रम, पारडी जि. सूरत

मुद्रक और प्रकाशक- व. श्री. सातवलेकर, बी. ए., भारत-मुद्रणालय, किल्ला पारडी (जि. सूरत)



वैदिक व्याख्यान माला — ३२ वाँ व्याख्यान

वेदमें
नगरोंकी और वनोंकी संरक्षण-व्यवस्था



लेखक
पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर
अध्यक्ष- स्वाध्याय-मंडल, साहित्यवाचस्पति, गीतालंकार

स्वाध्यायमण्डल, पारडी (सूरत)

मूल्य छः आने

स्वाध्यायमण्डलके प्रकाशन

'वेद' मानवधर्मके आदि और पवित्र ग्रंथ हैं। हरएक आर्य धर्मीको अपने संग्रहमें इन पवित्र ग्रंथोंको अवश्य रखना चाहिये।

वेदोंकी संहिताएं

		मूल्य	डा.व्य.
१	ऋग्वेद संहिता	१०)	२)
२	यजुर्वेद (वाजसनेयि) संहिता	२)	॥)
३	सामवेद	३)	।)
४	अथर्ववेद (समाप्त होनेसे पुनः छप रहा है।)		
५	यजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता	६)	१)
६	यजुर्वेद काण्व संहिता	४)	॥।)
७	यजुर्वेद मैत्रायणी संहिता	६)	१)
८	यजुर्वेद काठक संहिता	६)	१)
९	यजुर्वेद सर्वानुक्रम सूत्रम्	१॥)	॥)
१०	यजुर्वेद वा० सं० पादसूची	१॥)	॥)
११	यजुर्वेदीय मैत्रायणीयमारण्यकम्	॥)	=)
१२	ऋग्वेद मंत्रसूची	२)	॥)

दैवत-संहिता

१	अग्नि देवता मंत्रसंग्रह	४)	१)
२	इंद्र देवता मंत्रसंग्रह	३)	॥)
३	सोम देवता मंत्रसंग्रह	२)	॥
४	उषा देवता (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	२)	।)
५	पवमान सूक्तम् (मूल मंत्र)	॥)	=)
६	दैवत संहिता भाग २ [छप रही है]	६)	१)
७	दैवत संहिता भाग ३	६)	१)

ये सब ग्रंथ मूल मात्र हैं।

८	अग्नि देवता— [मुंबई विश्वविद्यालयके बी. ए. ऑनर्सके लिये नियत किये मंत्रोंका अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ संग्रह]	॥)	=)

सामवेद (कौथुम शाखीयः)

१	ग्रामगेय (वेय, प्रकृति) गानात्मकः-आरण्यक गानात्मकः प्रथमः तथा द्वितीयो भागः	६)	१)
२	ऊहगान— (दशरात्र पर्व) (ऋग्वेदके तथा सामवेदके मंत्रपाठके साथ १५२ से ११५२ गानपर्यंत)	६)	१)
३	ऊहगान— (दशरात्र पर्व) (केवल गानमात्र ६०२ से १०३६)	॥)	=)

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(अर्थात् ऋग्वेदमें आये हुए ऋषियोंके दर्शन।)

१ से १८ ऋषियोंका दर्शन (एक जिल्दमें)	१६)	२)

(पृथक् पृथक् ऋषिदर्शन)

१ मधुच्छन्दा	ऋषिका	दर्शन	१)	।)
२ मेधातिथि	,,	,,	२)	।)
३ शुनःशेप	ऋषिका	दर्शन	१)	।)
४ हिरण्यस्तूप	,,	,,	१)	।)
५ कण्व	,,	,,	२)	।)
६ सव्य	,,	,,	१)	।)
७ नोधा	,,	,,	१)	।)
८ पराशर	,,	,,	१)	।)
९ गोतम	,,	,,	२)	=)
१० कुत्स	,,	,,	२)	।=)
११ त्रित	,,	,,	१॥)	।=)
१२ संवनन	,,	,,	॥)	=)
१३ हिरण्यगर्भ	,,	,,	॥)	=)
१४ नारायण	,,	,,	१)	।)
१५ बृहस्पति	,,	,,	१)	।)
१६ वागाम्भृणी	,,	,,	१)	।)
१७ विश्वकर्मा	,,	,,	१)	।)
१८ सप्त	,,	,,	॥)	=)
१९ वसिष्ठ	,,	,,	७)	१॥)

यजुर्वेदका सुबोधभाष्य

अध्याय	१— श्रेष्ठतम कर्मका आदेश	१॥)	=)
अध्याय	३०— मनुष्योंकी सच्ची उन्नतिका सच्चा साधन	२)	≡)
अध्याय	३२— एक ईश्वरकी उपासना	१॥)	=)
अध्याय	३६— सच्ची शान्तिका सच्चा उपाय	१॥)	=)
अध्याय	४०— आत्मज्ञान-ईशोपनिषद्	२)	।=)

अथर्ववेदका सुबोध भाष्य

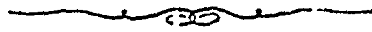
(१ से १८ काण्ड तीन जिल्दोंमें)

१ से ५ काण्ड	८)	२)
६ से १० काण्ड	८)	२)
११ से १८ काण्ड	१०)	१।

मन्त्री— स्वाध्याय मण्डल, पोस्ट- 'स्वाध्याय मण्डल (पारडी)' [जि. सूरत]

ॐ

वेदमें नगरोंकी और वनोंकी संरक्षण-व्यवस्था



नगरोंका संरक्षण उत्तम रीतिसे हुआ तो नागरिकोंको आरामसे रहनेका आनन्द प्राप्त हो सकता है। पर यदि नगरोंपर शत्रुके सतत आक्रमण होते रहे, तो नागरिकोंको रातदिन दुःखके सिवाय दूसरा कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता। इस कारण वेदमें नागरिक संरक्षणके विषयमें कौनसे आदेश हैं और उनको पालन करनेसे नगरोंका संरक्षण किस तरह हो सकता है, इसका विचार इस स्थानपर करना है।।

नगरोंका स्वरूप

नगरोंका स्वरूप उनके नामोंसे ही प्रकट हो सकता है।

१ ग्रामः- आजकल जिसको 'गांव' कहते हैं, वही यह ग्राम है। अनेक ग्रामस्थजनोंका जहां निवास होता है, पर जिसको नगर या पुर नहीं कह सकते, जो आकारमें छोटा है, जिसमें साधारण जनता बसती है, वह ग्राम (गांव) है।

२ नगरं, नगरी- (नग-रं, नग-री) (नग) पर्वतका नाम है, पर्वतके आश्रयसे जो बसी है, पर्वत जहां शोभते हैं, पर्वतोंसे जो शोभती है, पर्वतोंके समान बडे बडे प्रासाद जहां हैं, वह नगरी है। ग्रामसे यह कई गुणा बडी होती है। इस नगरीमें धनिकोंके बडे बडे प्रासाद रहते हैं।

३ पूः, पुरं, पुरी- (पिपर्ति, पॄ-पालन पूरणयोः। पूर्यते, पुर्, अग्रगमने, पुर् आप्यायने, पूरयति)- जो सब सुखसाधनोंसे परिपूर्ण रहती है, वह पुरी कहलाती है। 'पूः, पुरं, पुरी' एक ही अर्थके पद हैं। जिसमें मानवी सुखसाधनोंकी भरपूर पूर्णता है, किसी तरह न्यूनता नहीं वह पुरी है।

पुरी सबसे बडी, नगरी उससे जरा छोटी और ग्राम सबसे छोटा होता है। 'पट्टनं, पत्तनं' आदि नगर बीचकी अवस्थाके हैं। 'क्षेत्र' पद उस नगरका वाचक है, कि जो धार्मिक पवित्रताके लिये प्रसिद्ध है, भारतमें काशी, प्रयाग, नासिक आदि क्षेत्र हैं; पूना, सातारा, सूरत ये नगर हैं; बंबई, कलकत्ता, दिल्ली ये पुरीयां हैं। इस तरह पाठक जान सकते हैं।

अब यह देखना है कि, इनकी संरक्षणव्यवस्था किस तरह की जाती थी और वेद मंत्रोंमें इनके संरक्षण करनेके संबंधमें कैसे आदेश दिये हैं। बडी बडी पुरियोंके संरक्षण करनेके विषयमें हम प्रथम देखेंगे कि, क्या आदेश वेद मंत्रोंमें दिये हैं। उस वर्णनसे हम जान सकेंगे कि, छोटी नगरीयों और ग्रामोंके विषयमें क्या कहा है और उनका संरक्षण कैसा होना चाहिये, या करना चाहिये।

अष्टाचक्रा नवद्वारा अयोध्या

अयोध्या पुरीका वर्णन वेदमें किया है, वह प्रथम यहां देखने योग्य है—

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूः अयोध्या।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥ ३१
तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते।
तस्मिन् यद् यक्षं आत्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः॥ ३२॥
प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा संपरीवृताम्।
पुरं हिरण्ययीं ब्रह्मा विवेशाऽपराजिताम्॥ ३३॥
अथर्व. १०।२

वस्तुतः इन मंत्रोंमें आध्यात्मका वर्णन है, अर्थात् अपने शरीरमें रहनेवाली शक्तियोंका सुन्दर वर्णन है, पर वह वर्णन बडी विशाल पुरीके वर्णनके समान किया है अर्थात् इससे अध्यात्मदृष्टिसे आत्माके सुन्दर निवासस्थानका भी वर्णन हो रहा है और शत्रुद्वारा पराभूत न होनेवाली पुरीका भी वर्णन इन्ही पदोंसे होता है। हमें इस समय अध्यात्मके

वर्णनकी कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि हमें देखना है कि, वेदमें नगरोंकी सुरक्षाके लिये कौनसे आदेश दिये हैं। इसलिये हम यहीं नागरिक सुरक्षाका विषय ही इन मंत्रोंमें देखते हैं। इस दृष्टिसे इन मंत्रोंमें बहुत उपयोगी आदेश मिलते हैं। देखिये नगरका संरक्षण करनेके लिये क्या करना चाहिये—

१ अ-योध्या— शत्रुके द्वारा (अ+योध्या) युद्ध करके कभी पराजित न होनेवाली। शत्रुके आक्रमणोंका जिस नगरीके कीलोंपर कुछ भी परिणाम नहीं हो सकता। ऐसा अभेद्य कीला नगरके बाहर होना चाहिये।

२ नव-द्वारा— जिस नगरीके कीलेको नौ द्वार हैं। कीला जिस पुरीके चारों ओर होता है, उस कीलेकी दीवारमें बडे द्वार होते हैं। नगरके मनुष्य या प्राणी, तथा नगरके बाहरके प्राणी या मनुष्य इन ही बडे द्वारोंसे अन्दर या बाहर जा सकते हैं। हाथी, बडी गाडियां, हाथीकी या ऊंटकी गाडियां इसी द्वारोंसे अन्दर या बाहर जा सकती हैं, ऐसे ये द्वार बडे विशाल होते हैं। यहां इस अ-योध्या नगरीको नौ द्वार हैं ऐसा वर्णन है। पर कई नगरियोंको कम या कईयोंको अधिक भी द्वार हो सकते हैं। उस पुरीका व्यवहार अन्दर बाहर जितना अधिक या न्यून होगा, उसपर इन द्वारोंकी संख्या न्यूनाधिक हो सकती है। अथवा जहां शत्रुके आक्रमणकी संभावना अधिक होगी वहां द्वार कम होंगे और जहां वैसी संभावना नहीं होगी, वहां द्वार अधिक भी हो सकेंगे।

पुरं एकादश द्वारं अजस्य अवक्रचेतसः।
अनुष्ठाय न शोचति विमुक्तश्च विमुच्यते॥
कठ० उ० ५।१

यहां ग्यारह द्वारोंकी पुरीका वर्णन है। यह पुरी (अ-वक्र-चेतसः अजस) जिनका चित्त टेढा या कुटिल नहीं है, ऐसे प्रगतिशील सरल स्वभाववालोंकी यह पुरी है। यहां (अनुष्ठाय न शोचति) पुरुषार्थ प्रयत्न करनेवालोंको शोक करनेका कारण नहीं रहता, क्योंकि उनके योग-क्षेमकी उत्तम व्यवस्था यहां होती है। जो (विमुक्तः विमुच्यते) बंधनसे परे रहता है, वह यहां आनन्दमें विमुक्त जैसा रहता है। बन्धन रहित अवस्थामें रहता है।

यहां ग्यारह द्वारोंवाली पुरीका वर्णन है। उसी अयोध्या पुरीका यह वर्णन है। इन नौ द्वारोंमें दो और गुप्त द्वार अधिक गिनाये हैं। ये द्वार विशेष कारणसे ही खुलते हैं। दो आंख, दो कान, दो नासिका द्वार, एक मुख, एक मूत्र द्वार और एक मलद्वार ये नौ द्वार सबोंके लिये खुले हैं। एक नाभी और एक ब्रह्मरन्ध्र जो मस्तकमें है, जो खास विशेष उन्नत श्रेष्ठ मानवोंके लिये ही खोला जाता है। ऐसे ये ११ द्वार इस पुरीके कीलेमें हैं।

जिन्होंने कीलेके द्वार देखें होंगे, उनको पता है कि ये द्वार पास नहीं होते। पुरीके आकारके अनुसार मील दो मीलके अन्तरपर होते हैं। अर्थात् यह ब्रह्मपुरी, ब्रह्मनगरी अथवा अयोध्यानगरी दस बीस मील क्षेत्रको व्यापनेवाली बडी विशाल है। यहां नगरमें हरएक नागरिक उसके धंदेके अनुसार ही रहता है। ऐसे चार पांच विभाग इसमें रहते हैं और ऐसे गुणवान लोग नियत स्थानोंमें रहते हैं। इसलिये समान शीलोंका एक स्थान होनेसे उनको मिलजुलकर रहनेकी सुविधा रहती है।

नगरके मध्यमें यज्ञशाला या मंदिर रहता है। इसके चारों ओर विद्वान् लोग रहते हैं। उसके चारों ओर धन-धान्यका व्यापार करनेवाले, उसके चारों ओर क्षत्रिय और उसके चारों ओर कर्मचारी और सबसे बाहर जो विशेष कुछ कर नहीं सकते ऐसे लोग रहते हैं। मार्गोंकी और द्वारोंकी व्यवस्था शहरके व्यवहारपर अवलंबित रहती है। शहरके चारों ओर कीला रहता है। बीचमें भी तीन या पांच या सात कीलेकी दिवारें होती हैं। नगरके बाहरकी दिवारके बाहर जलकी परिखा रहती है। इसमें जल भरा रहता है जिससे एकदम शत्रु पुरीपर आक्रमण नहीं कर सकता। किसी किसी स्थानपर लकडियां रखकर अग्नि भी जला देते हैं, जिससे अग्निमेंसे शत्रु नहीं आक्रमण कर सकता।

पुरीके छोटी या विशाल होनेके अनुसार कीलेके द्वार संख्यामें न्यून वा अधिक हो सकते हैं और प्रत्येक द्वारपर रक्षक योग्य संख्यामें रहते हैं। तथा वे रक्षक शस्त्र-अस्त्र संपन्न रहते हैं। इस तरह नगरका उत्तम संरक्षण होता रहता है। इन शस्त्रास्त्रोंका विचार हम इस लेखके अन्तमें करेंगे। वहीं पाठक इसको देखें।

३ अष्टाचक्रा— कीलेके दिवारोंपर आठ चक्र लगे रहते हैं। इन चक्रोंमेंसे शत्रुपर गोलियोंकी तथा अन्यान्य मारक सामग्रीकी वृष्टि की जाती है। इससे दूरसे ही शत्रु-

ओंका नाश होता है और पुरीका संरक्षण होता है। ये चक्र आठ ही रहते हैं ऐसी बात नहीं है। छोटे बडे कीलेके अनुसार ये न्यून वा अधिक भी होते हैं। जिस शरीररूपी कीलेका यहां वर्णन किया है, इस कीलेमें ये चक्र ३३ हैं। इनमें आठ मुख्य हैं। बाकीके थोडी सामग्रीवाले हैं। इस तरह आवश्यकताके अनुसार ये न्यून वा अधिक भी होते हैं और कई चक्रवाले बुरुजोंपर युद्धसामग्री अधिक भी रखी जाती है। इस तरह द्वारोंपर रक्षक होते हैं, बुरुजोंपर रक्षक और संरक्षक होते हैं और युद्धसामग्री भी इन स्थानोंपर पर्याप्त रहती है।

४ यशसा संपरीवृता— यह नगरी यशसे घीरी हुई है। यहां 'यश' का अर्थ 'यश या कीर्ति' अथवा 'जल' भी है। यह नगरीका कीला जलसे भरी परिखासे युक्त रहता है। अर्थात् कीलेकी दीवारके साथ चारों ओर परीखा रहती है और उस परिखामें पानी भरा रहता है। इससे शत्रुकी सेना एकदम कीलेकी दिवारपर चढ नहीं सकती। क्योंकि शत्रुसेना समीप आते ही कीलेकी दिवारपर जो बुरुज रहते हैं वहांके चक्रोंद्वारा गोलियोंकी वृष्टि शुरू होती है। इस कारण शत्रुके सैनिक कीलेकी दिवारपर चढ नहीं सकते। इस तरह पुरी और नगरियोंका उत्तम संरक्षणका प्रबंध वेदके आदेशके अनुसार किया जाता था।

५ अ-पराजिता— संरक्षणका इतना उत्तम प्रबंध होनेसे इस पुरी या नगरीको 'अ-पराजिता' कहा है। 'अ-योध्या' भी इसी अर्थका नाम है। इतना संरक्षणका प्रबंध होनेसे इस नगरीपर शत्रु आक्रमण भी नहीं कर सकते, और आक्रमण किसी शत्रुने किया भी तो उसका पराभव ही होता है। यह भाव 'अ-योध्या' और 'अ-पराजिता' ये दो पद बता रहे हैं। अपनी नगरियोंका और अपने देशका ऐसा संरक्षण करना चाहिये।

कई कहेंगे कि अब तो विमानके हमले ऊपरसे होते हैं। इसलिये इस संरक्षणका आज कोई उपयोग नहीं है। हम कहते हैं, कि वेदमें भी विमानकी पंक्तियां आकाशमें उडती थीं ऐसा वर्णन है। अतः 'भूविवर' का उपयोग भी वेदमें लिखा है। तथा विमान होनेसे अन्यान्य शस्त्र अस्त्र हट गये हैं ऐसी बात नहीं है। साधारण शस्त्र भी चाहिये और विमानोंका आक्रमण हुआ, तो उसका बंदोबस्त भूविवरमें प्रविष्ट होकर अथवा अपने विमानोंद्वारा शत्रुको परास्त करके उसका पराजय करना आदि अनेक उपाय किये जा सकते हैं। वे सब करना और अपना संरक्षण करना, यह मुख्य बात यहां देखनी और ध्यानमें रखनी चाहिये। अपने संरक्षण करनेमें किसी तरह उदास नहीं होना चाहिये।

६ हिरण्ययी प्रभ्राजमाना पुरी— सुवर्णमयी तेजस्वी चमकनेवाली पुरी यह हो। घरोंपर सुवर्णकी नकशी हो, मंदिरोंके शिखरोंपर सोनेके पत्रे लगे हों, ऐसी अपनी नगरी चमकनेवाली हो। बाहरसे कोई आकर देखे तो वह इसके दृश्यसे पूर्णतया प्रभावित हो। संरक्षणकी तैयारी देखकर भी विदेशी प्रवासी प्रभावित हों और सुवर्णमयी नगरीको देखकर भी वे प्रभावित हों। जहां उत्तम संरक्षण है, वहां ऐसी ही संपत्ति रह सकती है। संरक्षण न रहा तो डाकू प्रबल होंगे और धन ऐश्वर्यकी लूट करेंगे। इसलिये प्रजाके धन तथा ऐश्वर्यका उत्तम संरक्षण राज्यप्रबंध द्वारा होना चाहिये।

७ तस्यां हिरण्ययः कोशः— उस उत्तम सुरक्षित पुरीमें सुवर्ण रत्नोंका बडा कोश रखा रहता है। यह राष्ट्रका खजाना है। ऐसी संरक्षणकी जहां सुव्यवस्था होगी वहां ही 'राष्ट्रीय धनकोश' सुरक्षित रह सकता है।

८ त्र्यरः त्रिप्रतिष्ठितः हिरण्ययः कोशः— तीन आरोंसे व्यवस्थित और तीन संरक्षणोंसे सुसंस्थापित वह राष्ट्रीय धनकोश अत्यंत सुरक्षित रखा जाता है। जैसे चक्रके आरे चारों ओरसे चक्रकी नाभिमें सुरक्षित रखे जाते हैं, वैसा ही यह राष्ट्रीय धनकोश तीन बाजूओंसे सुरक्षित रखा जाता है और स्थान भी तीन दिवारोंसे सुप्रतिष्ठित रहता है। राष्ट्रीय धनकोश अत्यंत सुरक्षित रखनेका यहां आदेश है, जो नागरिक सुरक्षाका प्रबंध करनेवालोंको सतत ध्यानमें रखना चाहिये।

९ स्वर्गो ज्योतिषावृतः कोशः— वह राष्ट्रीय धनकोशका स्थान तेजसे घिरा (ज्योतिषा-आवृतः) रहता है। दिनमें भी उस कोशमें प्रकाश रहता है और रात्रीके समयमें भी उत्तम प्रकाश वहां रहता है, कोशके स्थानमें अंधेरा न होना यह भी एक सुरक्षाका उत्तम प्रबंध ही है। तथा वह 'स्वर्गः सु-वर्गः' उत्तम वर्गके लोगोंका यह

*

रहनेका सुरक्षित स्थान रहता है। हीन लोगोंके रहनेका स्थान उस ओर नहीं रहता। जिस तरह स्वर्गमें– सु-वर्णके स्थानमें हीन कर्म करनेवाले नहीं जा सकते, उसी तरह जिस स्थानमें राष्ट्रीय धनकोश रखा जाता है, वहां हीन प्रवृत्तिके लोग पहुंच ही नहीं सकते। ऐसे स्थानमें राष्ट्रीय धनकोश उत्तम सुरक्षित रीतिसे रखा जाता है।

१० तस्मिन् आत्मन्वत् यक्षं— वहां उस राष्ट्रीय धनकोशकी सुरक्षाके लिये आत्मिक बलसे बलवान् पूज्य यक्ष रहता है। जो खास करके उस कोशकी सुरक्षा करता है। यह इसी कार्यके लिये विशेष सुरक्षाका अधिकारी है। यही उसका कार्य है।

११ ब्रह्मा हिरण्ययीं पुरं विवेश— इस तरहकी अति सुरक्षित सुवर्णमयी पुरीमें ब्रह्मा-विश्व सम्राट्-निरीक्षणके लिये प्रवेश करता है और सुरक्षा वहां कैसी है यह देखता है।

वास्तविक यह वर्णन अध्यात्मदृष्टिसे सचमुच अपने शरीरका ही है। आत्मा हृदयमें रहता है, यह शरीर देवोंकी बडी नगरी है, इसमें हृदय स्थान है। वहां आत्मा है। इत्यादि वर्णन करनेके लिये ये मंत्र हैं। परंतु इन मंत्रोंमें इस ढंगसे वर्णन किया है कि इस वर्णनसे उत्तम सुरक्षित नगरीका भी बोध हो जाय। यही वर्णन हमने यहांतक किया है और देखा कि नगरोंकी सुरक्षाका प्रबंध करनेके वेदके आदेश क्या हैं।

लोहेके कीले

लोहेके कीलोंका भी वर्णन वेदमें है। देखिये अनेक आयसी पुरोंका वर्णन इस मंत्रमें है—

अग्ने गृणन्तं अंहसः उरुष्य
ऊर्जो नपात् पूर्भिरायसीभिः। ऋ. १।५८।८

'हे (ऊर्जो नपात् अग्ने) बलको न गिरानेवाले अग्ने! अग्रणे! तू (आयसीभिः पूर्भिः) लोहेके कीलोंसे (अंहसः उरुष्य) पापी लोगोंके आक्रमणसे हमें बचाओ।' तथा—

शतं मा पुर आयसीररक्षन्। ऋ. ४।२७।१

'सौ लोहेके कीलोंने मेरा संरक्षण किया है।' तथा और देखिये। वेद आज्ञा देता है कि लोहेके कीले नगरोंके रक्षणार्थ नगरोंके बाहर बनाओ—

पुरः कृणुध्वं आयसीः अधृष्टाः।
ऋ. १०।१०१।८, अथर्व. १९।५८।४

'लोहेके कीलोंवाले नगर ऐसे बनाओ कि जिनपर शत्रुका (अ-धृष्टा) आक्रमण होना सर्वथा असंभव है।' सुरक्षाके लिये लोहेके कीले बनाओ और उनके अन्दर रहो। जिससे तुम सुरक्षित रहकर अपनी अनेक प्रकारकी उन्नति कर सकोगे। तथा और देखिये—

शतं पूर्भिः आयसीभिः नि पाहि। ऋ. ७।३।७

'हमारा संरक्षण सैकडों लोहेके कीलोंसे कर' अर्थात् हमारे नगरोंके बाहर सैकडों लोहेके कीले हों, जो इस प्रान्तका संरक्षण करते रहें।' सैंकडों पहाडी कीले जिस जिस प्रान्तका रक्षण करते हैं वैसे संरक्षणकी योजनाका यह वर्णन है। पहाडी स्थानोंमें इस वर्णनके अनुसार प्रत्येक पहाडीपर एक एक कीला रहे और सब कीले मिलकर उस प्रांतका संरक्षण करें। ये कीले भी लोहेके कीले हों। तथा—

मनोजवा अयमान आयसीं अतरत् पुरम्।
ऋ. ८।१००।८

'मनके समान वेगसे चलकर वह लोहेके कीलेके पार हो गया।' इस मंत्रमें भी लोहेके कीलेका वर्णन है।

प्रक्षोदसा धायसा सस्र एषा।
सरस्वती धरुणं आयसी पूः॥ ऋ. ७।९५।१

'यह सरस्वती नदी धारण शक्तिवाले जलके साथ (आयसी पूः) लोहेकी नगरीके साथ (प्र सस्रे) वेगसे चल रही है।' अर्थात् नदीके किनारेपर लोहेका कीला हो और उस नदीका पानी कीलेकी दिवारके साथ लगता हुआ जाता रहे। नदीके तटपर लोहेका कीला हो और उसमें जनोंकी वस्ती रहती हो, ऐसा यहां वर्णन है। जलके साथ कीलेका वर्णन, नदी तटपरके कीलेका वर्णन यह है। पहाडीपरका कीला और होता है और नदीके तटपरका कीला और प्रकारका होता है। और देखिये—

अधा मही न आयसी अनाधृष्टो नृपीतये।
पूः भवा शतभुजिः॥ ऋ. ७।१५।१४

'तू (अनाधृष्टः) शत्रुसे आक्रान्त न होकर (नः नृपीतये) हमारे मानवोंके संरक्षण करनेके लिये (शत भुजिः मही आयसीः पूः भव) सैंकडों मानवोंको सुरक्षित रखनेवाली बडी लोहेके प्राकारवाली नगरी जैसी सुरक्षा तू कर। जिस तरह बडा लोहेका कीला मानवोंका संरक्षण करता है, उस तरह यह वीर संरक्षण करे।'

यहां 'मही आयसी पूः' बडी लोहेकी प्राकारवाली नगरीका वर्णन है। यहां 'आयसी पूः' का अर्थ लोहेके प्राकारवाली नगरी है। वह 'मही' अर्थात् बडी है। बडी बडी नगरियां प्राकारवाली थीं, यह इन पदोंका भाव है, ये झोंपडोयोंके नगर नहीं हो सकते, जिनके बाहर बडे प्राकारवाले कीले हों, वे नगर अच्छे पक्के मकानोंके ही हो सकते हैं। बडी नगरियोंका और भी स्पष्ट वर्णन है।

पृथ्व पृथिवी बहुला न उर्वी। ऋ. १।१८९।२

'विशाल विस्तीर्ण बडी नगरी' का यह वर्णन है। 'उर्वी पूः' अर्थात् विशाल विस्तारवाली नगरी। यह छोटा ग्राम नहीं है। यह विस्तीर्ण पुरीका वर्णन है।

पहिले अनेक मंत्रोंमें 'आयसी पुरी' का वर्णन आया है। लोहेकी नगरीका अर्थ जिसके कीलेके प्राकारमें लोहा लगा है। लोहेका उपयोग कीलेकी दिवारोंमें किया जाता था, यह इससे स्पष्ट होता है। कीलेकी दिवारोंमें लोहेका बर्ताव करनेके लिये लोहेके कारखाने चाहिये। इतना लोहा पैदा न होगा, तो उसका उपयोग कीलोंकी दिवारोंमें नहीं हो सकेगा। यहां एक ही लोहेका कीला नहीं, परंतु सैंकडों लोहेके कीलोंका वर्णन है। इस कारण लोहा बहुत उत्पन्न होना चाहिये। और वह कीलोंकी दिवारोंमें अच्छी तरह लगने योग्य होना चाहिये। 'आयस' का दूसरा कोई अर्थ नहीं होता। लोहेकी बनी वस्तुको ही आयसी कहते हैं। कीलेकी दिवारोंमें थोडासा लोहा लगाना उपहास करना है। अच्छी तरह कीलेकी दीवार मजबूत होने इतना लोहा लगाया जाय तो ही दिवारकी मजबूती हो सकती है।

जिनको इतना लोहा होनेकी परिस्थिति वैदिक समयमें नहीं थी ऐसा प्रतीत होता है वे 'आयसी' का अर्थ 'पत्थर' मानते हैं और पत्थरकी दीवार उन कीलोंकी थी ऐसा समझते हैं। पर यह गलत कल्पना है, क्योंकि पत्थरकी दिवारोंके कीलोंके लिये वेदमें 'अश्ममयी पुरी' का वर्णन है, वह अब देखिये—

शतं अश्मन्मयीनां पुरां इन्द्रो व्यास्यत्।
दिवोदासाय दाशुषे ॥ ऋ. ४।३०।२०

'दाता दिवोदासके हितके लिये इन्द्रने शत्रुके सैंकडों (अश्मन्मयीनां पुरां) लोहेके कीलोंको (व्यास्यत्) तोडा।' यहां शत्रुके पत्थरोंसे बने कीले थे, जो इन्द्रने तोडे ऐसा वर्णन है।

पत्थरोंके कीले और लोहेके कीले ये विभिन्न हैं इसमें संदेह नहीं हो सकता। ये पृथक् नाम ही ये दो कीले पृथक् हैं यह बता रहे हैं। कच्ची ईंटोंके कीले भी थे।

आमासु पूर्षु। ऋ. २।३५।६

'(आमा पूः) कच्ची ईंटोंकी दिवारकी नगरीका वर्णन यहां है।' यहां तीन प्रकारके कीलोंका वर्णन हुआ है।

१ आयसीः पूः = लोहेके प्राकारवाली नगरी।

२ अश्मावती पूः = पत्थरोंके प्राकारवाली नगरी।

३ आमा पूः = कच्ची मिट्टीकी प्राकारवाली नगरी।

इन तीन नामोंसे स्पष्ट कल्पना आ सकती है, कि ये तीन प्रकारके प्राकार विभिन्न हैं। कच्ची मिट्टीकी दीवार अथवा कच्ची ईंटोंकी दीवार यह तो साधारण गरीब गांवकी कीलेकी दीवार होगी। पत्थरोंकी दीवार बडे मजबूत नगरीकी कीलेकी दीवार होगी और उससे धनवान बडे नगरकी दीवार लोहेके संयोगसे बनी होगी। तीन विभिन्न नगरोंकी ठीक कल्पना इस वर्णनसे पाठकोंको हो सकती है।

इससे यह सिद्ध हुआ कि कीलोंकी दिवारोंको मजबूत करनेके लिये दिवारोंमें लोहेका उपयोग किया जाता था।

गायोंवाली नगरी

गाइयोंसे युक्त नगरियोंका वर्णन भी वेदमें दीखता है। इस विषयमें यह मंत्र देखिये—

आ न इन्द्र महीं इषम्
पुरं न दर्षि गोमतीम्।
उत प्रजां सुवीर्यम् ॥ ऋ० ८।६।२३

'हे इन्द्र! तू (महीं इषं) बहुत अन्न, (गोमतीं पुरं) गाइयें जहां बहुत हैं ऐसा नगर और उत्तम वीर्यवान प्रजा देता है।' यहां बहुत गौवें जहां हैं, ऐसे बडे नगरोंका वर्णन है। 'पुरं' का अर्थ बडा नगर है, जिस नगरके बाहर कीला रहता है, वह पुर है। छोटे ग्रामको 'पुर' नहीं कहते। ऐसे बडे नगरमें बहुत गौवें हों और बाहिर कीला हो ऐसे नगरका यह वर्णन है।

हमने (आयसी पूः) लोहेके कीले, (अश्ममयी पूः) पत्थरोंसे बनाये कीले, (आमा पूः) कच्ची मिट्टीके या कच्ची ईंटोंके बनाये कीले देखे। अब (गोमती पूः) गाइयोंसे युक्त कीले भी देखें। ये सब नगर बडे विशाल थे और सुरक्षाके लिये इनके बाहर कीलेकी दिवारें रहती थीं। कीलेकी दिवारें एकसे लेकर सात सात दिवारें भी रहती थीं। नगरीके छोटे या बडे होनेके कारण दिवारोंकी

संख्या कम या अधिक होती थी । इससे स्पष्ट होता है कि वेदमें कहे नगर बडे विशाल थे और उनकी सुरक्षाके लिये बडी कीलेकी दिवारें, और उनमें बडी द्वारें होती थीं और सुरक्षाका उत्तम प्रबंध रहता था ।

नगरोंमें ' सुवर्ग ' के लोगोंके लिये पृथक् तथा अत्यंत सुरक्षित स्थान रहते थे और ' दुर्वर्ग ' के लोगोंके लिये अर्थात् जो लोग अपराध करते हैं, उनके लिये पृथक् स्थान रहते थे ।

इस तरह नगरोंकी रचना हुआ करती थी । जहां सुवर्गके लोग रहते हैं वहां दुष्ट कर्म करनेवाले पहुंचने न पांय ऐसी उत्तम व्यवस्था राजप्रबंध द्वारा रहती थी । वे कुकर्मी लोग सुधर जानेपर ही उनको सुवर्गके लोगोंके स्थानमें रहनेकी आज्ञा मिलती थी । क्षीण पुण्य होनेसे ' सुवर्गाल्लोकाच्च्यवन्ते । ' सुवर्ग लोकसे निकाले जाते थे । इससे जनताको सत्कर्म करनेका उत्साह बढता था और दुष्ट कर्म करनेकी प्रवृत्ती दूर होती थी । इस तरह मानवोंकी उन्नति करनेका यह उत्तमसे उत्तम वैदिक मार्ग था । अब ' शारदी पुर ' का वर्णन देखिये—

विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः
पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः ।
सासहानो अवातिरः ॥ ऋ. १।१३१।४
दनो विश इन्द्र मृध्रवाचः ।
सप्त यत् पुरः शर्म शारदीर्दर्त् ॥ ऋ. १।१७४।२
सप्त यत् पुरः शर्म शारदीर्दर्त् ।
हन् दासीः पुरु कुत्साय शिक्षन् ॥ ऋ. ६।२०।१०

' (पूरवः) पुरवासी लोग इसके इस पराक्रमका वृत्त (विदुः) जानते हैं । इन्द्रने (शारदीः पुरः) शारदीय नगरोंको (अवातिरः) तोड दिया। (सासहानः अवातिरः) शत्रुके आक्रमणोंको सहकर शत्रुके शारदीय नगरोंको—कीलोंको—इन्द्रने तोड दिया था। (मृध्रवाचः विशः) व्यर्थ बकवाद करनेवाली शत्रुकी मूर्ख प्रजाको मारा और उनके सुखसे रहने योग्य सात शारदीय नगरोंको तोड दिया । विनाश करनेवाली शत्रुके दुष्ट प्रजाको मारा, पुरुकुत्सको सुख दिया और उन शत्रुओंके शारदीय वस्तिके सात नागरीय कीलोंको तोड दिया ।

शरदृतुमें सुखसे रहनेके लिये बनाये कीलोंके नगरोंको ' शारदी पुर ' कहते हैं । इससे अनुमान हो सकता है कि ऋतुके अनुसार रहनेके लिये योग्य हवापानीकी अनुकूलताके भी नगर होंगे । आज भी हिमालयमें गर्मीके समय ऊपर जाकर लोग रहते हैं और सर्दीमें नीचे रहते हैं । इसी तरहके ये ' शारदी पुर ' होंगे । अब और एक पुर है वह देखिये—

शत भुजिभिः तं अभिन्हुतेः अघात् पूर्भी रक्षता
मरुतो यं आवत । जनं यं उग्राः तवसो विरप्शिनः पाथना शंसात् तनयस्य पुष्टिषु ॥
ऋ. १।१६६।८

' हे मरुतो ! (यं आवत) जिसका संरक्षण तुम करते हैं, (तं) उसका (अघात् अभिन्हुतेः) पापसे तथा विनाशसे (शंत भुजिभिः पूर्भिः) सैंकडों भोगसाधन जिनमें रहते हैं, ऐसे नगरोंके कीलोंसे (रक्षत) रक्षण करते हैं । हे (उग्राः तवसः विरप्शिनः) हे शूर बलशाली और प्रशंसा योग्य मरुतो ! तुम (यं जनं) जिस मनुष्यका रक्षण करते हैं उसके (तनयस्य) पुत्रपौत्रोंका पोषण करके (शंसात् पाथन) दुष्कीर्तिसे बचाव करते हैं । '

इस मंत्रमें ' शतभुजिभिः पूर्भिः ' ये पद हैं । सैंकडों भोगसाधन जिनमें हैं ऐसे नगर यह एक अर्थ इसका है और दूसरा अर्थ यह है कि सौ दिवारें जिसमें हैं ऐसे नागरिक कीले । कोई भी अर्थ हो यह एक जातीके पुर हैं । ' पू-पुर् ' ये पद कीलोंके नगरोंके लिये ही बर्ते जाते हैं, यह बात मुख्य है । कीले फिर लोहेके हों, पत्थरके हों, कच्ची ईंटोंके हों या और किसीके हो । परंतु वे कीलेके अन्दरके नगर हैं इसमें संदेह नहीं है । यहांका ' शत-भुजिः ' पद सैंकडों भोगसाधनोंका विशेषकर वाचक है । इस विषयमें और देखिये—

अधा मही न आयसी अनाधृष्टो नृपीतये ।
पूः भवा शतभुजिः ॥ ऋ. ७।१५।१४

' हे अग्ने ! तू (अनाधृष्टः) पराभूत न होनेवाला (नृपीतये) जनताका संरक्षण करनेके लिये (मही आयसी शतभुजिः पूः भव) बडी विस्तृत लोहेकी सौ गुणा बडी कीलेकी नगरी जैसा हो । ' इस मंत्रमें " मही आयसी शतभुजिः पूः " ' बडी लोहेकी सौ विभागोंवाली पुरी ' का वर्णन है । बडे नगरमें सैंकडों विभाग रहनेकी सुविधासे किये जहां होते हैं, उस नगरीका यह वर्णन है । अर्थात् यह वर्णन पूर्वमें किये पुरियोंके वर्णनोंसे अधिक बडी नगरीका वर्णन है, इसमें संदेह नहीं है । इस समय तक—

१ अमा पूः
२ उर्वी पूः
३ पृथ्वी पूः
४ अश्ममयी पूः
५ आयसी पूः
६ गोमती पूः
७ शारदी पूः
८ महीं आयसी शतभुजिः पूः

इतनी आठ नगरियोंका वर्णन हमने देखा । इसके अतिरिक्त 'नगरी, ग्राम ' आदिका भी वर्णन देखा है । इतने प्रकारके नगरोंका वर्णन बताता है कि वैदिक समयमें अनेक प्रकारके छोटे मोटे शहर थे । और बडी बडी पुरियां भी अनेक प्रकारकी थीं, जिनके चारों ओर कीलेकी दिवारें थीं और उन दिवारोंपर गोला बारूद फेंकनेके चक्र लगे रहते थे । इससे पता लग सकता है कि नगरोंकी सुरक्षाके लिये उस समयकी राज्यव्यवस्थासे कितनी संनद्धता थी ।

आजकल हम ये पद कैसे भी प्रयुक्त करते हैं, पर 'पुः पूः पुर्रः ' जो होगी उसके बाहर कीलेकी दीवार अवश्य रहनी चाहिये, नगरी (नग-री) पर्वतपर ही बसी होनी चाहिये ऐसे इनके लक्षण वैदिक समयमें रूढ थे । इस विषयका अधिक विचार होना आवश्यक है इसलिये हम इनके कुछ मन्त्र यहां अधिक संख्यामें देते हैं ।

आयसी पूः

नीचे लिखे मंत्रोंमें 'आयसी पूः ' का वर्णन है—

तस्मै तवस्यं अनु दायि सत्रा इन्द्राय देवेभिः
अर्णसातौ । प्रति यद् अस्य वज्रं बाह्वोः धुः
हत्वी दस्यून् पूर आयसीः नि तारीत् ॥

ऋ. २।२०।८

'जलकी प्राप्ती हो इसलिये दिव्य विबुधोंके द्वारा उस इन्द्रके लिये (तवस्यं) बलवर्धक हवि दिया जाता है। इस इन्द्रके बाहुपर जिस समय (वज्रं प्रतिः धुः) वज्र धारण किया जाता है । उस समय वह इन्द्र (दस्यून् हत्वी) शत्रुओंका वध करता है और शत्रुओंके (आयसीः पुरः) लोहेके कीलोंको (नि तारीत्) तोड देता है ।'

इस मंत्रमें इन्द्र लोहेके कीलोंको तोड देता है और शत्रुओंका वध करता है ऐसा कहा है । अर्थात् ये कीले शत्रुओंके हैं । यहां 'आयसीः पुरः ' लोहेके अनेक कीले शत्रुके इन्द्रने तोडे हैं ऐसा वर्णन है । अर्थात् शत्रुके भी लोहेके कीले होते थे, जैसे आर्योंके होते थे । यह बात यहां स्पष्ट हो रही है । और इन्द्रकी शक्ति अर्थात् सैनिक बल इतना विशाल रहता है कि शत्रुके बडे बडे दुर्ग रहे, तो भी वह उन सबको तोड देता है । और सब शत्रुओंका वध वह करता है ।

अपना बल शत्रुके बलसे अधिक रहना चाहिये यह इसका तात्पर्य है । जिस राजाके पास बल न हो उस राजाका मूल्य कुछ भी नहीं रहता । शक्तिसे ही शासकका महत्त्व रहता है । देखिये—

व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणो
वर्म सीव्यध्वं बहुला पृथूनि ।
पुरः कृणुध्वं आयसीः अधृष्टाः ।
मा वः सुस्रोत् चमसो दंहता तम् ॥

ऋ. १०।१०१।८; अथर्व. १९।५८।४

१ व्रजं कृणुध्वम् स हि वो नृपाणः— गोशालाएं बनाओ, वह स्थान आपके लिये दुग्धपान करनेका है।
२ वर्म सीव्यध्वं, बहुला पृथूनि— कवच सीवो, ये कवच बहुत हों और बडे शक्तिशाली मोटे हों, (फटनेवाले न हों) ।
३ अधृष्टा आयसीः पुरः कृणुध्वम्— शत्रुसे आक्रमण जिनपर नहीं हो सकता ऐसी लोहेकी दीवारवाली पुरियां बनाओ, कीलेकी दीवारोंवाली नगरियां बनाओ जिससे शत्रुका भय किसी तरह न हो ।
४ वः चमसः मा सुस्रोत्, तं दंहत— आपका बर्तन चूते न रहें उनको आप सुदृढ करो ।

इस मंत्रमें 'अधृष्टा आयसी पुरः कृणुध्वं ' शत्रुका हमला जिनपर नहीं हो सकता ऐसी लोहेकी दीवारवाली पुरियां बनाओ ऐसा कहा है । यह वेदका आदेश वैदिक धर्मियोंके लिये है । नगर ऐसे बनें की जिनपर शत्रुका आक्रमण न हो सके । आक्रमण शत्रुने किया तो उनका नाश किया जाय ऐसा शस्त्रास्त्रोंका प्रबंध कीलेकी दिवारपर ही हो। चक्र आदि दीवारपर लगे रहें । शत्रु आनेपर उनका तत्काल नाश किया जा सके ऐसा प्रबंध रहे। शत्रुका आक्रमण होनेके पूर्व ही यह सब अपनी तैयारी होनी चाहिये । आक्रमण होनेपर ऐन वक्तपर कुछ भी नहीं हो सकता । इस

लिये वेद अपनी संरक्षणकी तैयारी पहिलेसे ही करके रखो, ऐसी सावधानीकी सूचना दे रहा है ; कवच पहिलेसे सीकर मजबूत करके रखो। यह सब लढाईकी तैयारी ही है।

राष्ट्रमें शत्रुसे लडाई करनेकी सिद्धता सदा रहनी चाहिये। शान्ति रखना यह अपना उद्देश्य है ही, हम किसी दूसरेपर हमला नहीं करेंगे, पर किसीने हमपर आक्रमण किया तो हम चुप भी नहीं रहेंगे, ऐसे शत्रुको हम रहने नहीं देंगे।

क्षत्रियोंकी तैयारी

राष्ट्रमें क्षत्रियोंका अस्तित्व इसीलिये है कि, वे शत्रुसे लडनेके लिये तैयार रहें और वे सदा जनताका संरक्षण करें, इसीलिये कहा है—

क्षत्राय राजन्यम्। वा. यजु. ३०।२

'(क्षत्+त्राय) शत्रुके आघातसे बचानेके लिये (राजन्यं) क्षत्रियको नियुक्त करो।' 'क्षत्र'= पदका अर्थ 'राज्य, शक्ति, राज्यशासन, राज्यशासक मण्डल, युद्ध करनेवाले शूर, शौर्य, धैर्य, प्रतापी लोक।' '**क्षतत्राणात् क्षत्रं, क्षत्रेण युक्तः क्षत्रियः**' क्षत अर्थात् दुःखसे जो संरक्षण करता है वह क्षत्रिय है। '**क्षण् हिंसायां**' इस धातुसे क्षत पद बनता है, इस कारण इस 'क्षत' का अर्थ 'हिंसा, दुःख, कष्ट, हानि, अवनति' आदि है। राष्ट्रको अवनतिसे जो बचाता है वह क्षत्रिय है, शत्रुओंके आक्रमणसे बचानेवाला वीर क्षत्रिय कहाता है। जिन गुणोंसे राष्ट्रके स्वत्वकी सुरक्षा होती है, देशका बचाव होता है उन गुणोंका नाम 'क्षत्र' (क्षत्-त्र) है।

ऐसे कार्योंके लिये क्षत्रियोंको नियुक्त करना चाहिये, ग्राम, नगर, पुर आदिकोंका संरक्षण करनेका कार्य ये क्षत्रिय करें। इन वीरोंके विषयमें वेदमें ऐसे मंत्र आये हैं—

नयसि इत् उ अति द्विषः कृणोषि उक्थशंसिनः। नृभिः सुवीर उच्यसे ॥ ऋ. ६।४५।६

" (द्विषः) शत्रुओंसे (अति नयसि) बचाकर पार ले जाता है (इत् उ) और लोगोंको (उक्थ-शंसिनः कृणोषि) स्तुति करनेवाले बनाता है अतः (नृभिः सुवीरः उच्यते) सब मनुष्य तुम्हें उत्तम वीर कहते हैं। " शूर पुरुषका यही कार्य है कि वह जनताका शत्रुओंसे संरक्षण करें और वह लोगोंको ईश्वरकी स्तुति करनेके कार्यमें लगावे। तथा और देखिये—

शूरग्रामः सर्ववीरः सहावान् जेता पवस्व सनिता धनानि। तिग्मायुधः क्षिप्रधन्वा समत्स्वषाळ्हः साह्वान् पृतनासु शत्रून्।

ऋ. ९।९०।३

" (शूरग्रामः) शौर्य वीर्यादि क्षात्र गुणोंसे युक्त, (सहावान्) शत्रुके आक्रमणोंको सहन करके अपने स्थान पर स्थिर रहनेवाला, (जेता) विजयशाली, (धनानि सनिता) धनोंका दान करनेवाला, (तिग्म-आयुधः) तीक्ष्ण शस्त्रोंवाला (क्षिप्र-धन्वा) धनुष्यसे बाण शीघ्रातिशीघ्र फेंकनेवाला (समत्सु अषाळ्हः) युद्धोंमें शत्रुके लिये असह्य (पृतनासु शत्रून् साह्वान्) युद्धोंमें शत्रुके साथ शौर्यसे युद्ध करनेवाला (सर्व-वीरः) सब प्रकारसे वीरताके गुणोंसे युक्त है, वह तू इन गुणोंसे (पवस्व) हमें पवित्र कर। "

इस मंत्रमें वीरोंमें कौनसे गुण रहने चाहिये वे सब गुण दिये हैं। हमारे कीलोंके नगरोंमें रक्षणार्थ जो वीर रखने चाहिये वे ये हैं। नगर रक्षणार्थ वीर रखे जाते हैं, कीलोंके द्वारोंपर तथा कीलोंके बुर्जोंपर रखे होते हैं, तथा युद्धमें प्रत्यक्ष जाकर लडनेवाले वीर होते हैं, ये सब वीर उत्तमसे उत्तम शूर होने चाहिये। तथा—

असमं क्षत्रं असमा मनीषा। ऋ. १।५४।८

वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः। वा. यजु. ९।२३; श. प. ब्रा. ५।२।२।५; तै. सं. १।७।१०

राष्ट्रमें 'क्षात्र शक्ति विशेष हो, तथा बुद्धि भी विशेष हो।' तथा 'हम राष्ट्रमें अग्रभागमें रहकर जागते रहें।' अर्थात् हम शूर वीर होकर राष्ट्रहितार्थ सतत जागते रहें। अपने राष्ट्रकी उन्नति करनेके कार्यमें हम सुस्ती न दिखावें। हमारे प्रयत्न किसके लिये होने चाहिये, इस विषयमें देखिये—

महते क्षत्राय, महत आधिपत्याय, महते जानराज्याय। वा. यजु. ९।४०; तै. सं. १।८।१०

'बडे शौर्यके लिये, बडे अधिकारके लिये तथा बडे जानराज्य-लोकराज्य-के लिये हमारे प्रयत्न होने चाहिये।' जानराज्यकी उत्तम व्यवस्था हो, सच्चा लोकराज्य संस्थापित हो, सर्वजनहितकारी राज्यशासन हो इसलिये हम सबके प्रयत्न होने चाहिये।

पूर्व स्थानमें जनताका संरक्षण करनेके लिये नगरके बाहर बड़े बड़े कीले किये जांय, इन कीलोंकी दिवारें पत्थरोंकी, लोहेकी तथा पक्की ईंटोंकी हों ऐसा कहा है। अब कहते हैं कि उनमें जो लोग रहेंगे वे उत्तम शूर वीर हों, तथा वे उत्तम जानराज्यकी स्थापना करनेके लिये यत्न करनेवाले हों। इन कीलोंकी पुरियोंमें सच्चा जनताका राज्य हो। वहां अनियन्त्रित राज्यशासन न हो, परंतु प्रजा द्वारा नियंत्रित शासन हो।

बलाय अनुचरम्। वा. यजु. ३०।८५

'सैन्यके लिये अथवा अपना बल बढानेके लिये अनुकूल चलनेवालोंको नियुक्त करो।' आज्ञाके अनुसार चलनेवाले सैनिक ही राष्ट्रकी उत्तम सुरक्षा कर सकते हैं। इसलिये सैन्यमें शिस्त ऐसी रखनी चाहिये कि वहां सब कार्य आज्ञाके अनुसार ही होता रहे। कोई एक भी आज्ञाका उल्लंघन करनेवाला न हो। इससे संरक्षक सेनामें उत्तम शिस्त और बल रह सकता है।

नरिष्ठायै भीमलम्। वा. यजु. ३०।१४

'(नरि-स्थायै) नरोंकी स्थिति उत्तम रहनेके लिये (भीमलं) महाप्रतापी रक्षक रखो।' जनतामें सुस्थिति रहनेके लिये जो रक्षक रखे जांय वे दीखनेमें भयानक हों। साधारण मनुष्य उनसे डरें ऐसे रक्षक नगरोंमें सुरक्षाके लिये स्थान स्थानपर रखे जांय।

पिशाचेभ्यो वि-दल-कारीम्। वा. यजु. ३०।३९

'पिशाच जैसे क्रूर कर्म करनेवालोंसे जनताकी सुरक्षा करनेके लिये विशेष सेनाकी दल रचना करनेवालेको रखो।' वह सेनाकी टुकडियोंकी विशेष रचना करेगा और उनके द्वारा पिशाच सदृश दुष्टोंको दूर करेगा।

'पिशितं आचामति इति पिशाचः'= जो कच्चा मांस खाते हैं, रक्त पीते हैं, ऐसे दुष्ट कर्म करनेवालोंसे प्रजाका बचाव करना है वो सेनाकी विशेष रचना करके ही प्रजाको सुरक्षित रखना चाहिये। छोटी छोटी टुकडियां सेनाकी बनाकर इनसे प्रजाजनोंका संरक्षण करना योग्य है। इसी तरह—

यातुधानेभ्यः कण्टकी-कारीम्। वा. यजु. ३०।४०

'डाकुओंसे रक्षा करनेके लिये कांटेवाले शस्त्र रखनेवाले सैनिकोंको नियुक्त करो।' कण्टकीका अर्थ कांटेवाला शस्त्र। जिसपर चारों ओर कांटे रहते हैं ऐसा शस्त्र। जिसके आघातसे डाकुओंपर कांटोंका आघात होकर डाकुओंका शीघ्र नाश हो सकता है।

शस्त्रास्त्र बनानेवाले

पूर्वोक्त रीतिसे कहां किसकी नियुक्ति करनी चाहिये इस विषयमें आदेश वेद मंत्रोंमें है। अब शस्त्रास्त्र निर्माण करनेके विषयमें आदेश देते हैं—

मेधायै रथकारम्॥ १९॥
शरव्यायै इषुकारम्॥ २२॥
हेत्यै धनुष्कारम्॥ २३॥
कर्मणे ज्याकारम्॥ २७॥ वा. यजु. ३०

'रथ बनानेवाले, बाण बनानेवाले, धनुष्य निर्माण करनेवाले, धनुष्यकी डोरी बनानेवाले कारीगरोंको रखो।' ये शस्त्रास्त्र तैयार करते रहें और रक्षक सैनिकोंको जितने चाहिये उतने शस्त्रास्त्र समय समय पर प्राप्त होते रहें। इस तरह वेदने नगरोंके रक्षणके लिये कीलोंकी रचना करनेके विषयमें जैसा कहा है, वैसा ही सैनिकोंकी व्यवस्थाके विषयमें भी कहा है और सैनिकोंके शस्त्रास्त्रोंके संबंधमें भी कहा है।

अपने रक्षक सैनिकोंके पास शीघ्रगामी वाहन चाहिये, अन्यथा वे डाकुओंको पकडनेमें असमर्थ रहेंगे। इस विषयमें वेद मंत्रोंमें कहा है—

अरिष्ट्यै अश्व-सादम्॥ ८८॥
भर्मेभ्यो हस्तिपम्॥ ६१॥
जवाय अश्वपम्॥ ६२॥ वा. यजु. ३०

'(अ-रिष्ट्यै) अविनाशके लिये घुड सवारको, विशेष गतिके लिये हाथी सवारको तथा वेगसे जानेके लिये घोडोंके पालन करनेवालेको रखो।' ये समयपर वेगवान् वाहनमें लगाकर वेगसे होनेवाले कार्यको कर सकते हैं। चोर, डाकू आदि भागने लगे, तो उनको पकडनेके लिये उनसे अधिक वेगवान् साधन अपने पास चाहिये। यह तो सीधी बात है।

रक्षकोंकी नियुक्ति

जैसे नगरोंके संरक्षणके लिये रक्षक रखने चाहिये, उसी प्रकार वन आदिके लिये भी संरक्षक रखने चाहिये। नगरके चारों ओर कीला बनाया जा सकता है, वैसा वनके चारों ओर नहीं बना सकते, पर वनादिके लिये रक्षक तो रख सकते हैं। इस विषयमें ये वेदमंत्र देखने योग्य हैं—

वनाय वनपम् ॥ १५१ ॥
अन्यतो अरण्याय दावपम् ॥ १५२ ॥
पर्वतेभ्यः किं पुरुषम् ॥ १२२ ॥
सानुभ्यः जम्भकम् ॥ १२१ ॥
गुहाभ्यः किरातम् ॥ १२० ॥
नदीभ्यः पुञ्जिष्ठम् ॥ ३१ ॥
सरोभ्यो धैवरम् ॥ १११ ॥
तीर्थेभ्यः आन्दम् ॥ ११७ ॥
यादसे शाबल्यम् ॥ १५५ ॥
उत्कूलनिकूलेभ्यः त्रिष्ठिनम् ॥ ९६ ॥
विषमेभ्यो मैनालम् ॥ ११८ ॥
वैशन्ताभ्यो बैन्दम् ॥ ११३ ॥
नड्वालाभ्यः शौष्कलम् ॥ ११४ ॥
पाराय मार्गारम् ॥ ११५ ॥
आवाराय कैवर्तम् ॥ ११६ ॥
स्थावरेभ्यो दाशम् ॥ ११२ ॥
ऋक्षिकाभ्यो नैषधम् ॥ ३२ ॥ वा. यजु. ३०

वनका रक्षण करनेके लिये एक वनरक्षक नियत करो वह वनका संरक्षण करे। अरण्यका आगसे बचाव करनेके लिये एक अग्निरक्षक रखो, पर्वतोंका रक्षण करनेके लिये एक अधिकारी रखो, पहाडियोंकी उतराईके रक्षणके लिये एक रक्षक रखो। गुहाओंकी सुरक्षाके लिये किरातको रखो, वे किरात गुहाओंकी सुरक्षा करेंगे। नदियोंकी रक्षाके लिये पुंजिष्टको रखो और सरोवरोंकी रक्षाके लिये धीवरको रखो। तीर्थोंकी सुरक्षाके लिये एक अधिकारी रखो। साधारण जल स्थानोंकी रक्षाके लिये शबरोंको रखो। पानीके चढाव तथा उतारके लिये तीनों स्थानोंमें रहनेका जिनको अभ्यास है वैसे पुरुषको रखो। विषम स्थानोंका रक्षण करनेके लिये तथा छोटे छोटे तालावोंके लिये, तथा गीले स्थानोंके लिये योग्य पुरुषोंको संरक्षणके लिये रखो। नदीके पार जानेके स्थानपर मार्ग उत्तम रीतिसे जो जानते हैं उनको रखो। इसी तरह उतारके स्थानपर कैवर्तको रखो क्योंकि ये पानीके मार्गको ठीक तरह जानते हैं। स्थावरके रक्षणके लिये तथा क्रूर पशु जहां होते हैं उन स्थानोंकी सुरक्षाके लिये वन्य लोगोंको रखो।

यहां वन, जंगल, पानीके स्थान, पहाडके चढ उतार, नदियोंके चढ उतारके स्थानोंपर संरक्षक नियुक्त करनेकी आज्ञाएं हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि वेदमें नगरोंमें रहनेवालोंके रक्षणार्थ ही आज्ञाएं दी हैं ऐसा नहीं, परंतु वनों और जंगलोंको भी सुरक्षित रखनेके लिये वहांके विशेष विशेष स्थानोंपर सुयोग्य अधिकारी रखनेके आदेश दिये हैं। इस तरह वैदिक कालमें आप जंगलमें गये तो भी वे घने जंगल, पर्वतोंकी गुहाएँ, नदियोंके स्थान आपको सुरक्षित मिलेंगे। सर्वत्र सुरक्षाका उत्तम प्रबंध था और किसी जगह संरक्षण नहीं है ऐसा राष्ट्रभरमें एक भी स्थान आपको नहीं मिलेगा। ऐसा सुरक्षाका उत्तम प्रबंध करनेके लिये वेद आज्ञा दे रहा है। तथा अब गृहरक्षणके लिये वेदके आदेश देखिये—

द्वार्भ्यः क्षामम् ॥ ५३ ॥
गेहाय उपपतिम् ॥ ४२ ॥
भद्राय गृहपम् ॥ ६८ ॥ वा. यजु. ३०

'घरके दरवाजोंपर, घरके रक्षणके लिये तथा घरका कल्याण हो इसलिये घरकी रक्षा करनेवालोंको नियुक्त करो।' यहां नगरोंके अन्दर विशेष घरोंके रक्षणार्थ पहरेदारको नियुक्त करो ऐसा कहा है।

साधारणतः नगरोंमें विशेष धनिकोंके घरोंका रक्षण करना आवश्यक होता है। उन धनिकोंके घरोंका रक्षण हुआ तो कल्याण होता है इसलिये धनिकोंके द्वारोंपर उनके घरोंका रक्षण करनेके लिये रक्षक नियुक्त करने चाहिये।

इसी तरह गलियोंके संरक्षक, कीलोंके द्वारोंके संरक्षक, कीलोंकी दिवारोंके संरक्षक स्थान स्थानपर रखने चाहिये। सर्वसाधारण आदेश इस विषयमें ये हैं—

भूत्यै जागरणम् ॥ १२८ ॥
अभूत्यै स्वप्नम् ॥ १२९ ॥ वा. यजु. ३०

'उन्नतिके लिये जागृत रहना योग्य है तथा अवनतिके लिये सुस्ती कारण होती है।' अर्थात् जागृतिसे सब कार्य करना हितकारक रहता है, आलस्य अथवा सुस्तीसे सर्वस्व नाश ही होता है।

यह सर्वसाधारण उत्तम बोध है। प्रथम नगरोंके बाहर प्राकार करनेके लिये कहा, प्राकारोंमें बडे द्वार रखे, उन द्वारोंपर पहारेकरी रखे, बुरुजोंपर चक्र आदि शत्रुका नाश करनेवाले साधन रखे। विशेष धनिकोंके घरोंपर, द्वारोंपर, तथा गलियोंके संरक्षणके लिये रक्षक रखे। इतनी व्यवस्था करनेके पश्चात् वनोंके रक्षक, अरण्यका अग्निसे रक्षण करनेके लिये नदियों, सरोवरों, तालावों तथा पानीके चढावों

और उतारोंपर रक्षक रखे, पर्वतोंके शिखरों, उतराइयों, गुहाओं तथा जंगलोंमें रक्षक राज्यशासनके द्वारा रखे गये तो चोर, डाकू आदि दुष्ट लोग कहां भी गये तो वे अवश्य पकडे जांयगे। राष्ट्रका कोई ऐसा स्थान नहीं खाली रहा कि जहां दुष्ट लोग छिपकर रह सकें।

इस प्रकार वैदिक राज्यशासन होता था। इसमें सर्वत्र जागरूकता रहती थी। सावधानता रहती थी। राष्ट्रके कोने कोनेतक उत्तम संरक्षणका प्रबंध रहता था। अब हम इन रक्षकोंके पास तथा सैनिकोंके पास शस्त्रास्त्र कैसे रहते थे, इनका विचार करते हैं—

शस्त्र-अस्त्रोंकी सिद्धता

वेदमें कितने प्रकारके शस्त्र-अस्त्र हैं इसका यहां अब विचार करना योग्य है, क्योंकि संरक्षण करनेवाले अपने पास किन शस्त्रोंको रखते थे यह यहां जानना आवश्यक है —

ऋष्टिः

भालेको 'ऋष्टि' कहते हैं। इसकी दण्डी बडी लंबी होती है और आगे फौलादका नोकदार फाल रहता है। इसका वर्णन वेद मंत्रमें इस तरह किया है—

ये पृषतीभिर्ऋष्टिभिः साकं वाशीभिरञ्जिभिः।
अजायन्त स्वभानवः ॥ ऋ० १।३७।२

'ये स्वयं तेजस्वी मरुत् अपने हरिणियों, भालों, कुल्हाडों तथा अपने अलंकारोंके साथ प्रकट हुए हैं।' तथा—

चित्रैरञ्जिभिर्वपुषे व्यञ्जते वक्षःसु रुक्मां अधि येतिरे शुभे। अंसेष्वेषां नि मिमृक्षुर्ऋष्टयः साकं जज्ञिरे स्वधया दिवो नरः॥ ४॥
सिंहा इव नानदति प्रचेतसः पिशा इव सुपिशो विश्ववेदसः। क्षपो जिन्वन्तः पृषती-भिर्ऋष्टिभिः समित् सबाधः शवसाहिमन्यवः ॥८॥
ऋ. १।६४

'ये वीर अपने शरीरोंको अलंकारोंसे सुशोभित करते हैं, छातीपर शोभाके लिये हार धारण करते हैं। उनके कंधोंपर भाले चमकते हैं, ये दिव्य वीर अपने बलके साथ निर्माण हुए हैं। ये वीर सुन्दर, सिंहोंके समान गर्जना करनेवाले प्रभावी, शूर, हरिणियोंके साथ जाकर भालोंसे शत्रुओंका नाश करनेवाले, सांपोंके समान क्रोधी, भालोंसे शत्रुके साथ लडते हैं।'

इस तरह इन भालोंका शत्रुपर प्रयोग करनेका वर्णन वेदमंत्रोंमें है। भालोंसे ये वीर लडते हैं और शत्रुका नाश करते हैं। ऋष्टिषेण (ऋष्टि-सेन) एक ऋषिका नाम ऋ. ८।५।१३ में आया है। ऋष्टिषेणका पुत्र आर्ष्टिषेण है।

आर्ष्टिषेणो होत्रमृषिर्निषीदन्। ऋ. ८।५।१३

'ऋष्टिषेणका पुत्र ऋषि यज्ञमें होत्र कर्म करनेके लिये बैठा।' इसमें 'ऋष्टि-सेन' पद है। 'भालोंवाले सैनिकोंका मुख्य अधिकारी' यह इस पदका अर्थ है। भालेवाले सैनिक होते थे और उनका मुख्य अधिकारी एक होता था। इसका तात्पर्य यह है कि भालोंवाली सेना वैदिक समयमें होती थी।

असि = तलवार

भालोंके विषयमें हमने वर्णन देख लिये। अब तलवारका वर्णन देखते हैं। 'असि' पद तलवारका वाचक वेदमें है। देखिये—

'मा त्वातपत् प्रियः आत्मापियन्तं मा स्वधितिस्तन्व आ तिष्ठपत् ते। मा ते गृध्नुरविशस्तातिहाय छिद्रा गात्राण्यसिना मिथू कः॥
ऋ. १।१६२।२०

'ऊपर जानेके समय तेरा प्रिय आत्मा तुझे कष्ट न देवे। शस्त्र तेरे शरीर पर घाव न करे। लोभी मनुष्य तलवारसे काट काट कर तेरे अवयव पृथक् पृथक् न करे।' यहां 'स्वधिति और असि' ये दो शस्त्र कहे हैं। 'स्वधिति' छुरीका नाम है और 'असि' तलवारका नाम है। तथा-

उदार स्फोटक अस्त्र

ये बाहवो या इषवो धन्वनां वीर्याणि च।
असीन् परशूनायुधं चित्ताकूतं च यद् हृदि।
सर्वं तदर्बुदे त्वममित्रेभ्यो दृशे कुरु उदारांश्च प्रदर्शय॥
सप्त जातान्यर्बुद उदाराणां समीक्षयन्।
अथर्व. ११।९।१;६

'जो बाहु बल है, जो बाण हैं, जो धनुर्धारियोंके पराक्रम हैं, जो तलवारें, फरशियां और अनेक शस्त्र हैं तथा जो अन्तःकरणमें योजनाएं हैं, यह सब शत्रुको दिखाओ तथा जो 'उदार' हैं उनको भी शत्रुको दिखाओ। सात जातियां उदारोंकी हैं, उनको शत्रुके सामने दिखाओ।'

यहां धनुष्य, बाण, तलवार, फरशियां कुल्हाडे और

अनेक प्रकारके आयुध गिनाये हैं। इनके साथ 'उदार' भी गिनाये हैं और ये 'उदार' सात प्रकारके हैं ऐसा कहा है। 'उदार' वे हैं जो 'उत्-आर' ऊपर भडक कर उठते, या फटते हैं। दिवाली आदि प्रसंगमें बारूदका काम जलाते हैं यह सबने देखा है। उनमें ये उदार होते हैं। (उत्+आर) ऊपर जो उठते हैं, बारूदके झाड जैसे ऊपर उठते हैं। एक छोटीसी गडवीमें बारूद भरकर रखते हैं। उसको आग लगानेसे वह जलती है और ऊपर झाड जैसा, ५।१० सेंकदतक वह झाड जैसा बारूदका दीखता है। उसका नाम उदार है। ऊपर भडक उठनेवाला बारूदका गोला 'उदार' कहलाता है। यह शत्रुपर फेंकनेसे शत्रु जल मरता है।

'उदार' एक प्रकारके बम गोले होते हैं। ये दीखनेमें छोटे होते हैं पर इनमें जलानेकी शक्ति बडी भारी होती है।

अपने शस्त्र अस्त्र, धनुष्य बाण, फरशी, कुल्हाडे, आयुध तथा अपने उदार शत्रुको दीखें ऐसा करो। यह भी विश्वमें शान्ति स्थापन करनेका एक उपाय है। सब शत्रु समझ जायंगे कि हम युद्ध करनेके लिये खडे हो जायंगे, तो ऐसे उदारोंका सामना हमें करना पडेगा। इनके पास ऐसे भयानक शस्त्र हैं इस कारण हमें उचित है कि हम शान्त रहें और युद्ध न करें। विश्वमें शान्ति स्थापन करनेका यह भी एक उपाय है कि अपने पासके बडे बडे मारक शस्त्र अस्त्रोंका जगत्में प्रदर्शन करना, जिससे शत्रु डरते रहें और युद्धसे विमुख होते रहें।

वाध्रि – तलवार (काठक सं. १५।४), असि, कृति (काटनेवाला शस्त्र), स्वधिति (छुरा, छुरी), आयुध (अनेक प्रकारके काटनेवाले शस्त्र), ऋष्टि (भाला ऋ. ७।१८।१७) ये सब काटनेवाले शस्त्र वैदिक समयमें संरक्षकोंके पास रहते थे।

'असि धारा' (तलवारकी धारा) का प्रभाव जैमिनीय उ० ब्राह्मणमें ३।१३९ में वर्णन किया है। 'वाल' (मै. सं. २।६।५ में) कहा है यह भी काटनेका शस्त्र है।

ऋष्टि, रंभिनी, शक्ति, शरु ये आकारमें छोटे पर परिणाममें भयंकर शस्त्र हैं। 'शक्ति' गदाके आकारका परंतु आकारमें बारीक छोटासा परंतु दूरसे फेंकनेका अस्त्र रहता है। शत्रु पर जहां गिरता है वहां बडा गहरा सुराख करता है और शत्रुका वध करता है। यह एक वितस्तिसे लेकर एक दो हाथ ऊंचा होता है। एक बाजू लोहेका गोला और दोनों बाजूमें बडी बारीक नोक रहती है। किसी नोकके साथ शत्रुका संयोग हुआ तो वहां सुराख अवश्य करता है। यह प्रभावी अस्त्र होनेके कारण इसका नाम 'शक्ति' रखा गया है। यह अस्त्र है।

शस्त्र उसको कहते हैं कि जो शत्रुपर मारनेके समय वीरके हाथमें रहता है। जैसा तलवार, छुरा, भाला आदि। जो दूरसे शत्रुपर फेंके जाते हैं उनका नाम अस्त्र है। शस्त्र और अस्त्रमें यह भेद है। शत्रुपर दूरसे फेंका जाता है वह अस्त्र है और हाथमें रखकर शत्रुपर आघात जिससे किया जाता है वह शस्त्र है। रामायणादि ग्रंथोंमें शस्त्र थोडे हैं, पर अस्त्र बहुत हैं। करीब करीब डेड सौ अस्त्र गिनाये हैं। यह बडी खोजका विषय है। अस्त्रके नाम और किस अस्त्रसे किस युद्धमें क्या परिणाम हुआ यह देखना चाहिये। स्विझरलंदमें एक जर्मन विद्वान् गत ३२ वर्षोंसे इसीका मनन कर रहा है। वेद, पुराण, इतिहास ग्रंथोंमें जो अस्त्रोंके वर्णन हैं उनका संग्रह करके वह विचार कर रहा है। ऐसा संशोधन करना चाहिये।

अस्त्र आग लगानेवाले भी होते हैं और न जलानेवाले भी होते हैं। नरनारायण ऋषियोंका आश्रम हिमालयमें बदरिनारायणमें था। उसको लूटनेकी इच्छासे एक राजाने अपनी सेनासे हमला करनेके लिये आक्रमण किया। सेनासमेत राजा बुरी इच्छासे आ रहा है ऐसा जब नरनारायण ऋषिको पता लगा, तब उन्होंने उस राजाकी सेनापर 'इषिकास्त्र' फेंका। जिससे यह हुआ कि वह सेना आश्रमके पास आने लगी तो छींके आकर बेजार हो जाती थी और आश्रमसे दूर जाने लगी तो कुछ भी नहीं होता था। इस प्रकार यह छींके लानेवाला अश्रुवायु ही था। ऐसे अस्त्र ऋषियोंके पास तथा क्षत्रियोंके पास प्राचीन समयमें रहते थे। यह वर्णन महाभारतमें है। विशेष देखना हो तो वहां देखें।

वेदमें बहुत अस्त्र दिखाई नहीं देते। ऊपर 'उदार' आया है वैसी ही 'शक्ति' है। ऐसे थोडेसे ही अस्त्रोंके नाम वेदमें हैं। पुराणोंमें अस्त्र बहुत हैं। अस्तु। वेदने कहा है कि अपने शस्त्र-अस्त्र जो विशेष प्रभावी हों वे शत्रुके सामने प्रदर्शन करनेके लिये रखना, जिससे शत्रु प्रभावित होगा और विश्वमें शान्ति रहेगी। लोग युद्ध शुरू करनेका साहस नहीं करेंगे। यह युक्ति आज भी अनेक राष्ट्र उपयोगमें लाते हैं। अमेरिका और रशिया अपने अणुबंम वारंवार फेंकते हैं, जगत्को बताते हैं कि देखो, संभालो हमारे पास ऐसे भयानक अस्त्र हैं। तुम युद्ध करोगे, तो हम इन भयानक अस्त्रोंका उपयोग करेंगे और उसमें तुम्हारा नाश

होगा। इसका परिणाम विश्वशान्ति स्थापन करनेमें हो रहा है। "उदारांश्च प्रदर्शय, अमित्रेभ्यो दृशे कुरु।" (अथर्व. ११।९) 'अपने शस्त्र और अस्त्र शत्रुको दीखें ऐसा करो' ऐसी जो आज्ञा वेदने दी है वह भी विश्वमें शान्तिकी स्थापनाके लिये ही है।

'वज्र' एक बडा भारी मारक शस्त्र था। विशेषकर इन्द्र इसका उपयोग करता था। 'बुन्द' (बाण), शर (बाण) परुष, (बाण) शरव्य, (बाण) शरु, शर्या, शारी ये सब छोटे मोटे बाणोंके नाम हैं। बाणोंकी अनेक जातियां थीं। कई बाण विषयुक्त भी रहते थे। मनुष्यके शरीरपर लगा तो उसके विषसे मनुष्य मर जाता था। 'शृंग' भी एक शस्त्र था। यह फौलादका होता था। शत्रुके शरीरपर यह प्रयुक्त किया जाता था। बैलके सींगका भी ऐसा उपयोग करते थे। नोकके स्थानपर फौलादकी' नोक रखनेसे बडी मारकता उसमें आती थी। 'सायक बाण ही था।

'अशनिः, तेजः, दिद्यु, दिद्युत्' ये बिजली जैसे तेजस्वी अस्त्र थे। ये जलाते भी थे और आघात भी करते थे। इसलिये इनका प्रभाव अधिक समझा जाता था।

बाणोंको 'पर्ण' अर्थात् पर लगाये होते थे। इससे बाणकी गति ठीक रहती थी। बाणके पीछे ये पर (पंख) लगे होते थे।

'इषुकृत्, इषुकार, धनुष्कृत्, धनुष्कार' ये धनुष्यबाण करनेवाले लोग थे, कारखाने थे। एक एक वीरके रथके साथ साथ दो तीन गाडियां बाणोंसे भरी रहतीं थी। युद्धमें सहस्रों बाणोंका उपयोग होता था। अतः बाणोंके और धनुष्योंके बडे कारखाने ही होते होंगे, अन्यथा इतने बाण ऐन समयपर मिलना कैसे संभव हो सकता है। युद्धमें शत्रुपर फेंके बाण बिना ठीक दुरुस्त किये काममें नहीं लाये जा सकते थे। इसलिये प्रयोगमें लाये बाण फिर कारीगरोंके कारखानोंमें जाकर ठीक होनेपर ही पुनः उपयोगमें लाये जा सकते थे।

'तिस्र-धन्वा' (तै. सं. १।८।१९।१) यह एक पद तै. सं. में आया है। तीन बाण चलाने योग्य विशेष धनुष्य धारण करनेवाला ऐसा इसका अर्थ दीखता है। पर इसका दूसरा भी कुछ अर्थ होगा। इसके अर्थके विषयमें संदेह है।

'अपस्कंभ' नामक बडे बाण रहते थे। ये विषयुक्त बडे बाण रहते थे। शत्रुके महान् रथको तोडना, फोडना आदि कार्य करनेके समय इनका उपयोग होता था।

धनुष्यकी डोरी बैलके चमडेकी होती थी। गायके चर्मकी भी संभवतः होती थी। 'गोधा' प्राणी था उसके चर्मकी भी धनुष्यकी डोरी बनाई जाती थी। 'ज्या और ज्याका' ये नाम इस डोरीके थे। 'ज्या' बडी मोटी मजबूत डोरी थी और 'ज्याका' उससे छोटी थी, जरासी बारीक डोरी होती थी।

'ज्या-घोष' शब्द प्रसिद्ध है। अर्थात् धनुष्यकी डोरीका आवाज बडा होता था। लोगोंको भय लगे ऐसा यह आवाज था। इतना आवाज देनेवाली यह डोरी थी।

'पिंगा' भी एक जातीकी धनुष्यकी डोरी ही थी। 'वर्म, कवच' ये रक्षकोंके शरीरपर आजकलके कोट जैसे रहते थे। ये गेंडेके चमडेके होते थे अथवा लोहेके किये जाते थे। लोहेके पत्रेके टुकडे जोडकर, लोहेके तारके अथवा दोनों मिलाकर अथवा गेंडेका चमडा मिलाकर ये कवच सीये जाते थे। 'वर्म सीव्यध्वं' कवचोंको सीओ ऐसी आज्ञा वेदमंत्रमें है। शरीरके संरक्षणके लिये इन रक्षकोंके पास कवच रहते थे और ये लोग पहननेके पूर्व उनको सीकर ठीक करते थे और युद्धके समय अवश्य पहनते थे।

सिरके संरक्षणके लिये 'शिप्र' नामक शिरोवेष्टण रहता था। यह लोहेका भी होता था, अथवा साफेके समान भी रहता था। लोहेका रहा तो उसपर सोनेकी नकशी भी रहती थी। साफा रहा तो वह जरतारीका रहता था अथवा अन्य प्रकारसे उस पर सौंदर्य बढानेकी बेलबूटियां होती थी।

हाथपरकी धनुष्यकी डोरीके आघातोंसे चमडी न उतर जाय इसलिये गोधा चर्मका वेष्टन दाये हाथपर बांधा जाता था। यह हाथपर बांधा रहनेसे हाथका बचाव होता था।

इससे इस दावे हाथपर धनुष्यकी डोरीके आघात हुए तो भी हाथको हानि नहीं पहुंचती। अस्तु। इस तरह हाथका बचाव डोरीके आघातोंसे हो जाता था। यह 'हस्तघ्न' न रहा, तो धनुष्यकी डोरीके आघातोंसे हाथ उसी समय निकम्मा बन सकता है। हस्तघ्नके विषयमें ऐसा कहा है—

> अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः। हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः॥ ऋ. ६।७५।१४

'हाथपर साप वेष्टन डालता है वैसे वेष्टन यह हस्तघ्न

डालता है और धनुष्यकी डोरीके आघातोंसे हाथका संरक्षण करता है। वैसा सब कर्मोंको जाननेवाला मनुष्य दूसरे मनुष्यका सब प्रकारसे बचाव करे।' गोधाके चर्मसे हाथपर वेष्टन डालनेसे हाथका बचाव होता है, नहीं तो धनुष्यकी डोरी बाण छूटनेसे डावे हाथको घसीट कर जायगी और हाथकी चमडी उससे उसी समय उतर जायगी। धनुष्यधारी वीरके डावे हाथका संरक्षण करनेके लिये इस तरह यह हस्तघ्न सहायक होता है। यहां 'हस्त-घ्न' पदमें 'घ्न' यह पद रक्षण करनेके अर्थमें है। वर्मके विषयमें मंत्रमें कहा है—

त्वमग्ने प्रयतदक्षिणं नरं
वर्मेव स्यूतं परि पासि विश्वतः ॥ ऋ. १।३१।१५

'हे अग्ने! तू दक्षिणा देनेवाले मनुष्यको चारों ओरसे सुरक्षित रखता है वैसा अच्छा सीया कवच मनुष्यका संरक्षण करता है।' इसमें कवचका रक्षण करनेका सामर्थ्य वर्णन किया है। इसी वर्मके विषयमें और देखो—

मर्माणि ते वर्मणा छादयामि । ऋ. ६।७५।१८

'तेरे सब मर्मोंको कवचसे मैं आच्छादित करता हूं।' यहां कवचसे सब मर्म आच्छादित होनेसे मनुष्यकी सुरक्षा कवचसे होती है यह सिद्ध होता है। तथा—

यो नः स्वो अरणो यश्च निष्ट्यो जिघांसति ।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम् ॥
ऋ. ६।७५।१९

'जो (अ-रणः स्वः) जो असंतुष्ट हुआ स्वकीय अथवा जो नीच परकीय हमारा नाश करनेकी इच्छा करता है, सब देव उसका नाश करें, ज्ञान (ब्रह्म) ही मेरा आन्तरिक कवच है।' यहां ज्ञानको आन्तरिक कवच कहा है। जो अपना रक्षण अपने अन्दरसे करता है वह आन्तरिक कवच बडा महत्त्वका है। यहां ज्ञानको भी संरक्षक कवच कहा है और कवच वीरके मर्मोंका संरक्षण करता है, और इस तरह जहां कवच रहता है वहांका संपूर्ण रक्षण होता है ऐसा कहा है।

'शिप्र' पद शिरो रक्षकके लिये आता है। 'शिरस्त्राण' इसका अर्थ है। ये शिरस्त्राण कई प्रकारके होते थे। इनके नामोंसे ही इनका वर्णन हो सकता है—

अयः शिप्राः = लोहेके शिरस्त्राण।

पीवो-अश्वा शुचद्रथा हि भूता
ऽयःशिप्रा वाजिनः सुनिष्काः ॥ ऋ. ५।५७।४

'पुष्ट अश्व जिनके हैं, तेजस्वी रथ जिनके हैं, लोहेके शिरस्त्राण जो धारण करते हैं वे (वाजिनः) बलवान और (सु-निष्काः) उत्तम धनवान् होते हैं।' यहां लोहेके शिरस्त्राण धारण करनेवाले ऋभुओंका वर्णन है। इनके सिर पर लोहेका शिरोरक्षण रहता था।

हिरण्यशिप्रः— सुवर्ण शिरस्त्राण।

हिरण्यशिप्रा मरुतो दविध्वतः
पृक्षं यात पृषतीभिः समन्यवः ॥ ऋ. २।३४।३

'(हिरण्य-शिप्राः) सुवर्णका शिरस्त्राण धारण करनेवाले मरुत् वीर शत्रुओंको हिलाते हुए धब्बोंवाली हिरणोंके रथोंमेंसे यज्ञस्थानमें जाते हैं।' यहां 'हिरण्य-शिप्राः' पद सोनेके शिरस्त्राणका भाव बता रहा है। जरतारीका शिरस्त्राण ऐसा भी भाव इसका हो सकता है—

द्युम्नी सुशिप्रो हरिमन्युसायक ॥ ३ ॥
तुददहिं हरिशिप्रो य आयसः ॥ ४ ॥ ऋ. १०।९६

इन मंत्रोंमें 'सु-शिप्रः, हरिशिप्रः' ये पद हैं। 'उत्तम शिरस्त्राण तथा दुःखका हरण करनेवाला शिरस्त्राण' ये इसके अर्थ हैं। इस तरह (शिप्र) शिरस्त्राण कई प्रकारके थे, यह इससे सिद्ध होता है। शरीरपर कवच थे, वे भी अनेक प्रकारके थे। सिरपर शिरस्त्राण भी अनेक प्रकारके थे। इनमें शिरका संरक्षण तथा सौंदर्य देखना होता था। सिरका संरक्षण मुख्य है, पश्चात् सौंदर्य देखना होता है।

ध्वज

नगर, कीलोंके नगर, सैन्य, शस्त्रास्त्र ये हमने देखे। अब हम राष्ट्रके ध्वजका विचार करते हैं। शत्रुके साथ युद्ध करनेके समय अपना ध्वज ऊंचा रहना चाहिये। क्योंकि इस ध्वजको देखकर सैनिक उत्साहसे युद्ध करते हैं। ध्वज न रहा तो सैनिक निरुत्साहित होकर पलायन करने लगते हैं। यह तो युद्धकी बात है पर अन्य समयोंमें भी कीलेकी दिवारपर ध्वज फहरना चाहिये, जहां शासक रहता हो वहां ध्वज फहरना आवश्यक है। इस तरह ध्वजका महत्त्व वेदमें भी सर्वत्र माना है; इसलिये संक्षेपसे ध्वजके विषयमें अब थोडासा वर्णन देखना यहां आवश्यक है।

स्पर्धन्ते वा उ देवहूये अत्र येषु ध्वजेषु दिद्यवः
पतन्ति । युवं ताँ मित्रा वरुणावमित्रान् हतं
पराचः शर्वा विषूचः । ऋ. ७।८५।२

'इस संग्राममें शत्रुके साथ हमारे वीर स्पर्धा करते हैं,

इन युद्धोंमें ध्वजोंपर शत्रुके अस्त्र गिरते हैं, हे मित्र और वरुणो! तुम दोनों शत्रुओंको मारो और हिंसक शस्त्रसे शत्रुको चारों ओर भगा दो।'

यहां 'ध्वजेषु दिद्यवः पतन्ति' अर्थात् ध्वजोंपर तेजस्वी अस्त्र शत्रु फेंकते हैं, ऐसा कहा है। शत्रुका ध्वज तोडना यह भी एक युद्धकी नीति है और अपने ध्वजका संरक्षण करना यह अपने रक्षकोंका कर्तव्य है। इस दृष्टिसे ध्वजका महत्त्व है। तथा और देखिये—

अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेषु अस्माकं या
इषवः ता जयन्तु। अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्तु
अस्माँ उ देवा अवता हवेषु॥ ऋ. १०।१०३।१२

'हमारे ध्वज फहरते रहनेके समय इन्द्र हमारा संरक्षण करे, जो हमारे शस्त्र हैं वे विजयी हों, हमारे वीर श्रेष्ठ रहें, सब देव युद्धोंमें हमारा संरक्षण करें।' यहां ध्वजका महत्त्व बताया है—

उत्तिष्ठत सं नह्यध्वं उदाराः केतुभिः सह।
सर्पा इतर जना रक्षांस्यनु धावत॥ अथर्व. ११।१०।१

'हे उदार सैनिको, उठो, सिद्ध हो जाओ, अपने ध्वजोंके साथ शत्रुपर आक्रमण करो। हे सर्प और इतर जनहो चलो।' यहां शत्रुपर आक्रमण करनेके समय अपने ध्वज लेकर चलो ऐसा कहा है। अपने ध्वजको संभालते हुए शत्रुपर आक्रमण करो यह भाव यहां है।

सूर्य चिन्हका ध्वज

वेदमें सूर्य चिन्हका ध्वज है ऐसा दीखता है। देखिये—

एता देव सेनाः सूर्यकेतवः सचेतसः।
अमित्रान् नो जयन्तु स्वाहा॥ अथर्व. ५।२१।१२

'ये हमारी दिव्य सेनाएं एक विचारसे अपने सूर्य चिन्हवाले ध्वज लेकर शत्रुओंपर विजय प्राप्त करें। यहां अपनी सेनाको 'सूर्य केतवः' कहा है, अर्थात् इनका ध्वज सूर्य चिन्हवाला था, इसमें संदेह नहीं है।

इस तरह ध्वजका महत्त्व वेदमें वर्णन किया है। अपने संरक्षणके कार्यके लिये जैसा शस्त्रास्त्रोंका उपयोग है, जैसा सैनिकोंका उपयोग है वैसा ही उत्साह संवर्धनके लिये ध्वजका भी उपयोग है। संरक्षणका विचार करनेके समय इन सब बातोंका विचार करना आवश्यक है। मान लीजिये कि अपने नगर कीलोंमें बसे हैं, पर उनके पास सेना और शस्त्रास्त्र नहीं हैं, अथवा जैसे चाहिये वैसे नहीं हैं, तो अपना पराभव निःसंदेह होगा। इसलिये अपने संरक्षणका जिस समय विचार करना है, उस समय इन सब बातोंका अच्छी तरह विचार करना अत्यंत आवश्यक है। थोडीसी न्यूनता रही, तो पराजय होगा, अतः अच्छी तरह सावधानता रखनी चाहिये। वेदमें कहे राष्ट्रीय संरक्षणके कार्यमें सावधानताका आदेश महत्त्वका है।

पुरोहितके आधीन संरक्षण

राष्ट्रका वा नगरोंका संरक्षणका कार्यालय पुरोहितके आधीन वेदोक्त पद्धतिसे था। स्थानस्थानका संरक्षणका कार्य अन्य रक्षक ही करते थे, पर संरक्षणाध्यक्ष पुरोहित रहता था। इस विषयमें कुछ वेदमंत्र देखिये—

ऋषिः वसिष्ठः। देवता विश्वेदेवाः।

संशितं म इदं ब्रह्म संशितं वीर्यं१ बलम्।
संशितं क्षत्रमजरमस्तु जिष्णुर्येषामस्मि पुरोहितः॥ १॥ अथर्व. ३।१९

१ मे इदं ब्रह्म संशितं— मेरा यह ज्ञान तेजस्वी है अर्थात् मैंने जो ज्ञान इस राष्ट्रमें फैलाया है, वह अत्यंत तेजस्वी है। इस तेजस्वी ज्ञानसे सब प्रजा तेजस्वी हुई है। प्रजासे निरुत्साह, उदासीनता, निर्बलता दूर हुई है और उत्साह, आशावाद तथा ध्येयवाद और सबलता इस राष्ट्रकी प्रजामें उत्पन्न हुई है।

२ मे इदं वीर्यं बलं संशितं— मेरे इस राष्ट्रका वीर्य और बल तीक्ष्ण हुआ है। राष्ट्रमें पराक्रम करनेकी शक्ति बढ गई है। नये नये कार्य प्रारंभ करनेका उत्साह इस प्रजामें आ गया है। यह मेरे ज्ञानके प्रचारसे हो गया है।

३ संशितं क्षत्रं अजरं अस्तु—इस राष्ट्रका तेजस्वी क्षात्र तेज क्षीण होनेवाला नहीं है। मैंने जो ज्ञान बढाया है उस ज्ञानसे इस राष्ट्रका क्षात्र बल तथा उत्साह बढता ही जायगा।

४ येषां जिष्णुः पुरोहितः अस्मि— जिनका मैं जयशाली पुरोहित हूं, उनका विजय निश्चित है, क्योंकि मैंने इस राष्ट्रकी सब प्रचारसे तैयारी ही ऐसी उत्तम की है।

वसिष्ठ पुरोहित जिस राज्यका था, उस राज्यको उन्होंने अपनी सुयोग्य शिक्षाद्वारा विजयी बनाया था। तथा और देखिये—

सं अहं एषां राष्ट्रं स्यामि सं ओजो वीर्यं१ बलम्।
वृश्चामि शत्रूणां बाहून् अनेन हविषाहम्॥ २॥

५ अहं एषां राष्ट्रं संस्यामि— मैं पुरोहित होकर इनका राष्ट्र सब प्रकारसे तेजस्वी बनाता हूं। इस राष्ट्रमें

तेजस्वी ज्ञान फैलाकर उन प्रजाजनोंका उत्साह बढाता हूं और संपूर्ण राष्ट्रको मैं उत्तम तेजस्वी बनाता हूं।

६ अहं एषां ओजः वीर्यं बलं संस्यामि— मैं इन प्रजाजनोंका शारीरिक सामर्थ्य, पराक्रम करनेका वीर्य और मनका बल बढाता हूं। जिससे इस राष्ट्रभरमें सर्वत्र नव-चैतन्य उत्पन्न हुआ ऐसा दीखेगा।

७ अहं शत्रूणां बाहून् वृश्चामि—मैं शत्रुओंके बाहुओंको ही काटता हूं। शत्रुओंके बाहु कुछ भी प्रभावशाली न हों, ऐसा अपने राष्ट्रका सामर्थ्य मैं बढाता हूं। अपने राष्ट्रकी शक्ति शत्रुके राष्ट्रकी शक्तिसे अधिक प्रभावी बना देता हूं।

८ अहं अनेन हविषा (एतत् सर्वं करोमि)— मैं इस हविके यज्ञसे यह सब करता हूं। हविके समर्पणसे यज्ञ होता है। इस हविसे यह यज्ञ करके मैं यह प्रभाव यहां उत्पन्न करता हूं।

राष्ट्रका शिक्षा मंत्री पुरोहित होता था। उसके कार्यके लिये धनराशि नियुक्त होती थी। उस धनराशीका ज्ञान प्रचारके कार्यमें समर्पण करना उस शिक्षामंत्रीका कार्य था। उस धनराशीरूप हविके समर्पणसे वह ज्ञान प्रसार करता था और उस ज्ञानसे वह प्रजाजनोंका उत्साह बढाता था और उस राष्ट्रका क्षात्रतेज वह प्रभावी बनाता था।

नीचैः पद्यन्तां अधरे भवन्तु ये नः सूरिं मघवानं पृतन्यान्। क्षिणामि ब्रह्मणा अमित्रान् उन्नयामि स्वान् अहम् ॥ ३॥

९ (अमित्राः) नीचैः पद्यन्ताम्– शत्रु नीचे गिर जांय;

१० (अमित्राः) अधरे भवन्तु – शत्रु अवनत हों, पराजित हों, बलमें शत्रु क्षीण हों।

११ ये (अमित्राः) नः सूरिं मघवानं पृतन्यान्– जो शत्रु हमारे राष्ट्रके ज्ञानी और धनीपर सैन्य भेजकर उनको कष्ट देते रहेंगे, वे सब क्षीण बल होकर नीचे गिरें।

१२ अहं ब्रह्मणा अमित्रान् क्षिणामि– मैं ज्ञानका प्रचार अपने राष्ट्रमें करके उस ज्ञानसे अपने राष्ट्रके लोगोंका उत्साह बढाकर, अपने राष्ट्रके शत्रुओंका क्षय करता हूं।

१३ अहं ब्रह्मणा स्वान् उन्नयामि– मैं ज्ञानके प्रचारसे अपने राष्ट्रके प्रजाजनोंकी उन्नति करता हूं।

ज्ञानके प्रचारसे ही यह सब हो सकता है। राष्ट्रमें ज्ञान प्रसार करना पुरोहितोंका कार्य है। पर वह ज्ञान ऐसा हो कि जिससे ब्राह्मणोंके युवक ज्ञानी बने, क्षत्रियोंके तरुण शूर वीर और बलवान् बने, वैश्योंके युवक व्यापार व्यवहारमें कुशल बनें, शूद्रोंके युवक उत्तम कारीगर हों और वन्य जातियोंके तरुण वन रक्षणादि कार्य उत्तम रीतिसे करनेमें समर्थ हों।

तीक्ष्णीयांसः परशोः अग्नेः तीक्ष्णतरा उत। इन्द्रस्य वज्रात् तीक्ष्णीयांसो येषां अस्मि पुरोहितः ॥ ४ ॥

१४ येषां अहं पुरोहितः अस्मि– जिनका मैं पुरोहित हूं, जिनका मैं शिक्षणमंत्री हूं उनकी मैं उन्नति इस तरह करता हूं।

१५ (तेषां शस्त्रसंग्रामाः) परशोः तीक्ष्णीयांसः– उनके शस्त्रअस्त्र फरशीसे भी तीक्ष्ण बनाता हूं।

१६ उत (तेषां शस्त्रसंभाराः) अग्नेः तीक्ष्णतराः– और उनके शस्त्रसंभार अग्निसे भी अधिक तीक्ष्ण बनाता हूं तथा—

१७ (तेषां शस्त्रसंभाराः) इन्द्रस्य वज्रात् तीक्ष्णीयांसः– इन्द्रके वज्रसे भी अधिक तीक्ष्ण उनके शस्त्रसंभार मैं बनाता हूं, जिनका मैं पुरोहित होता हूं।

राजपुरोहितकी महत्वाकांक्षा यहां पाठक देखें। राष्ट्रके शिक्षामंत्री राष्ट्रमें कैसा नवचैतन्य लाता है यह देखने योग्य है। तथा—

एषां अहं आयुधा संस्यामि एषां राष्ट्रं सुवीरं वर्धयामि। एषां क्षत्रं अजरं अस्तु जिष्णु एषां चित्तं विश्वे अवन्तु देवाः ॥ ५ ॥

१८ अहं एषां आयुधा संस्यामि– मैं पुरोहित इस राष्ट्रके आयुधोंको तीक्ष्ण बनाता हूं। शत्रुराष्ट्रके आयुधोंसे हमारे राष्ट्रके आयुध अधिक तीक्ष्ण तथा अधिक प्रभावी रहें।

१९ एषां राष्ट्रं सुवीरं (कृत्वा) अहं वर्धयामि– इनका राष्ट्र उत्तम वीरोंसे युक्त करके मैं बढाता हूं। मेरी सुशिक्षासे इस राष्ट्रमें, जिनका कि मैं पुरोहित हूं, शूर वीर उत्साही बढेंगे और उनके प्रयत्नसे इस राष्ट्रका उत्कर्ष होगा।

२० एषां क्षत्रं अजरं जिष्णु अस्तु– इनका क्षात्रतेज अक्षय हो, इनके क्षात्रतेजमें कभी न्यूनता न हो और वह जय प्राप्त करनेवाला हो। इनकी वीरता बढती ही जायगी। ये यश कमाते ही रहेंगे।

२१ विश्वेदेवाः एषां चित्तं अवन्तु– सब देव इनके चित्तकी सुरक्षा करें। सब देव इनके सहायक हों।

उद्धर्षन्तां मघवन् वाजिनानि उद् वीराणां जयतां एतु घोषः। पृथक् घोषा उलुलयः केतुमन्त उदीरताम्। देवा इन्द्रज्येष्ठा मरुतो यन्तु सेनया ॥ ६॥

२२ हे (मघवन्)! वाजिनानि उद्धर्षन्ताम् - हे इन्द्र! सेनाएं हर्षित हों। सैनिकोंमें कमी सुस्ती या उत्साह हीनता न आ जाय।

२३ जयतां वीराणां घोषः उदेतु- विजय प्राप्त करते हुए वीरोंका शब्दघोष ऊपर उठे, अर्थात् हमारे वीर विजय प्राप्त करके आ जांय और उनका जयजयकारका घोष चारों ओर आकाशमें भर जाय।

२४ केतुमन्तः उलुलयः घोषाः पृथक् उदीरताम्- ध्वज लेकर हमला करनेवाले हमारे विजयी वीरोंके शब्दोंका घोष पृथक् पृथक् आकाशमें ऊपर उठता रहे। जिससे हमारे वीरोंके उत्साहमय आक्रमणका सबको पता लगे।

२५ इन्द्रज्येष्ठा मरुतः देवाः सेनया यन्तु- इन्द्र जिनका प्रमुख सेनापति है वे मरुत वीर हमारी सेनाके साथ चलें। 'मरुत्' वीर वे हैं, कि जो (मर्+उत्) मरने तक उठकर लडते हैं। 'इन्द्र' वह है कि जो (इन्+द्र) शत्रुओंका विदारण करता है। 'देव' वे हैं कि जो विजयका उत्साह धारण करते हैं। हमारी सेनामें ऐसे वीर हों।

प्रेता जयता नर उग्रा वः सन्तु बाहवः।
तीक्ष्णेषवोऽबलधन्वनो हतोग्रायुधा
अबलानुग्रबाहवः ॥ ७॥

२६ हे नर! प्र इत, जयत- हे नेता वीरो आगे बढो और विजय प्राप्त करो। जो आगे उत्साहसे बढेगा वही विजय प्राप्त करेगा।

२७ वः बाहवः उग्राः सन्तु- आपके बाहु शौर्य, वीर्य, धैर्यसे युक्त हों, इससे तुम सब विजयी हो जाओगे।

२८ तीक्ष्णेषवः अबलधन्वनः इत- तुम्हारे बाण तीक्ष्ण हों, तुम्हारे शस्त्रोंसे शत्रुके धनुष्यादि युद्ध साधन अत्यंत निर्बल हों। तुम्हारे शस्त्र शत्रुके शस्त्रोंसे अधिक तीक्ष्ण हैं। अतः तुम शत्रुका वध करो। शत्रुका नाश करो।

२९ उग्र-बाहवः उग्रायुधाः! अबलान् हत- हे उग्र बाहुवालों और प्रखर आयुधोंवाले वीरो! तुम अपने शत्रुको मारो, काटो क्योंकि इनके शस्त्रास्त्र कमजोर हैं। तुम्हारे शस्त्र शत्रुके शस्त्रास्त्रोंसे अधिक प्रभावी हैं।

अवसृष्टा परापत शरव्ये ब्रह्मसंशिते।
जयामित्रान् प्र पद्यस्व जह्येषां वरं वरं मामीषां
मोचि कश्चन ॥ ८॥

३० हे ब्रह्मसंशिते शरव्ये! अवसृष्टा परापत— हे ज्ञानसे साधक तेजस्वी बने शस्त्र! तू हमारे वीरों द्वारा छोडा जानेपर शत्रुपर जा गिर और शत्रुका नाश कर।

३१ अमित्रान् जय— शत्रुओंको जीत लो।

३२ प्र पद्यस्व— विशेष वेगसे शत्रुसेनामें घुस जा।

३३ एषां वरं वरं जहि— इन शत्रुओंके जो श्रेष्ठ श्रेष्ठ वीर हों उनको मार डाल। शत्रुके मुख्य प्रमुख वीर मर गये तो शत्रुका पराभव शीघ्र हो जाता है।

३४ अमीषां कश्चन मा मोचि— इनमेंसे किसीको न छोड अर्थात् सब शत्रुओंको मार डाल और अपनी उत्तम विजय हो ऐसा कर।

इस संपूर्ण सूक्तके मननसे पता लग सकता है, कि पुरोहितके आधीन राष्ट्रकी रक्षण व्यवस्था थी। वे कीले, दुर्ग, वन आदिके रक्षण कार्यकी देखभाल करते थे और राष्ट्रके रक्षकोंको शिस्तमें रखना, उनके शस्त्रास्त्र शत्रुके शस्त्रास्त्रोंसे अधिक कार्यक्षम रखना, तथा अपने वीरोंका उत्साह अधिक रहेगा ऐसा ज्ञान अपने राष्ट्रमें फैलाना आदि वे ही पुरोहित करते थे। वे ब्राह्मण रहनेके कारण वे ज्ञानसंपन्न रहते थे और ऋषि कालमें ब्राह्मणके घर विद्यापीठ ही होते थे और उनके विद्यापीठमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंके लडके पढते थे। क्षत्रियोंको क्षात्रियोचित शिक्षा यहां मिलती थी। श्री दाशरथी राम, लक्ष्मण तथा श्रीकृष्ण, बलराम आदिकी शिक्षा इन गुरुकुलोंमें ही हुई थी। इस तरह योग्य रीतिसे राष्ट्रके रक्षक इन विद्यापीठोंमें तैयार होते थे।

नगरोंकी रचना, नगरोंके कीले, कीलेमें पांच या सात दिवारें, दिवारोंमें अन्दर प्रवेश करनेके द्वार, द्वारोंपर रक्षक, घरोंके रक्षक, गलियोंके रक्षक, वनोंके और अरण्योंके रक्षक, नदियोंके उतारोंपर रक्षक ऐसे नगरों और वनोंमें चारों ओर उत्तम रीतिसे रक्षणका कार्य होता था। इसलिये सर्वत्र सुरक्षा रहती थी।

रक्षकोंके पास उत्तम शस्त्र-अस्त्र रहते थे। शत्रुके आयुधोंसे अपने वीरोंके आयुध अच्छे तीक्ष्ण रखे जाते थे और अपने शस्त्रास्त्रोंका प्रभावी प्रदर्शन भी किया जाता था।

स्फोटक गोलक भी रहते थे जिनको 'दृषद' कहते थे। जिनके सात प्रकार थे। इनकी स्फोटकता भी विशेष रहती थी और ये स्फोट करके शत्रुको दिखाये भी जाते थे।

इस तरह वैदिक आदेशानुसार राष्ट्रकी संरक्षण व्यवस्था थी। इसका विचार पाठक करें।

वेदके व्याख्यान

वेदोंमें नाना प्रकारके विषय हैं, उनको प्रकट करनेके लिये एक एक व्याख्यान दिया जा रहा है। ऐसे व्याख्यान २०० से अधिक होंगे और इनमें वेदोंके नाना विषयोंका स्पष्ट बोध हो जायगा।

मानवी व्यवहारके दिव्य संदेश वेद दे रहा है, उनको लेनेके लिये मनुष्योंको तैयार रहना चाहिये। वेदके उपदेश आचरणमें लानेसे ही मानवोंका कल्याण होना संभव है। इसलिये ये व्याख्यान हैं। इस समय तक ये व्याख्यान प्रकट हुए हैं।

१ मधुच्छन्दा ऋषिका अग्निमें आदर्श पुरुषका दर्शन।
२ वैदिक अर्थव्यवस्था और स्वामित्वका सिद्धान्त।
३ अपना स्वराज्य।
४ श्रेष्ठतम कर्म करनेकी शक्ति और सौ वर्षोंकी पूर्ण दीर्घायु।
५ व्यक्तिवाद और समाजवाद।
६ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।
७ वैयक्तिक जीवन और राष्ट्रीय उन्नति।
८ सप्त व्याहृतियाँ।
९ वैदिक राष्ट्रगीत।
१० वैदिक राष्ट्रशासन।
११ वेदोंका अध्ययन और अध्यापन।
१२ वेदका श्रीमद्भागवतमें दर्शन।
१३ प्रजापति संस्थाद्वारा राज्यशासन।
१४ त्रैत, द्वैत, अद्वैत और एकत्वके सिद्धान्त।
१५ क्या यह संपूर्ण विश्व मिथ्या है?
१६ ऋषियोंने वेदोंका संरक्षण किस तरह किया?
१७ वेदके संरक्षण और प्रचारके लिये आपने क्या किया है?
१८ देवत्व प्राप्त करनेका अनुष्ठान।
१९ जनताका हित करनेका कर्तव्य।
२० मानवके दिव्य देहकी सार्थकता।
२१ ऋषियोंके तपसे राष्ट्रका निर्माण।
२२ मानवके अन्दरकी श्रेष्ठ शक्ति।
२३ वेदमें दर्शाये विविध प्रकारके राज्यशासन।
२४ ऋषियोंके राज्यशासनका आदर्श।
२५ वैदिक समयकी राज्यशासन व्यवस्था।
२६ रक्षकोंके राक्षस।
२७ अपना मन शिवसंकल्प करनेवाला हो।
२८ मनका प्रचण्ड वेग।
२९ वेदकी दैवत संहिता और वैदिक सुभाषितोंका विषयवार संग्रह।
३० वैदिक समयकी सेनाव्यवस्था।
३१ वैदिक समयके सैन्यकी शिक्षा और रचना।
३२ वैदिक देवताओंकी व्यवस्था।
३३ वेदमें नगरोंकी और वनोंकी संरक्षण व्यवस्था।

आगे व्याख्यान प्रकाशित होते जांयगे। प्रत्येक व्याख्यानका मूल्य ।=) छः आने रहेगा। प्रत्येकका डा. व्य. =) दो आना रहेगा। दस व्याख्यानोंका एक पुस्तक सजिल्द लेना हो तो उस सजिल्द पुस्तकका मूल्य ५) होगा और डा. व्य. १॥) होगा।

मंत्री — स्वाध्यायमण्डल, पोस्ट- 'स्वाध्यायमण्डल (पारडी)' जि. सूरत

मुद्रक और प्रकाशक- व. श्री. सातवळेकर, बी. ए., भारत-मुद्रणालय, पो- 'स्वाध्याय मण्डल (पारडी,' [जि. सूरत]



वैदिक व्याख्यान माला — २४ वाँ व्याख्यान

अपने शरीरमें देवताओंका निवास

और उनकी सहायतासे नीरोगताकी प्राप्ति

लेखक

पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

अध्यक्ष- स्वाध्याय-मंडल, साहित्यवाचस्पति, गीतालंकार

स्वाध्यायमण्डल, पारडी (सूरत)

मूल्य छः आने



अपने शरीरमें देवताओंका निवास

और उनकी सहायतासे नीरोगताकी प्राप्ति

अपने शरीरमें अनेक देवताएं रहीं हैं, यह जाननेका मुख्य विषय है, पर इसकी ओर ही बहुत लोगोंका ख्याल नहीं जाता, यह शोककी बात है।

पञ्चभूतोंका शरीर

यह अपना शरीर पंचमहाभूतोंका बना है, यह सब जानते हैं और वैसा बोलते भी हैं। पृथ्वी, आप्, तेज, वायु और आकाश ये पांच महाभूत हैं और इनका यह शरीर बना है। ये पांच देवताएं हैं और इनके अंश एकत्रित होकर यह शरीर बना है। अर्थात् ये पांच देवताएं इस शरीरमें रहती हैं। शरीरका स्थूलभाग पृथ्वीका बना है, शरीरमें जलका अंश है वह आप् तत्त्वका बना है, शरीरमें जो उष्णता है वह अग्नितत्त्व है, शरीरके पंच प्राण और पंच उपप्राण वायुतत्त्वके बने हैं और शरीरमें जो अवकाश है वह आकाशतत्त्वका बना है। इस तरह पांच देवता तो इस शरीरमें हैं, इसमें किसीको संदेह ही नहीं हो सकता।

पृथ्वीपर पर्वत, वृक्ष, नदियां आदि हैं। ये भी देवताएं हैं। वृक्षवनस्पतियां केश और लोम बनकर रहीं हैं, शरीरमें नसनाडियां हैं वे नदियोंके रूप हैं, पृथ्वीपर पर्वत हैं उसका शरीरमें रूप पृष्ठवंश है। पृथ्वीपर ये हैं और शरीरमें भी ये हैं। पंचमहाभूत और ये तीन मिलकर आठ देवताएं हमने शरीरमें देखीं। ये देवताएं शरीरमें हैं इसमें संदेह नहीं है। पृथ्वीलोक ही इस तरह शरीरमें रहने लगा है। इसको ' भूलोक ' कह सकते हैं। यदि पृथ्वीलोक शरीरमें है तब तो अन्तरिक्षलोक और द्युलोक भी इस शरीरमें होंगे ही, इनको हम अब देखनेका यत्न करेंगे।

> यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा अङ्गे गात्रा विभेजिरे।
> तान् वै त्रयस्त्रिंशद् देवानेके ब्रह्मविदो विदुः॥
>
> अथर्व. १०।७।२७

' तैंतीस देव (यस्य अंगे) जिसके अंगमें (गात्रा विभेजिरे) गात्र होकर रहे हैं, उन तैंतीस देवोंको अकेले ब्रह्मज्ञानी ही जानते हैं। ' अर्थात् ये ३३ देव शरीरके अंगों और गात्रोंमें रहते हैं। यहां उनको शरीरके इन अवयवोंमें, इंद्रियोंमें देखना चाहिये। तथा और देखिये—

> यस्य भूमिः प्रमा अन्तरिक्षं उत उदरम्।
> दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥
>
> अथर्व. १०।७।३२

' भूमि जिसके पांव हैं, अन्तरिक्ष जिसका पेट है, द्युलोकको जिसने अपना सिर बनाया, उस श्रेष्ठ ब्रह्मके लिये मेरा प्रणाम है। ' इस मंत्रमें पृथ्वी पांव, अन्तरिक्ष पेट और द्युलोक सिर हैं ऐसा कहा है। और देखिये—

> यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरङ्गिरसोऽभवन्।
> दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीः तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥
>
> अथर्व. १०।७।३४

' वायु जिसका प्राण और अपान हैं, जिसके आंख अंगिरस हुए हैं, दिशाओंको जिसने कान बनाये, उस ज्येष्ठ ब्रह्मको मेरा प्रणाम है। ' तथा—

> यस्य सूर्यश्चक्षुः चन्द्रमाश्च पुनर्णवः।
> अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥
>
> अथर्व. १०।७।३३

' जिसका आंख सूर्य है, पुनः पुनः नवीन होनेवाला चंद्रमा जिसका दूसरा आंख है, अग्निको जिसने अपना मुख बनाया है उस श्रेष्ठ ब्रह्मके लिये मेरा प्रणाम है। '

इन मंत्रोंमें जो देवता आये हैं उनकी तालिका ऐसी बनती है—

मूर्धा (सिरः)	द्युलोक
उदरं	अन्तरिक्षलोक
पांव	भूलोक (भूमिः)
प्राण, अपान	वायु
चक्षु (दोनों)	अंगिरसः, (सूर्यः, चन्द्रमाः)
कान	दिशाएं (प्रज्ञानीः)
मुख	अग्नि
अंग, अवयव, गात्र	तैंतीस देवताएं

पांव, पेट और सिर यह शरीरमें त्रिलोकी है। तैंतीस देव शरीरके अंगप्रत्यंग, इन्द्रिय और गात्र बने हैं। उदाहरणके लिये वायु प्राण हुआ है, सूर्य चक्षु बना, अग्नि मुख बना, इस तरह अन्यान्य देव अन्यान्य अवयव बने हैं। विश्व शरीरमें ये बडे देव हैं और मानवी शरीरमें उन देवोंके अंश आकर रहे हैं। दोनों स्थानोंपर देव और देवतांश समानतया रहे हैं। इनका निरीक्षण अब करना है, इस विषयके ये मंत्र देखिये—

कस्मादंगाद् दीप्यते अग्निरस्य कस्मादङ्गात्पवते मारिश्वा। कस्मादंगाद् वि मिमीतेऽधि चन्द्रमा महःस्कंभस्य विमानो अङ्गम् ॥ २ ॥
कस्मिन्नंगे तिष्ठति भूमिरस्य कस्मिन्नंगे तिष्ठत्यन्तरिक्षम्। कस्मिन्नंगे तिष्ठत्याहिता द्यौः कस्मिन्नंगे तिष्ठत्युत्तरं दिवः ॥ ३ ॥ अथर्व. १०।७

'इसके किस अंगसे अग्नि प्रदीप्त होता है, इसके किस अंगसे वायु बहता है, इसके किस अंगसे चन्द्रमा स्कंभके अंगको मापता हुआ चलता है, इसके किस अंगमें भूमि ठहरती है, इसके किस अंगमें अन्तरिक्ष रहता है, इसके किस अंगमें द्युलोक रहा है और किस अंगमें उच्चतर द्युलोक रहा है।'

इस तरह प्रश्न पूछनेका क्रम बताया है। विचार करनेवाले इस तरह विचार करें। यह विचार परमात्माके विश्व शरीरका और मनुष्यके पिण्ड शरीरका समान रीतिसे होता है। देखिये—

यस्मिन् भूमिरन्तरिक्षं द्यौर्यस्मिन्नध्याहिता।
यत्राग्निश्चन्द्रमाः सूर्यो वातस्तिष्ठंत्यर्पिताः।
स्कंभं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १२ ॥

यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा अंगे सर्वे समाहिताः।
स्कंभं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ १३ ॥
अथर्व. १०।७

'जिसमें भूमि, अन्तरिक्ष और द्यौ रही हैं, तथा अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य और वायु जिसमें आधार लिये रहते हैं, वह आधारस्तंभ है और वही अत्यंत सुखस्वरूप है। जिसके अंगोंमें सब ३३ देव समाये हैं वह सबका आधारस्तंभ है और वही अत्यंत सुखस्वरूप है।' तथा—

समुद्रो यस्य नाड्यः पुरुषेऽधि समाहिताः।
अथर्व. १०।७।१५

'समुद्र और नदियां पुरुष शरीरमें नाडीयोंके रूपमें रहती हैं।' बाहरके विश्वमें नदियां हैं, पुरुष शरीरमें नसनाडियां हैं, बाह्य विश्वमें समुद्र है, पुरुष शरीरमें हृदयका रुधिराशय है। इस तरह ब्रह्माण्ड ही पिण्ड शरीरमें अंश रूपसे रहा है। इसलिये कहते हैं कि—

ये पुरुषे ब्रह्म विदुः ते विदुः परमेष्ठिनम्।
अथर्व. १०।७।१७

'जो लोग मनुष्य शरीरमें ब्रह्म देखते हैं वे परमेष्ठीको जान सकते हैं।' मनुष्य शरीरमें ३३ देवताओंकी व्यवस्था जानना अत्यंत आवश्यकता है। जो मानवशरीरमें यह देवताओंकी व्यवस्था जानते हैं वे सब विश्वव्यवस्थाको जान सकते हैं।

यत्रादित्याश्च रुद्राश्च वसवश्च समाहिताः।
भूतं च यत्र भव्यं च सर्वे लोकाः प्रतिष्ठिताः।
स्कंभं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥
अथर्व. १०।७।२२

'जिसमें आदित्य, रुद्र और वसु आश्रय लेकर रहे हैं, भूत, वर्तमान और भविष्य तथा सब लोक जिसमें रहे हैं, वह सर्वाधारस्तंभ है और वह अत्यंत सुखस्वरूप है।

उपनिषदोंमें यही वर्णन इस तरह आया है—

ताभ्यो गामानयत्'ता अब्रुवन्-'न वै नोऽयमलं' इति। ताभ्यो अश्वमानयत्, ता अब्रुवन्- 'न वै नोऽयमलं' इति। ताभ्यः पुरुषमानयत्, ता अब्रुवन्-'सुकृतं बत' इति। 'पुरुषो वाव सुकृतम्,' ता अब्रवीत्- 'यथायतनं प्रविशत' इति। अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं

प्राविशत्, वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत्, आदित्यश्चक्षुर्भूत्वाऽक्षिणी प्राविशत्, दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशन्, ओषधिवनस्पतयो लोमानि भूत्वा त्वचं प्राविशन्, चन्द्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशत्, मृत्युरपानो भूत्वा नाभिं प्राविशत्, आपो रेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशन् ॥ ऐ० उप० १।२।४

इस उपनिषद्में कौनसी देवता किस रूपसे मानवी शरीरमें आकर रही है इसका वर्णन किया है—

'उन देवताओंके पास गौको लाया, देवताओंने उस गौको देखा और कहा कि 'यह पर्याप्त नहीं।' तब उन देवताओंके पास घोडा लाया गया, देवताओंने उसे देखा और कहा कि 'यह पर्याप्त नहीं है।' तब उन देवताओंके सामने मनुष्यका देह लाया गया, उसको देखकर देवताओंने कहा कि 'यह उत्तम बना है,' 'यह रहने योग्य है।' तब देवताओंसे कहा कि तुम अपने योग्य स्थानमें जाकर रहो, तब देवताओंने अपने योग्य स्थानमें जाकर निवास किया। वे देवताओंके अंश इस तरह मानवी शरीरमें रहने लगे—

१ अग्नि वाणीका रूप धारण करके मुखमें प्रविष्ट हुआ,
२ वायु प्राणका रूप धारण करके नासिकामें प्रविष्ट हुआ,
३ आदित्य चक्षुका रूप धारण करके आंखमें प्रविष्ट हुआ,
४ दिशाएं श्रोत्रका रूप धारण करके कानोंमें प्रविष्ट हुईं,
५ औषधिवनस्पतियां लोमका रूप धारण करके त्वचामें प्रविष्ट हुईं,
६ चन्द्रमा मनका रूप धारण करके हृदयमें प्रविष्ट हुआ,
७ मृत्यु अपानका रूप धारण करके नाभिमें प्रविष्ट हुआ,
८ आप् रेतका रूप धारण करके शिश्नमें प्रविष्ट हुए।

यहां आठ देवताएं शरीरके किस भागमें किस रूपको धारण करके रहने लगीं, यह बताया है। पूर्वोक्त अथर्ववेदके मंत्रोंमें 'वायु, सूर्य, दिशा, अग्नि' इन चार देवताओंके नाम आये हैं, तथा पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक सबके सब मनुष्यके शरीरमें पांव, पेट और सिरमें रहने लगे, ऐसा कहा है। तथा तैंतीस देवताएं शरीरमें अवयवों, अंगों तथा गात्रोंमें रहती हैं ऐसा भी कहा है। अर्थात् वेदका मन्तव्य ३३ देवताओंका निवास इस शरीरमें है ऐसा स्पष्ट है। परंतु नाम थोडे दिये हैं। ठीक तरह इन देवताओंके नामों तथा स्थानोंका पता लगना चाहिये। वेदमें ३३ देवताओंका उल्लेख अनेक वार आया है देखिये—

१ त्रया देवा एकादश त्रयस्त्रिंशाः सुराधसः। वा० यजु० २०।११
२ देवास्त्रयस्त्रिंशेऽमृताः स्तुताः। वा. यजु. २१।२८
३ ये देवासो दिव्येकादश स्थ, पृथिव्यामेकादश स्थ, अप्सु क्षितो महिनैका दश स्थ, ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम्। वा. यजु. ७।१९
४ आ नासत्या त्रिभिः एकादशैः इह देवेभिर्यातं मधुपेयमश्विना। वा० यजु० ३४।४७

यजुर्वेदमें ये देव ११।११ करके भूमि-अन्तरिक्ष-द्यु इन तीन स्थानोंमें मिलकर ३३ हैं ऐसा कहा है।

१ तीन गुणा ग्यारह ऐसे ये देव तैंतीस हैं।
२ ये देव तैंतीस हैं।
३ ये देव द्युलोकमें ग्यारह, पृथ्वीमें ग्यारह और अन्तरिक्षमें ग्यारह ऐसे तैंतीस हैं।
४ हे नासत्य अश्विदेवो! ग्यारह ग्यारह ऐसे त्रिगुणित अर्थात् तैंतीस देवोंके साथ सोमपान करनेके लिये आओ।

ये देव तैंतीस हैं और पृथ्वीपर ग्यारह, अन्तरिक्षमें ग्यारह और द्युलोकमें ग्यारह ऐसे तैंतीस हैं। मानवी शरीरमें नाभिके नीचे भूस्थान, नाभिसे ऊपर अन्तरिक्षस्थान और सिरमें द्युस्थान है, अर्थात् इन तीन स्थानोंमें ग्यारह ग्यारह देवताएं हैं और तीनों स्थानोंकी मिलकर तैंतीस हैं। इन देवोंकी गिनती यजुर्वेदमें की है वह ऊपर बतायी है, अब ऋग्वेदकी गिनती बताते हैं—

श्रुष्टीवानो हि दाशुषे देवा अग्ने विचेतसः।
तान् रोहिदश्व गिर्वणस् त्रयस्त्रिंशतं आ वह॥
ऋ० १।४५।२

'हे अग्ने! ज्ञानी देव दाताओंपर प्रसन्न होते हैं, उन तैंतीस देवोंको तू यहां ले आ।'

यहां (त्रयः त्रिंशतं) तीन और तीस ये पद हैं। दस दस देव हैं और उनपर तीन देव अधिष्ठाता हैं। अब अथर्ववेदमें तैंतीस देवोंका निर्देश देखिये—

एतस्माद् वा ओदनात् त्रयस्त्रिंशतं लोकान्
निरमिमीत प्रजापतिः॥ अथर्व. ११।५।३

'इस ओदनसे तैंतीस लोकोंको प्रजापतिने निर्माण किया।' यहां तैंतीस लोकोंको निर्माण करनेका कथन है। ये तैंतीस देव ही हैं। और देखिये—

त्रयस्त्रिंशत् देवताः तान् सचन्ते।

अथर्व. १२।३।१६

'तैंतीस देवताएं हैं, इनको प्राप्त करते हैं।' तथा और देखिये—

त्रयस्त्रिंशत् देवताः त्रीणि च वीर्याणि।

अथर्व. १९।२७।१०

'तैंतीस देवता हैं और तीन वीर्य हैं।' तथा और देखिये—

इदं वर्चो अग्निना दत्तं आगन् भर्गो यशः सह ओजो वयो बलम्।
त्रयस्त्रिंशत् यानी च वीर्याणि तान्यग्निः प्र ददातु मे॥ अथर्व० १९।३७।१

'यह तेज अग्निने दिया है, इसके साथ शत्रुनाशका सामर्थ्य, यश, शत्रुपराभवका बल, ओज, आयु और बल आगये हैं। जो तैंतीस वीर्य हैं वे मुझे अग्नि देवे।' और देखिये—

तस्मै स्वप्नाय दधुराधिपत्यं
त्रयस्त्रिंशासः स्वरानशासः। अथर्व० १९।५६।२

'उस स्वप्नके लिये तैंतीस देवताएं आधिपत्य रखते हैं।' अर्थात् स्वप्नपर उनका स्वामित्व है।

इस प्रकार तैंतीस देवोंका वर्णन अथर्ववेदमें है। हमने यहांतक ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेदमें आये तैंतीस देवोंके निर्देश देखे, अब तैंतीस देवोंकी पहचान करनेमें साधक होंगे ऐसे ३३ गुणोंका एकत्र उल्लेख है वह देखना है—

ओजश्च तेजश्च सहश्च बलं च वाक्च इंद्रियं च
श्रीश्च धर्मश्च ब्रह्म च क्षत्रं च राष्ट्रं च विशश्च
त्विषिश्च यशश्च वर्चश्च द्रविणं च आयुश्च रूपं
च नाम च कीर्तिश्च प्राणश्च अपानश्च चक्षुश्च
श्रोत्रं च पयश्च रसश्च अन्नं च अन्नाद्यं च ऋतं
च सत्यं च इष्टं च पूर्तं च प्रजा च पशवश्च॥

अथर्व० १२।५।७-१०

यहां ३४ गुण हैं, पर अन्न और अन्नाद्य एक माने जायगे, तो ३३ हो सकते हैं, देखिये- "(१) ओजः- सामर्थ्य, (२) तेजः- तेजस्विता, (३) सहः- शत्रुको पराजित करनेका सामर्थ्य, (४) बलं- बल, (५) वाक्- वक्तृत्व, (६) इन्द्रियं- इन्द्रियां, (७) श्री- संपति, शोभा, (८) धर्मः- धर्म, कर्तव्य, (९) ब्रह्म- ज्ञान, (१०) क्षत्रं- शौर्य, (११) राष्ट्रं- राज्य, राष्ट्र, राज्यशासन, (१२) विशः- प्रजाः, (१३) त्विषिः- चमक, (१४) यशः- यश, (१५) वर्चः- प्रकाश, (१६) द्रविणं- धन, (१७) आयुः- आयुष्य, (१८) रूपं- स्वरूप, (१९) नाम- नाम, (२०) कीर्ति- कीर्ति, (२१) प्राण- श्वास, (२२) अपान- अपान, (२३) चक्षु- नेत्र, (२४) श्रोत्रं- कान, (२५) पयः- दूध, (२६) रस- पेय, (२७) अन्नं अन्नाद्यं- खान भोजन, (२८) ऋतं- सरलता, (२९) सत्य- सच्चाई, (३०) इष्टं- इष्ट सुस्थिति, (३१) पूर्त- पूर्णता, (३२) प्रजाः- प्रजाजन, (३३) पशवः- पशु।"

ये तैंतीस हैं, मनुष्यकी उन्नतिके सूचक ये शुभगुण हैं। अन्न और अन्नाद्य पृथक् गिना जाय तो ये ३४ होते हैं, यह यहां कठिणता है। जो है सो अब इनका हम वर्गीकरण करते हैं और उस वर्गीकरणसे क्या निकलता है वह हम देखते हैं-

१ द्युस्थानीय गुण— (१) ब्रह्म, (२) ऋतं, (३) सत्यं, (४) धर्मः, (५) त्विषिः, (६) श्रीः, (७) वर्च, (८) वाक्, (९) चक्षुः, (१०) श्रोत्रं, (११) इंद्रियम्।

२ अन्तरिक्षस्थानीय गुण-(१) प्राणः, (२) अपानः, (३) आयुः, (४) सहः, (५) तेजः, (६) क्षत्रं, (७) राष्ट्रं, (८) विशः, (९) द्रविणं, (१०) इष्टं, (११) पूर्तम्।

३ भूस्थानीय गुण- (१) पशवः, (२) पयः, (३) रसः, (४) अन्नं अन्नाद्यं, (५) ओजः, (६) बलं, (७) रूपं, (८) नामः, (९) यशः, (१०) कीर्तिः, (११) प्रजाः।

यद्यपि यहां तैंतीस बन गये हैं तथापि यह वर्गीकरण ठीक है इसमें कोई प्रमाण नहीं है। इसमें अनेक दोष भी हैं। इसलिये यह तैंतीस देवताओंका निर्णय करनेमें सहायक होगा, ऐसा हम नहीं कह सकते। इसमें ३४ गुण हैं, हमें तैंतीस चाहिये, अन्न और अन्नाद्यको हमने एक बनाया और ३३ बनाये। ऐसा करना भी योग्य नहीं है।

पृथ्वीस्थानमें ग्यारह, अन्तरिक्ष स्थानमें ग्यारह और द्युस्थानमें ग्यारह ऐसे ये देव हैं और मानवशरीरमें (१) नाभिसे नीचे ग्यारह, (२) नाभिसे ऊपर ग्यारह और (३) सिरमें ग्यारह ऐसे ये देव होने चाहिये। वैसे ये हुए हैं ऐसा हम नहीं कह सकते।

शरीरमें तैंतीस देवताओंके अंश आकर रहे हैं, इस विषयमें वेदका सिद्धान्त निश्चित है, देखिये—

देवोंके अंश शरीरमें

इस विषयमें ये अथर्ववेदके मंत्र देखने योग्य हैं—

दश साकं अजायन्त देवा देवेभ्यः पुरा।
यो वै तान् विद्यात् प्रत्यक्षं स वा अद्य महद् वदेत्।
अथर्व० ११।८।३

' पूर्व समयमें दस देव दस देवोंसे इकट्ठे उत्पन्न हुए, जो उनको प्रत्यक्ष देखेगा, वही आज महत् (ब्रह्म) के विषयमें उपदेश दे सकेगा। '

दस बडे देवोंसे उनके पुत्ररूप दस देव उत्पन्न हुए। ये पुत्ररूपी देव ही इस शरीरमें आकर रहे हैं। इस विषयमें अगला ही मंत्र देखिये—

प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रं अक्षितिः च क्षितिः च या।
व्यानोदानौ वाङ् मनः ते वा आकूतिं आवहन्॥
अथर्व० ११।८।४

' प्राण, अपान, चक्षु, श्रोत्र, अविनाश और विनाश, व्यान, उदान, वाणी और मन ये दस संकल्पको यहां (इस शरीरमें) लाते हैं, धारण करते हैं। तथा और देखिये—

कुत इन्द्रः कुतः सोमः कुतो अग्निः अजायत।
कुतः त्वष्टा समभवत् कुतो धाता अजायत॥८॥
इन्द्रादिन्द्रः सोमात् सोमो अग्ने रग्निरजायत।
त्वष्टा ह जज्ञे त्वष्टुः धातुः धाता अजायत॥९॥
अथर्व० ११।८

' किससे इन्द्र, किससे सोम, किससे अग्नि उत्पन्न हुआ, किससे त्वष्टा और किससे धाता उत्पन्न हुआ है? इन्द्रसे इन्द्र, सोमसे सोम और अग्निसे अग्नि उत्पन्न हुआ, त्वष्टासे त्वष्टा और धातासे धाता उत्पन्न हुआ। '

यहां पांच ही देवोंसे पांच पुत्र देव उत्पन्न हुए ऐसा कहा है। परंतु पूर्वोक्त दस देवोंमें ये पांच देव अधिक हैं। अर्थात् यह सब मिलकर पंद्रह देवोंका वर्णन हुआ। यह गणना ऐसी है—

प्राण	चक्षु	अक्षिति	इन्द्र
अपान	श्रोत्र	क्षिति	सोम
व्यान	वाक्		अग्नि
			त्वष्टा
उदान	मन		धाता

इन्द्रसे	क्षात्रतेज, आत्मा
सोमसे	मन
चन्द्रमासे	मन
अग्निसे	वाणी
त्वष्टासे	कर्तृत्वशक्ति
धातासे	धारणशक्ति
सूर्यसे	चक्षु
दिशाओंसे	श्रोत्र
वायुसे	प्राण, अपान, व्यान, उदान
क्षितिसे	पृथ्वी, भूमि, निवासस्थान, विनाश
अक्षितिसे	अपार्थिव, अविनाश

यहां प्राण, अपान, व्यान, उदान ये प्राणके ही भेद हैं। इस कारण पता नहीं चलता कि यहां कितने देव अपेक्षित हैं। परंतु आगे कहा है कि—

ये त आसन् दश जाता देवा देवेभ्यः पुरा।
पुत्रेभ्यो लोकं दत्वा कस्मिंस्त लोक आसते॥
अथर्व० ११।८।१०

' जो वे दस देवता पूर्व समयमें दस देवोंसे उत्पन्न हुए, वे अपने पुत्रोंको स्थान देकर स्वयं वे किस लोकमें रहने लगे हैं? ' अर्थात् बडे दस देवोंसे दस पुत्र देव उत्पन्न हुए। बडे दस देवोंने अपने पुत्र देवोंको योग्य स्थान दिया और वे बडे दस देव अपने स्थानमें यथापूर्व रहने लगे।

यहां स्पष्ट शब्दोंसे कहा है कि बडे देवोंको अंशरूप पुत्र हुए। उन पुत्र देवोंको मानवशरीरमें सुयोग्य स्थान मिला है। ये पुत्र देव मानवशरीरमें रहने लगे हैं और वे बडे देव अपने निजस्थानोंमें यथापूर्व रहते हैं। यही इस मंत्रमें कहा है—

गृहं कृत्वा मर्त्यं देवाः पुरुषं आविशन्।
अथर्व० ११।८।१८

' इस शरीररूपी मर्त्य घरको बनाकर देव इस मानवी शरीरमें घुसे हैं और वहां रहने लगे हैं। '

संसिचो नाम ते देवा ये संभारान् समभरन् ।
सर्वं संसिच्य मर्त्यं देवाः पुरुषं आविशन् ॥
अथर्व० ११।८।१३

'सिंचन करनेवाले ऐसे वे प्रसिद्ध देव हैं, जिन्होंने शरीरका सब संभार तैयार किया। सब मर्त्यको जीवनसे सींचकर सब देव मानवी शरीरमें प्रविष्ट हुए।' जीवनरससे सिंचन करनेवाले वे देव हैं, जिनके अन्दर जीवनरस देनेकी शक्ति है, उस शक्तिसे उन्होंने इस मर्त्य शरीरका सिंचन किया, इस मर्त्य शरीरको जीवनरससे सिंचित किया, जिससे यह मर्त्य शरीर सजीव हुआ, तत्पश्चात् वे सब देव इस शरीरमें प्रवेश करके रहने लगे हैं। यहां हमें अनेक बातोंका पता लगता है—

१- इन देवोंमें मर्त्य देहमें जीवनरसका सिंचन करनेकी शक्ति है।
२- उस शक्तिके कारण वे देव इस मर्त्य शरीरको जीवनीय रससे सिंचित करते हैं।
३- और जबतक उनका निवास यहां इस शरीरमें रहता है, तबतक इस शरीरमें जीवनीय रसका सिंचन होता रहता है।
४- यदि हमें ठीक तरह इन देवताओंके स्थानोंका पता लगेगा, तो हम भी उन देवताओंकी शक्तिका उपयोग करके इस शरीरको अधिक समयतक नीरोग, जीवित तथा मरणधर्मसे रहित रख सकते हैं।

यदि इन देवताओंका निवास कहां, कैसा है, इसका हमें ठीक तरह पता लगेगा, तो हम इस दैवी चिकित्साको सिद्ध कर सकते हैं और अनेक प्रकारसे आरोग्य प्राप्त कर सकते हैं। यह विद्या इतनी महत्वकी है और इसका इस तरह मानवी आरोग्यके साथ घनिष्ट संबंध है। शरीरमें कौनसे गुण आये इसकी नामावली अब देखिये—

स्वप्नो वै तन्द्रीः निर्ऋतिः पाप्मानो नाम देवताः ।
जरा खालित्यं पालित्यं शरीरं अनु प्राविशन् ॥१९॥
स्तेयं दुष्कृतं वृजिनं सत्यं यज्ञो यशो बृहत् ।
बलं च क्षत्रमोजश्च शरीरमनु प्राविशन् ॥२०॥
भूतिश्च वा अभूतिश्च रातयोऽरातयश्च याः ।
क्षुधश्च सर्वा तृष्णाश्च शरीरमनु प्राविशन् ॥२१॥
निन्दाश्च वा अनिन्दाश्च यच्च हन्तेति नेति च ।
शरीरं श्रद्धा दक्षिणाऽश्रद्धा चानु प्राविशन् ॥२२॥
विद्याश्च वा अविद्याश्च यच्चान्यदुपदेश्यम् ।
शरीरं ब्रह्म प्राविशदृचः सामाथो यजुः ॥२३॥
आनंदा मोदाः प्रमुदोऽभीमोदमुदश्च ये ।
हसो नरिष्टा नृत्तानि शरीरमनु प्राविशन् ॥२४॥
आलापाश्च प्रलापाश्चाऽभीलापलपश्च ये ।
शरीरं सर्वे प्राविशन्नायुजः प्रयुजो युजः ॥२५॥
प्राणापानौ चक्षुः श्रोत्रमक्षितिश्च क्षितिश्च या ।
व्यानोदानौ वाङ् मनः शरीरेण त ईयन्ते ॥२६॥
आशिषश्च प्रशिषश्च संशिषो विशिषश्च याः ।
चित्तानि सर्वे संकल्पाः शरीरमनु प्राविशन् ॥२७॥
आस्तेयीश्च वास्तेयीश्च त्वरणाः कृपणाश्च याः ।
गुह्याः शुक्रा स्थूला अपस्ता बीभत्सावसादयन् ॥२८॥
अथर्व. ११।८

स्वप्न, (तन्द्री) आलस्य, (निर्ऋतिः) दूरवस्था, (पाप्मनो नाम देवताः) पापको प्रवृत्त करनेवाली दुष्ट शक्तियां, जीर्ण अवस्था, (खालित्यं) गंज, (पालित्यं) बालोंकी सफेदी, चोरी, कुकर्म, पाप, सत्य, यज्ञ, बडा यश, बल, (क्षात्रं) शौर्य, बल, (भूतिः) उन्नति, (अभूतिः) अवनति, (रातिः) उदारता, (अरातयः) कंजूसी, भूख और प्यास, निन्दा, निन्दा न करना, हां करना, नकार देना, श्रद्धा और दक्षता, अश्रद्धा, विद्या, अविद्या, तथा जो कुछ उपदेश करने योग्य है, (ब्रह्म) ज्ञान, ऋचा, साम, यजु, आनन्द, हर्ष, (प्रमुदः) उपभोग, तथा उपभोगोंको भोगनेवाले जो हैं, हंसी, खेल, नाच, गप्पें, प्रलाप, निकम्मी बातें, आयोजन, प्रयोजन और योजनाएं, प्राण, अपान, चक्षु, श्रोत्र, अविनाश और विनाश, व्यान, उदान, वाणी, मन, आशीर्वाद, आदेश मांगना, विशेषता, चित्त और सब संकल्प, (आस्तेयी) अस्तेयसंबंधी आदेश, (वास्तेयी) वस्तिके कार्य, (त्वरणाः) त्वरासे करनेके कार्य, (कृपणाः) कृपणताके कार्य, गुह्य, शुक्र, स्थूल जो जल हैं, जो बीभत्स हैं, ये सब गुण शरीरमें घुसे हैं।

इनमें परस्परविरोधी गुण हैं उनकी तालिका यह है—

१- दुर्गुण- निर्ऋति (निकृष्ट स्थिति), पाप्मनो

देवता (पापकी ओर प्रवृत्ति करनेवाली प्रेरक शक्तियां), जरा (बुढापा), खालित्यं (बालकोंका गिरना), पालित्यं (बालोंका सफेद होना), स्तेयं (चोरी), दुष्कृतं (दुष्कर्म), वृजिनं (पाप), अभूति (अवनति), अरातयः (दान न देना, कंजूसी), क्षुधा (भूख), सर्वाः तृष्णाः (सब प्रकारकी प्यासें) निन्दा, नेति (नहीं ऐसा कहना), अश्रद्धा, प्रलापाः (व्यर्थ बातें), अभीलापलपः (व्यर्थ भगभग), कृपणाः (कृपणता) आदि दुर्गुण शरीरमें होते हैं।

२- इसके साथ शुभगुण भी शरीरमें रहते हैं वे अब देखिये- सत्य, यज्ञः, श्रद्धा, दक्षिणा (दक्षता), विद्या (आत्मज्ञान), अविद्या (विज्ञान), अन्यत् उपदेश्यं, ब्रह्म (ज्ञान), ऋचः, साम, यजुः, आयुजः (आयोग), प्रयुजः (प्रयोग), युजः (योग), बलं, क्षत्रं, ओजः, प्राणः, अपानः, व्यान, उदान, चक्षुः, श्रोत्रं, वाक्, मनः, चित्तं, संकल्पः, हंसः (हास्य), नरिष्टः (खेल, यज्ञ), नृतः (नाच), आलाप (गायन), आशिष, प्रशिषः, संशिषः, विशिषः, (आशीर्वचन), आनंदाः मोदाः, प्रमुदः अभिमोदमुदः (आनन्दका भोग), भूतिः (उन्नति), राति-रातयः (दान), क्षिति (निवासस्थान), अक्षिति (अविनाशी स्थिति), आनिन्दा, हन्त (आनन्दका शब्द), त्वरणाः (त्वरा), गुह्या (गुप्त संकेत), शुक्राः (शुद्ध तथा बलवान्), स्थूलाः (स्थूल, मोटी), अपः (जल, पेय), आस्तेयी (आस्तित्वके लिये आवश्यक) वास्तेयी (स्थान, रहने योग्य, बस्तीके योग्य स्थान), बृहत् यशः, स्वप्न (गाढ निद्रा), तन्द्री (एकाग्रता) ये सब गुण शरीरमें आगये हैं।

ये शुभगुण और ये दुर्गुण मनुष्यमें रहते हैं। इनसे मानवव्यवहार चलता है। इनके मिश्रणसे मनुष्य उत्तम, मध्यम अथवा कनिष्ट होता है। ये गुण (शरीरं अनु प्राविशन्) शरीरमें प्रविष्ट हुए हैं। और इनके मिश्रणसे मनुष्य बना है। इनमें प्राण, अपान, चक्षु, श्रोत्र, मन आदि देवताएं या देवताओंके अंश हैं। पर इनके विचारसे ३३ देवताओंका निर्णय होनेमें कुछ भी सहायता नहीं मिल रही है।

जिस तरह मानवी शरीरमें देवता आकर रहे हैं उसी तरह ये शुभ और अशुभ गुण आकर रहे हैं। संभव है कि इन गुणोंका संबंध देवोंसे हो। ऐसे माना जाय तो दुर्गुणोंका भी देवोंसे संबंध मानना पडेगा, और दुर्गुणोंमें 'पाप्मनो नाम देवताः' (अथर्व. ११।८।१९) मनको पापकी ओर प्रवृत्त करनेवाली शक्तियां भी हैं। इस कारण ३३ देवताओंका निर्णय करनेमें ये गुणोंकी नामावली सहायक नहीं होती है। अतः हम इस विषयको यहां छोडते हैं और इस विषयके दूसरे मंत्र देखते हैं—

यदा त्वष्टा व्यतृणत् पिता त्वष्टुर्य उत्तरः।
गृहं कृत्वा मर्त्यं देवाः पुरुषं आविशन् ॥

अथर्व० ११।८।१८

'जब त्वष्टाने (शरीरमें) छिद्र किये, त्वष्टाका श्रेष्ठ पिता था, उसने मर्त्य घर बनाया और उस शरीरमें देव प्रविष्ट हुए।' यहां त्वष्टाने इस शरीरमें अनेक छिद्र बनाये, जो इन्द्रिय कहलाते हैं। ज्ञानेन्द्रियोंके छिद्र हैं और त्वचामें भी जहां बाल तथा रोवें हैं, वहां भी सर्वत्र छिद्र हैं। ये सब छिद्र बडे कामके हैं। ये सब छिद्र त्वष्टाने बनाये हैं। विश्वकी रचना करनेवाला कारीगर त्वष्टा है, उसने यह रचना की है और इन छिद्रोंके द्वारा देव शरीरमें प्रविष्ट हुए हैं। जिस देवको रहनेके लिये जैसा छिद्र चाहिये वैसा वहां छिद्र उस कारीगर त्वष्टाने बनाया और ऐसे सुयोग्य छिद्र बन जानेपर वहां एक एक देव आकर रहे हैं। देवोंके स्थान इस तरह बने। और भी देखने योग्य एक बात है वह अब यहां देखिये—

अस्थि कृत्वा समिधं तदष्टापो असादयन्।
रेतः कृत्वाऽऽज्यं देवाः पुरुषं आविशन् ॥

अथर्व. १०।८।२९

'हड्डियोंकी समिधाएं बनायी, आठ प्रकारके जलोंको टिकाया, वीर्यका घी बनाया और देव मानवी शरीरमें प्रविष्ट हुए।'

शरीरमें जो हड्डियां हैं उनकी समिधा बनायी हैं। और आठ प्रकारका जल शरीरमें आठ स्थानोंपर स्थिर किया है। यह जल वीर्यरूप बनकर शरीरको धारणा कर रहा है। इस वीर्यका घी बनाया और इस घीकी आहुतियां दी गयी। इस यज्ञका वर्णन छांदोग्य उपनिषदमें इस तरह आया है—

योषा वा गौतम अग्निः, तस्या उपस्थ एव समित्, यदुपमंत्रयते स धूमो, योनिरर्चिः,

यदन्तः करोति ते अंगारा, अभिनन्दा विस्फुलिंगाः ॥ १ ॥
तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा रेतो जुह्वति, तस्या आहुतेर्गर्भः संभवति ॥ २ ॥ छां. उ. ५।८।१-२

'हे गौतम ! स्त्री अग्नि है, उस स्त्रीका जो उपस्थ इन्द्रिय है, वही समिधा है, उस स्त्रीके साथ जो विचार होता है, वह धूवां है (इससे कामाग्नि प्रज्वलित होता है।) जो स्त्रीका इंद्रिय है वह ज्वाला है। जो स्त्रीका उपभोग लेना है वे जलते कोयले हैं और जो उससे आनंद होता है वे आनंद ही चिनगारियां हैं। इस स्त्रीरूपी अग्निमें देव वीर्यका हवन करते हैं और इस आहुतिसे गर्भ होता है।'

ऐसा ही वर्णन बृहदारण्यक उपनिषद्में ६।२।१३ में हैं। प्रायः ये ही शब्द वहां हैं। तात्पर्य स्त्री अग्नि है और उसके साथ पुरुषका जो संबंध होता है वह एक महान् यज्ञ है। इस स्त्रीपुरुष सम्बन्धको यज्ञ मानकर वैसा पवित्र भावसे यह व्यवहार करना चाहिये, ऐसा हुआ तो उसका फल बडा पवित्र होता है।

यहां 'रेतका घी बनाकर देव शरीरमें प्रविष्ट हुए' ऐसा जो वेदने कहा उसका ठीक ठीक ज्ञान हुआ। स्त्रीपुरुष सम्बन्धरूप यज्ञमें वीर्यरूपी घीकी ही आहुतियां देना होता है। और इस वीर्यबिन्दुमें अंशरूपसे सब तैंतीस देव रहते हैं। जो माताके गर्भमें जाकर प्रकट होते हैं।

वीर्य सब शरीरका सारतत्त्व है

वीर्य जो है, वह शरीरके अंग-प्रत्यंगोंका सार सर्वस्व है। इसलिये कित्येक प्रसंगमें पिता माताके सदृश पुत्रके अंग होते हैं, किसी समय यह सादृश्य स्पष्ट होता है और कई प्रसंगोंमें यह सादृश्य अस्पष्ट होता है। बहुत पुत्रोंमें देखा गया है कि, उनके कई अवयव पिताके अवयवोंके समान होते हैं। यह सादृश्य उस अंगका अंश उसके वीर्यमें आया है इस कारण होता है।

परंतु यहांतक ही यह बात सीमित नहीं होती है। मनुष्यके शरीरमें सूर्य, चन्द्र, वायु, विद्युद्, जल, पृथिवी आदि सब देवोंके अंश रहते हैं। यह शरीर पंचमहाभूतोंका बना है यह सब जानते हैं। पंचमहाभूतोंके अंश इकट्ठे होकर यह मानवी शरीर बना है, इसी तरह अन्यान्य देव भी अंशरूपसे यहां रहे हैं। अर्थात् यह शरीर विश्व शरीरका सारभूत अंश है और इस शरीरका सारभूत अंश वीर्यबिंदु है इसलिये वीर्यका एक बिन्दु विश्वका साररूप अंश है। यह वीर्यबिन्दु न केवल शरीरका सार है, परन्तु यह विश्वका सार है। इतना महत्त्व इस वीर्यबिन्दुका है। इसी लिये वीर्यका संरक्षण करना चाहिये, क्योंकि वह विश्वरूपका सारभूत अंश है।

जिस तरह वृक्षसे बीज होता है और बीजसे वृक्ष बनता है, वृक्षमें जो विस्तृत होता है वही बीजमें संकुचित रूपमें रहता है। इसी तरह वीर्यमें संपूर्ण शरीर संकुचित रूपमें रहता है, वही पुरुषरूपमें विस्तृत होता है। बीज 'संकुचित वृक्ष' है और वृक्ष 'विस्तृत बीज' है। इसी तरह मानवका संकुचित रूप वीर्यबिन्दु है और वीर्यबिन्दुका विकसित रूप शरीर है।

ऊपर जो कहा है कि 'वीर्यका घी बनाकर सब देव शरीरमें घुसे हैं।' इसका अर्थ ही यह है कि वीर्यबिंदुमें सब ३३ देव अंशरूपसे बसते हैं, वे मानवशरीरमें विकसित होते हैं। एक छोटासा वीर्यबिन्दु है, परन्तु उसमें विश्वभरके सब तत्त्व समाये हैं। यही पुरुषमें ब्रह्मशक्तिका दर्शन करना है। अतः कहा है—

तस्माद् वै विद्वान् पुरुषं इदं ब्रह्मेति मन्यते।
सर्वा ह्यस्मिन् देवता गावो गोष्ठ इवासते ॥
अथर्व. ११।८।३२

'इसलिये इस (पुरुषं विद्वान्) पुरुषको जाननेवाला (इदं ब्रह्म) यह ब्रह्म है, ऐसा मानता है, क्योंकि (सर्वाः देवताः) सारी देवताएं (अस्मिन्) इसमें वैसी रहती हैं जैसी (गोष्ठे गावः इव) गौवें गोशालामें रहती हैं।'

जिस तरह गोशालामें गौवें रहती हैं, उस तरह इस शरीरमें सारी तैंतीस देवताएं रहती हैं। इन तैंतीस देवताओंको इस शरीरमें कहां, कौनसी देवता है यह जानना आवश्यक है। इसको यथावत् जाननेसे जाननेवाला अपना लाभ कर सकता है, यह ब्रह्मज्ञानका फल है।

शरीरमें त्रिलोकी

इस मानवशरीरमें त्रिलोकी है। सिर द्युलोक है, मध्यभाग अन्तरिक्ष लोक है और नाभिके नीचे भूलोक है। इससे यह सिद्ध होता है कि, इस प्रत्येक लोकमें ११।११ देवताएं हैं। इनके स्थानको पहचानना चाहिये और अमुक देवताका अमुक स्थान है, यह जानना चाहिये। यही शरीरमें

ब्रह्म देखना है । योगशास्त्रमें योगियोंने इस विषयपर बहुत विचार किया है । इसका सूचक एक अथर्ववेदका मंत्र यहां प्रथम देखिये—

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूः अयोध्या ।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥३१
तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते ।
तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः ॥ ३२ ॥
प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा संपरीवृताम् ।
पुरं हिरण्ययीं ब्रह्मा प्रविवेशापराजिताम् ॥३३॥
अथर्व० १०।२

(देवानां पूः) देवताओंकी यह शरीररूपी अयोध्या नगरी है इसमें आठ चक्र हैं और नौ द्वार हैं । इसमें सुनहरी कोश-हृदय कमल-है, जो स्वर्ग तेजसे घिरा हुआ है । इस तीन आरोंवाले, तीन आधारवाले सुनहरी कोशमें जो (आत्मन्वत् यक्षं) आत्मावाला यक्ष है उसको निःसंदेह (ब्रह्मविदः विदुः) ब्रह्मज्ञानी ही जानते हैं । उस तेजस्वी, मनका हरण करनेवाली, यशसे घिरी अपराजित सुनहरी पुरीमें ब्रह्मा प्रवेश करता है, अर्थात् ब्रह्माका निवास यहां इस शरीरके अन्दर जो हृदयका स्थान है वहां है ।

इन मंत्रोंमें कहा है कि—

१ देवानां अयोध्या पूः— देवोंकी नगरी अयोध्या है । इसमें सब देव-अर्थात् ३३ देव रहते हैं । देव अजर अर्थात् जरारहित हैं ।

२ यह नगरी शत्रुको ' अ-योध्या ' युद्ध करके जीतनेके लिये अशक्य है, क्योंकि इसमें शत्रुका पराजय करनेके अनेक साधन हैं । शत्रुका आक्रमण हुआ तो उसको पराभूत करनेकी क्रिया यहां शुरू होती है । ऐसे रक्षणके साधन यहां रहते हैं । अपने मानस शक्तिसे उन केन्द्रोंको उत्तेजित करके रोगोंके आक्रमणोंको दूर किया जा सकता है । शरीरमें ऐसे अनेक केन्द्र हैं जिनकी उत्तेजना मानसिक प्रेरणासे होती है और उस केन्द्रसे ऐसे आरोग्यरसका स्राव होता है, जिससे रोग दूर हो जाता है । इस कारण इस देवताओंकी नगरीको ' अ-योध्या ' शत्रुके द्वारा युद्ध करके पराजित करनेके लिये अशक्य है । इस नीरोगिताके प्रस्थापनके लिये इन ३३ देवोंके शरीरान्तर्गत स्थानोंको जानना आवश्यक है क्योंकि उनके स्थानोंसे आरोग्यवर्धक रसकी प्राप्ति होती है ।

३ प्रभ्राजमाना— यह नगरी तेजसे चमकनेवाली है । यह आरोग्यका चिन्ह है । पूर्ण नीरोग शरीर रहा तो यह तेज दीखता है । ध्यानधारणा जो करते हैं, प्राणायामका अभ्यास जो करते हैं उनको आंखें बंद करके अंधेरे कमरेमें आंखें बंद होनेपर भी प्रकाश दर्शन होता है । वह प्रकाश अपने अन्दरका है । वही इस नगरीका स्वयं प्रकाश है ।

४ हरिणी— दुःखका हरण करनेके सब साधन इसमें हैं । मनको यह आकर्षण करती है । यह नगरी आकर्षक है । अनेक सुखके साधन इसमें हैं । प्राणायाम, धारणा ध्यान करनेवालोंको यह स्वात्मसुख स्वयं अन्दरसे प्राप्त होता है ।

५ यशसा सं परीवृता— यशसे घिरी यह नगरी है । ' यशस् ' का अर्थ- ' योग्य, प्रियकर, यश, कीर्ति, सौंदर्य, धन, अन्न, जल ' यह है । इनसे यह नगरी युक्त है । अन्न और जल तो इस शरीरके लिये आवश्यक ही हैं । नीरोगितासे सौंदर्य इसमें रहता ही है ।

६ हिरण्मयी— सुवर्णके तेजसे युक्त, तेजस्वी ।

७ अपराजिता— शत्रुसे पराजित नहीं होती । रोगादि शत्रु आगये तो आन्तरिक शक्तिसे वे दूर होते हैं । इस शरीरमें नाना ग्रंथियां हैं, उनसे अनेक प्रकारके जीवनीय रस शरीरमें स्रवते हैं, जो रोगादिकोंको विनष्ट करते हैं । इससे पूर्व ' अयोध्या ' पद आया है । उसी अर्थका यह ' अपराजिता ' पद है । ' अयोध्या 'का अर्थ जिससे युद्ध नहीं हो सकता, शत्रुका आक्रमण हुआ तो शत्रु विनष्ट हो जाते हैं । ' अ-परा-जिता ' का अर्थ भी ' शत्रुसे पराजित न होनेवाली ' है ।

८ अष्टा-चक्रा— आठ चक्र जिसमें लगे हैं, मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, सूर्य, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा, सहस्रार ये आठ चक्र शत्रुका नाश करनेके लिये यहां लगे हैं । इनमें विविध शक्तियां हैं जो आक्रमक शत्रुका नाश करती हैं ।

९ नव द्वारा— नौ द्वार इसमें हैं । दो आंख, दो नाक, दो कान, एक मुख मिलकर सात द्वार हुए, और मूत्रद्वार तथा मलद्वार मिलकर नौ द्वार हैं । इस अयोध्या नगरीके कोटेमें ये नौ द्वार हैं । कई ग्रंथोंमें ' पुरं एकादश द्वारं अजस्य अवक्रचेतसः ' (के० ड५०) अज नाम अजन्माका यह ग्यारह द्वारोंवाला नगर है । नाभि तथा ब्रह्मरन्ध्र ये दो द्वार मिलकर ग्यारह द्वार होते हैं । इन प्रत्येक

द्वारका कार्य और महत्त्व विशेष ही है। ऐसा यह शरीर देवोंकी नगरी ही है।

१० ज्योतिषा आवृतः स्वर्गः— तेजसे घिरा स्वर्ग इसीमें है। यह हृदय ही स्वर्ग है। अर्थात् यही स्वर्गधाम है। स्वर्ग सुखात्मक लोक है। स्वर्गमें देव ही रहते हैं। इससे भी सिद्ध हुआ कि इस शरीरमें देवोंका निवास है। इन देवोंके स्थानोंका पता लगाना चाहिये। अपने शरीरमें कितनी दिव्य व्यवस्था यह है, इसका विचार मनुष्य करे।

११ तस्मिन् आत्मन्वत् यक्षम्— इसमें आत्मासे युक्त यक्ष पूजनीय देव रहता है। ये ही आत्मा और परमात्मा हैं। आत्माके साथ यह यक्ष है।

१२ पुरं ब्रह्मा प्रविवेश— इस नगरीमें ब्रह्मा प्रविष्ट होता है। यह आत्माका प्रवेश है। ब्रह्मा सृष्टीकी उत्पत्ति करनेवाला है। उत्पत्ति करनेवाली शक्ति इस शरीरमें रहती है, वह अपने सदृश पुत्रकी उत्पत्ति करता है।

इससे इस शरीररूपी देवोंकी अयोध्या नगरीकी कल्पना आ सकती है। इतनी महत्त्वपूर्ण यह नगरी अर्थात् यह शरीर है। यह देवोंकी नगरी है। देवोंकी यहां वसती है। ये मुख्य ३३ देव हैं और ३३ के अनुपातमें सहस्रों, लाखों और करोडों सूक्ष्म देव इस शरीरमें रहते हैं। ३३ करोड देवता हैं ऐसा जो कहते हैं वे देवता ये ही शरीरस्थानीय देवगण ही हैं। एक एक देवताके अधीन करोडों शक्तियोंको धारण करनेवाले सूक्ष्म शक्तिकेन्द्र हैं। ऐसा यह अप्रतिम शरीर है।

देवोंकी संख्या और उनका कार्य

देवोंकी संख्या और उनके कार्यके विषयमें निम्नलिखित मन्त्रभाग देखने तथा विचार करने योग्य हैं—

१ ब्रह्मचारिणं पितरो देवजनाः पृथक् देवा अनुसंयन्ति सर्वे। गंधर्वा एनमन्वायन् त्रयस्त्रिंशत् त्रिशताः षट् सहस्राः। सर्वान्त्स देवांस्तपसा पिपर्ति ॥ २ ॥
२ तं जातं द्रष्टुं अभि संयन्ति देवाः ॥ ३ ॥
३ तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकं ॥ ५; २३ ॥
४ तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति ॥ ८ ॥
अथर्व. ११।५

ये मन्त्र विशेष विचार करने योग्य हैं। इन मन्त्रोंका इस तरह विचार करना चाहिये—

१ पितरः देवजनाः सर्वे देवाः ब्रह्मचारिणं अनुसंयन्ति— पितर, देवजन, तथा सब देव ब्रह्मचारीके साथ रहते हैं। ब्रह्मचर्य पालन करनेवालेको ब्रह्मचारी कहते हैं। ब्रह्मचर्य व्रत पालन करके जो अपने वीर्यका रक्षण करता है, उसके साथ ये सब देव रहते हैं। अर्थात् जो अपना वीर्य नष्ट करता है, अपने कुकर्मोंसे अपने वीर्यका नाश करता है, उसके साथ ये सब देव नहीं रहते। ब्रह्मचर्य पालनसे वीर्यरक्षण करनेवालेकी सहायता ये देव उसके शरीरमें रहकर करते हैं। यदि देवोंकी सहायता लेनी है तो ब्रह्मचर्य पालन करके वीर्यरक्षण करनेकी बडी भारी आवश्यकता है।

२ त्रयस्त्रिंशत् त्रिशताः षट् सहस्राः सर्वे देवाः गंधर्वा एनं ब्रह्मचारिणं अन्वायन्— छः सहस्र तीनसौ तैंतीस ये सब देव और गंधर्व इस ब्रह्मचारीके साथ रहते हैं। जो ब्रह्मचर्य पालन करके अपना वीर्य रक्षण करता है उसके साथ साथ छः हजार तीनसौ तैंतीस देव और गंधर्व रहते हैं। साथ साथ चलते भी हैं। अर्थात् उसके अनुकूल चलते हैं। यहां ६३३३ देवोंका उल्लेख है। ये अनेक देव तैंतीस कोटीतक संख्यामें हो सकते हैं। मुख्य देव एक है, उसके तीन देव होते हैं, उसके ३३ बने और आगेकी संख्या इसी तरह बढती है। हमें ३३ देवोंका पता लगा तो उसके अनुपातसे ३३ करोडोंका भी पता स्वयं लग जायगा, क्योंकि एक एकके सहायक शक्तिके अंश अनेकानेक होते हैं। पाठक यहां मुख्य ३३ देवता हैं ऐसा समझें और बाकी जो उनके साथ सूक्ष्म शक्तिकेन्द्र हैं, उनका अन्तर्भाव उन्हींमें होता है, ऐसा समझें।

३ स ब्रह्मचारी तपसा सर्वान् देवान् पिपर्ति— वह ब्रह्मचारी अपने ब्रह्मचर्यके तपसे सब देवोंको प्रसन्न करता है। ब्रह्मचर्यके पालनसे शरीरस्थानीय सब देव हृष्टपुष्ट, कार्यक्षम, तथा आनन्दप्रसन्न होते हैं और इसी कारण उत्तम ब्रह्मचारी ऊर्ध्वरेता पुरुष नीरोग रहता है क्योंकि शरीरकी सुरक्षा करनेवाले ये ३३ देव आनन्दप्रसन्न रहते हैं और इन देवोंका जो कार्य होता है वह वे उत्तम रीतिसे करते हैं, इस कारण वह नीरोग, सुदृढ तथा पूर्णायु होता है।

४ तं जातं द्रष्टुं देवाः अभि संयन्ति— उस ब्रह्मचारीको देखनेके लिये देव सामने खडे हो जाते हैं। ब्रह्मचारी आने लगा तो सब देव उसका संमान करनेके लिये उसके सामने खडे हो जाते हैं। ब्रह्मचारीके शरीरमें रहनेके लिये

वे प्रसन्नचित्त रहते हैं। वे चाहते हैं कि ब्रह्मचारीके साथ हम रहें और उसके शरीरमें रहकर हम विशेष कार्य करें।

५ सर्वे देवाः अमृतेन साकं ब्रह्म ज्येष्ठं ब्राह्मणं (अनु संयन्ति)— सब देव अमृतके साथ ब्रह्मरूपी ज्येष्ठ ब्राह्मणकी सहायता करनेके लिये रहते हैं। देव अमर होते हैं, उनके पास अमृत रहता है। यह अमृत देव अपने साथ लेकर ब्रह्मचारीके शरीरमें रहते हैं। निर्वीर्य शरीरवालेके देहमें ये ही देव निर्बल अवस्थामें रहते हैं इसलिये उनमें रोग दूर करनेकी अमृतशक्ति क्षीण हुई रहती है।

६ तस्मिन् ब्रह्मचारिणि देवाः संमनसो भवन्ति– उस ब्रह्मचारीमें सब देव उसके मनके साथ सम्मिलित होकर रहते हैं। प्रथम मनुष्य ब्रह्मचर्यका पालन करे और अपने शरीरस्थानीय ३३ देवोंको आनन्दप्रसन्न रखे, अपने मनके साथ समानभावसे कार्य करनेवाले इन देवोंको वह रखे। ब्रह्मचर्य पालनसे अपने शरीरस्थानीय ३३ देवोंको आनन्दप्रसन्न रखना और अपने मनसे उनको प्रेरणा देते ही वे अपनी अमृतशक्तिका उपयोग करके तत्तत् स्थानीय आरोग्य स्थापन करें ऐसा करना होता है। यह देवताओंसे आरोग्य स्थापन करनेका साधन है। ' देवाः संमनसः भवन्ति ' देव अपने मनके साथ सहमत होते हैं। यही अनुष्ठान है। प्रायः मनकी प्रेरणाके साथ शरीरस्थानीय देव उस कार्यको करनेके लिये दौडते हैं। ब्रह्मचारीके शरीरमें वे देव अपनी सब शक्तियोंके साथ रहते हैं और ब्रह्मचर्यहीनके शरीरमें वे निर्बल होकर क्षीणबल रहते हैं। इस कारण वे निर्बल शरीरमें वैसे कार्य करनेमें समर्थ नहीं होते जैसे वे उत्तम ब्रह्मचर्य पालन करनेवालेके शरीरमें सामर्थ्यवान् होते हैं।

यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा निधिं रक्षन्ति सर्वदा।
निधिं तं अद्य को वेद यं देवा अभिरक्षथ ॥
अथर्व. १०।७

' तैंतीस देव सर्वदा जिसके खजानेकी रक्षा करते हैं उस निधिको आज कौन भला जानता है, जिसकी देव चारों ओरसे सुरक्षा करते हैं। ' यहां इस मनुष्यके देहमें जो खजाना है उसकी ये सब देव चारों ओरसे सुरक्षा करते हैं ऐसा कहा है। सब ३३ देव मिलकर मनुष्यके जीवनरूप अमूल्य खजानेकी, हृदयरूपी खजानेकी, शरीररूपी इस खजानेकी ये तैंतीस देव सुरक्षा करते हैं। शरीरमें तैंतीस देव योंही नहीं रहते, वे यहां सुरक्षा करनेका कार्य करते रहते हैं।

जीवका यह देह सब पुरुषार्थोंका साधन है। यह अमूल्य देह है। देह न रहा तो इससे कुछ भी साधन नहीं हो सकते। सब सिद्धियोंका यह साधन है। सब प्रकारके पुरुषार्थ इस देहसे ही होते हैं। देह न रहा तो कुछ भी नहीं हो सकता। इतना इस देहका महत्त्व है। इस देहकी ये देव सुरक्षा करते हैं। इस देहमें ये ३३ देव रहते हैं और इसकी सुरक्षा कर रहे हैं। यह देह ही इन देवोंका बना है। जैसा आंख सूर्यका बना है, मुखमें अग्नि है, पांवमें पृथ्वी है, वीर्यस्थानमें जल वीर्य बनकर रहा है। चन्द्रमा मनमें है, हृदयमें आत्मा है, बाहुओंमें इन्द्र रहा है। छातीमें मरुत् है, कानमें दिशाएं रही हैं, तालूके ऊपर एक ग्रन्थी है वहांसे इन्द्र रस निकलता है वह जीवनरस है। इस तरह तैंतीस देव इस शरीरमें हैं। इनके कारण ही यह शरीर तेजस्वी और अपने कार्य करनेमें समर्थ बना है। ये देव इस शरीरमें यथास्थान रहकर इसकी सुरक्षा कर रहे हैं।

इस तरह यह शरीर देवतामय है। और यह शरीर इन देवताओंसे सुरक्षित रखा जा रहा है। यह सडता नहीं, बिगडता नहीं, सूखता नहीं इसका कारण यहां जीवात्माका और इन देवोंका निवास है, यही है।

यहां सूर्यदेव अंशरूपसे आकर आंखमें रहा है और शरीरको योग्य मार्ग बता रहा है, कहां जाना, कहां न जाना इस विषयमें इसको मार्ग बता रहा है। यह सूर्यदेव हमारी सेवा यहां रहकर कर रहा है। इसी तरह अन्यान्य देव यहां रहकर जीवात्माके सहायक हो रहे हैं। जीवात्मा सीधा यहां अनुष्ठान करके मोक्षधामको प्राप्त हो, इस लिये ये सब देव यहां इस जीवात्माके सहायक हो रहे हैं। ये जीवात्माके मित्र रहने चाहिये।

' ब्रह्म और ब्राह्माः ' ऐसे शब्दप्रयोग वेद करता है। ' जीव और देव ' के ये वाचक हैं। देखिये—

यो वै तां ब्रह्मणो वेद अमृतेन आवृतां पुरिम्।
तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च आयुः प्राणं प्रजां ददुः ॥

' जो इस (अमृतेन आवृतां) अमृतसे घिरी (तां ब्रह्मणः पुरिं वेद) उस ब्रह्मके नगरीको जानता है (तस्मै) उसको (ब्रह्म च ब्राह्माः च) ब्रह्म और ब्रह्मसे उत्पन्न हुए सब देव (आयुः) दीर्घ आयु (प्राणं) प्राणयुक्त नीरोग बलवान् शरीर और (प्रजां ददुः) औरस उत्तम प्रजाको देते हैं। '

यहां ' ब्रह्म और ब्राह्माः ' ये दो पद ' आत्मा और देव ' के वाचक हैं। जो इस अमृतसे आच्छादित शरीररूपी ब्रह्मनगरीको जानते हैं उनको परमात्मा तथा सब तैंतीस देव प्रसन्न होते हैं और अपनी परमकृपासे दीर्घायु, बलवान् और नीरोग शरीर तथा औरस प्रजा देते हैं। देवताओंका यहां यह कार्य है। यह इस शरीरमें देवताओंकी प्रसन्नतासे दीर्घायुकी प्राप्ती होती है, लंबी आयुतक शरीर नीरोग रहता है और औरस सुप्रजा होती है। शरीरमें देवोंके ये कार्य हैं। शरीरको नीरोग रखना यह कार्य इनका मुख्य है।

' देवाः संमनसो भवन्ति ' देव मनुष्यके– साधकके मनके साथ अपना मन लगाते हैं। साधक मनुष्य जैसी प्रेरणा करता है वैसा ये देव शरीरमें कार्य करते हैं। यह प्रेरणा इस तरह करनी होती है। इस विषयमें छांदोग्य उपनिषद्में ऐसा लिखा है—

जीवन एक यज्ञ है।

मनुष्यका जीवन एक यज्ञ है। मनुष्यने अपने संपूर्ण जीवनका यज्ञ करना चाहिये—

पुरुषो वाव यज्ञः, तस्य यानि चतुर्विंशति वर्षाणि, तत् प्रातःसवनं, चतुर्विंशति-अक्षरा गायत्री गायत्रं, प्रातःसवनं, तदस्य वसवो अन्वायत्ताः, प्राणा वाव वसवः, एते हीं इदं सर्वं वासयन्ति ॥ १ ॥
तं चेदस्मिन् वयसि किंचिदुपतपेत् , स ब्रूयात् प्राणा वसवः ! इदं मे प्रातःसवनं माध्यं दिनं सवनं अनुसंतनुत इति, माऽहं प्राणानां वसूनां मध्ये यज्ञो विलोप्सीय इति, उद्धैव तत एति, अगदो ह भवति ॥ २ ॥ छांदोग्य ३।१६।१-२

' मनुष्यका जीवन एक यज्ञ है, मानवी आयुष्यके जो पहिले २४ वर्ष हैं, यह इस जीवनरूप यज्ञका प्रातःसवन है, (जीवन एक दिन है उसमें प्रातःकालका यज्ञ करनेका यह कालखण्ड है) चोवीस अक्षरोंका गायत्री छन्द है। प्रातःसवनमें गायत्री छन्द होता है। इसके साथ वसुदेवताएं सम्बन्धित होती हैं। प्राण ही वसुदेवता है क्योंकि प्राण ही इस शरीरकी शक्तियोंको वसाते हैं। इस मनुष्यको इस प्रथमके इन २४ वर्षोंमें कुछ रोग हुआ, तो वह ऐसा बोले कि ' हे वसुप्राणो ! यह मेरा प्रातःसवन माध्यं दिन सवनके साथ संयुक्त करो। वसुप्राणोंका यह यज्ञ मुझसे बीचमें हीं विलुप्त न हो जावे ' ऐसा कहनेसे वह मनुष्य नीरोग होता है।

मनुष्यका संपूर्ण आयुष्य यह एक दिन है। इसका प्रातःकाल यह २४ वर्षोंका कालखण्ड है। यह गायत्री छंदका कालखण्ड है। ' गायन्तं त्रायते सा गाय-त्री '- गानेवालेका संरक्षण करती है वह गायत्री है। आत्मसंरक्षणका छन्द इस आयुष्यमें मनुष्यको लगा रहना चाहिये। आसन प्राणायामादि द्वारा मैं सुदृढ बनूंगा यही प्राणसंरक्षणका छन्द इस आयुमें मनुष्यको लगा रहना चाहिये। यह २४ वर्षोंका आयुष्य ' वसु ' नामक देवताओंके साथ संबंधित रहता है। ये वसु शारीरिक शक्तियोंको शरीरमें वसाते हैं। ये वसु आठ हैं। ये वसुदेव ये हैं—

कतमे वसव इति। अग्निश्च पृथिवी च वायुश्च अन्तरिक्षं च आदित्यश्च द्यौश्च चन्द्रमा च नक्षत्राणि च एते वसव एतेषु हीदं सर्वं वसु हितं एते हीदं सर्वं वासयन्ते, तस्माद्वसव इति। शतपथ ब्राह्मण १४।६

वसुदेव कौनसे हैं ? अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौः, चन्द्रमा तथा नक्षत्र ये आठ वसु हैं, क्योंकि इनमें यह सब विश्व ठीक तरहसे रहता है तथा ये इस सबको ठीक तरह वसाते हैं। ये आठ वसु हैं जो इस २४ वर्षोंके प्राथमिक आयुसे संबंधित हैं।

ये वसुदेव मनुष्य शरीरकी सुरक्षा करनेका कार्य २४ वर्षतक प्रथम आयुमें करते हैं। पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ से मानवी शरीरका क्रमशः नाभिके नीचला भाग, छातीका भाग तथा सिरका संबंध है।

	विश्व		मानवी शरीर
त्रिलोकी	द्यौः	द्युलोक	सिर
	नक्षत्र		मस्तिष्ककी शक्तियां
	आदित्य		नेत्र
	वायु	अन्तरिक्ष	प्राण
	अन्तरिक्ष		छाती
	चन्द्रमाः		हृदय
	अग्नि	पृथ्वी	पाचक अग्नि
	पृथिवी		नाभिसे नीचला भाग

इस तरह वसुप्राण अपने शरीरमें रहकर शरीरकी सब शक्तियोंको ठीक रखते हैं। और इस आयुमें यदि कोई रोग हुआ तो इनको पूर्वोक्त प्रकार कहनेसे मानवी शरीर रोगमुक्त होता है और वह २४ वर्षतक आनन्दप्रसन्न रहता है। यह ब्रह्मचर्यकी आयु हुई। इसके पश्चात्की आयुके विषयमें अब देखिये—

अथ यानि चतुश्चत्वारिंशद्वर्षाणि, तन्माध्यंदिनं सवनं चतुश्चत्वारिंशदक्षरा त्रिष्टुप्, त्रैष्टुभं माध्यंदिनं सवनं, तदस्य रुद्रा अन्वायत्ताः, प्राणा वाव रुद्रा, एते हीदं सर्वं रोदयन्ति ॥ ३ ॥
तं चेदेतस्मिन् वयसि किंचिदुपतपेत्, स ब्रूयात्, प्राणा रुद्राः! इदं मे माध्यंदिनं सवनं तृतीयसवनमनुसंतनुतेति, मा हं प्राणानां रुद्राणां मध्ये यज्ञो विलोप्सीय इति, उद्धैव तत एत्यगदो ह भवति ॥ ४ ॥ छांदोग्य उ. ३।१६।३-४

"अब जो इसके आगेके ४४ वर्ष हैं, वह माध्यंदिनका यज्ञ करनेका कालखण्ड है। ४४ अक्षरोंका त्रिष्टुप् छन्द है। त्रिष्टुप् छन्दका उपयोग माध्यंदिनके यज्ञमें होता है। इस विभागके साथ रुद्रदेवता संबंधित हैं। रुद्र ही प्राण हैं। ये प्राण ही इस सबको-सब शत्रुओंको रुलाते हैं। यदि इस पुरुषको इस ४४ वर्षोंकी आयुमें कुछ रोग हुआ, तो वह मनुष्य बोले कि 'हे रुद्ररूपी प्राणो! मेरा यह माध्यंदिनका कालविभाग तीसरे सवनके कालखंडके साथ जोड दो। मेरे द्वारा प्राणरूपी रुद्रदेवताओंका यह यज्ञका मध्य विभाग बीचमें ही विलुप्त न हो।" ऐसी प्रार्थना करनेसे मनुष्य रोगमुक्त होता है, नीरोग रहता है और २५ वें वर्षसे ६८ वर्षकी आयुतक जीवित रहता है। अर्थात् यह ४४ वर्षोंका उसका आयुष्यका द्वितीय विभाग आनंदप्रसन्न अवस्थामें जाता है।

यहां रुद्रदेव कौनसे हैं? इस विषयमें शतपथ ब्राह्मणमें कहा है—

कतमे रुद्रा इति। दश इमे पुरुषे प्राणाः आत्मा एकादशः। ते यदा अस्मान्मर्त्याच्छरीरादुत्क्रामन्ति, अथ रोदयन्ति, तस्मात् रुद्रा इति ॥ शतपथ ब्रा० १४।६।५

'रुद्र कौनसे देव हैं। मानवी शरीरमें जो दस प्राण हैं और आत्मा ग्यारहवां है। वे जब इस शरीरको छोडकर चले जाते हैं उस समय सबको रुला देते हैं, इस कारण ये रुद्रदेव कहलाते हैं।'

प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान ये पांच प्राण हैं। इनके स्थान ये हैं—

हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिसंस्थितः।
उदानः कण्ठदेशस्थो व्यानः सर्वशरीरगः॥

हृदयस्थानमें प्राण रहता है, नाभिके नीचे गुदद्वारमें अपान, समान प्राण नाभिस्थानमें रहता है, उदान प्राण कण्ठदेशमें रहता है और व्यान प्राण सर्व शरीरमें रहता है। इस तरह पांच प्राण शरीरमें रहकर शरीरके दोषोंको रोगबीजोंको दूर करते हैं और इस शरीरको स्वस्थ रखते हैं। इनके साथ पांच उपप्राण हैं। अथर्ववेदमें २१ प्राण हैं ऐसा कहा है—

सप्त प्राणाः सप्तापानाः सप्त व्यानाः।
योऽस्य प्रथमः प्राण ऊर्ध्वो नामायं सो अग्निः।
योऽस्य द्वितीयः प्राणः प्रौढो नामासौ स आदित्यः।
योऽस्य तृतीयः प्राणोऽभ्यूढो नामासौ स चन्द्रमाः।
योऽस्य चतुर्थः प्राणो विभूर्नामायं स पवमानः।
योऽस्य पञ्चमः प्राणो योनिर्नाम ता इमा आपः।
योऽस्य षष्ठः प्राणः प्रियो नाम त इमे पशवः।
योऽस्य सप्तमः प्राणोऽपरिमितो नाम ता इमाः प्रजाः। अथर्व. १५।१५।१-९

सात प्राण, सात अपान और सात व्यान हैं उनके नाम ऊर्ध्व, प्रौढ, अभ्यूढ, विभू, योनि, प्रिय और अपरिमित हैं, उनके क्रमशः रूप अग्नि, आदित्य, चन्द्रमाः, पवमान, आप्, पशु और प्रजा है। इसी तरह अपान और व्यानका भी वर्णन अथर्ववेदमें हैं। वह वहां देख सकते हैं।

अस्तु। इस तरह प्राणोंका वर्णन अनेक स्थानोंमें है। यह रुद्रप्राणोंका आयुष्यका भाग २५ वें वर्षसे ६८ वें वर्षतक है। और मनुष्य इस आयुमें इन प्राणोंको ठीक तरह रखे, प्राणायामादि अनुष्ठानसे उन प्राणोंको बलवान् रखनेसे मनुष्य नीरोग और आनन्दप्रसन्न रहता है। इसी तरह पूर्वोक्त रीतिसे प्राणरूप देवोंकी प्रार्थना करनेसे भी लाभ होता है। यहां अब हम ६८ वर्षकी आयुतक आ गये। इसके आगे और देखिये —

अथ यान्यष्टाचत्वारिंशद्वर्षाणि, तत् तृतीयसवनं अष्टाचत्वारिंशदक्षरा जगती, जागतं तृतीयसवनं तदस्यादित्या अन्वायत्ताः, प्राणा वाव आदित्याः, एते हीदं सर्व आददते ॥ ५ ॥ तं चेदस्मिन् वयसि किंचिदुपतपेत्, स ब्रूयात्, प्राणा आदित्या ! इदं मे तृतीयसवनं आयुरनुसंतनुत इति, मा हं प्राणानामादित्यानां मध्ये यज्ञो विलोप्सीय इति, उद्धैव तत एत्यगदो है व भवति ॥ ६ ॥ छां. उ. ३।१६।५-६

" अब जो इस मनुष्यके अन्तिम ४८ वर्ष हैं, अर्थात् ६९ से ११६ वर्षतकका आयुका तीसरा खण्ड है, वह आयुष्यरूपी दिनमें करनेका यज्ञका तीसरा भाग है, यह तीसरा सवन है। ४८ अक्षरोंका जगती छंद है। यह तृतीय सवन जगती छन्दका है। इस आयुष्यके तृतीय कालखण्डके साथ आदित्य नामक प्राणोंका संबंध है। आदित्य ही प्राण हैं क्योंकि ये प्राण सबका ग्रहण करते हैं। सबका स्वीकार करते हैं। इस आयुमें कुछ रोग हुआ तो वह मनुष्य ऐसा बोले, 'हे आदित्यसंज्ञक प्राणो ! यह मेरा आयुष्यका तीसरा कालखण्ड है, इसको पूर्ण आयुके अन्ततक ले चलो। आदित्यप्राणोंके बीचमें ही मेरा यह जीवनयज्ञ लुप्त न हो जाय।' ऐसी प्रार्थना करनेसे वह मनुष्य नीरोग होता है और पूर्ण आयुतक जीवित रहता है।"

एतद्ध स्म वै तद्विद्वान् आह महीदास ऐतरेयः। स किं म एतदुपतपसि योऽहमनेन न प्रेष्यामीति, स ह षोडशं वर्षशतं अजीवत्। प्र ह षोडशं वर्षशतं जीवति य एवं वेद ॥ ७ ॥
छांदोग्य उ. ३।१६।७

" वह यह जीवनका तत्त्व जाननेवाला विद्वान् महीदास ऐतरेय एक बार रोगी होनेपर रोगसे ऐसा बोला कि- 'हे रोग ! तू मुझे किस कारण ताप दे रहा है ? मैं इससे मरूंगा नहीं।' ऐसा निश्चयपूर्वक कहनेसे वह रोगमुक्त हुआ और ११६ वर्षकी आयुतक जीवित रहा। जो यह जीवनका तत्त्वज्ञान जानता है वह ११६ वर्षतक जीवित रहता है।"

प्रथम आयुष्यका खंड २४ वर्षकी आयुतक,

द्वितीय आयुष्यका खंड २५ से ६८ वर्षकी आयुतक ४४ वर्षोंका,

तृतीय आयुष्यका खंड ६९ से ११६ वर्षकी आयुतक ४८ वर्षोंका है।

इस तरह मानवी आयुष्य ११६ वर्षोंका है। इसमें तीन आयुष्यके खण्ड हैं। मनुष्य इस आयुष्यमें नीरोग तथा आनन्दप्रसन्न रह सकता है। यदि वह अपने प्राणोंकी उपासना ठीक तरह करता रहेगा।

अपने शरीरमें जो ३३ देवताएं हैं, उनको अपनी सदिच्छा शक्तिसे अपने आधीन रखकर, रोगादि शत्रुओंको अपने मनोबलसे दूर करनेके लिये वह उन देवताओंको प्रेरित करेगा, तो इस तरहकी मानस चिकित्सासे वह नीरोग रहेगा और पूर्ण आयुतक जीवित रहकर आनंदप्रसन्न रहेगा।

मानस चिकित्साकी पद्धति

अपना मन सत्प्रवृत्तीयोंसे परिपूर्ण करना, केवल अपना स्वार्थ अथवा दूसरेका विनाशका भाव मनमें नहीं धारण करना और अपना जीवन सर्वजनोपयोगी कार्यमें- यज्ञमें खर्च करनेका निश्चय करना और अपनी आयुके अनुसार वसु, रुद्र या आदित्य देवोंकी इस तरह प्रार्थना करना कि- " हे देवो ! मैं अपने वैदिक धर्मकी सेवा करता हूं, अपने भारत राष्ट्रमें धर्मकी जाग्रति करना चाहता हूं, अपनी मातृभूमिमें साक्षरताका प्रचार कर रहा हूं, मैं तरुणोंमें योगव्यायामोंका प्रचार कर रहा हूं, ऐसे कार्योंमें अपना जीवन मैं लगा रहा हूं, इसलिये मेरा शरीर रोगी न हो, नीरोग अवस्थामें मैं रहूं। मैं पूर्ण आयुतक जीवित रहूं, बीचमें मर जानेसे ये सार्वजनिक कार्य अधूरे रहेंगे, इसलिये हे देवताओ ! मेरे शरीरमें आपके पासकी जो अमृतशक्ति है उस दिव्यशक्तिका अर्पण करो और उससे यह रोग दूर हो, मैं नीरोग बनूं और निर्विघ्नतासे सार्वजनिक हितके कार्य करूंगा।"

इस प्रकारके विचार मनमें धारण करनेसे मनमें एक प्रकारका उच्च भाव जाग्रत होता है, शरीरके अन्दरके देवताओंके स्थानोंमें जो शक्ति रहती है वह जाग्रत होती है और रोग दूर होते हैं।

प्रत्येक मनुष्यकी शारीरिक अवस्था, रोगका स्वरूप, और उसके मनकी प्रभावी शक्ति तथा उसका आत्मविश्वास इनका संयोग होकर यह कार्य होता है। इसलिये मनको विकल्पमय बनाना योग्य नहीं है। यह कार्य होगा या नहीं होगा, कदाचित् नहीं भी होगा, ऐसा विकल्प संदेह या

अविश्वास मनमें रहा तो सिद्धि कदापि नहीं होती। अपने शरीरके अन्दर जो देवताएं हैं, उनमें मानस प्रेरणासे शक्ति-संचालन होता है और उनसे जीवनरसका स्राव होता है उससे रोग दूर होता है। यदि मानसिक निर्बलता रही या संदेह रहा, तो मानस प्रेरणा ही निर्बल होती है और जहां प्रेरणा ही निर्बल हुई वहां वैसी शक्ति उस स्थानसे प्राप्त नहीं होती जैसी होनी चाहिये।

प्रायः मनुष्योंके अन्दर आत्मविश्वास ही नहीं होता है। और इसलिये बहुतोंके मन निर्बल ही होते हैं। यह निर्बलता ईश्वरकी उपासनासे, भक्तिसे और योगसाधनसे दूर होती है। ब्रह्मचर्य पालनसे बहुत लाभ होता है, ब्रह्मचर्य जो नहीं पालन करते, वीर्य क्षीण करते हैं उनके शरीरावयवोंमें स्वभावतया निर्बलता रहती है। जो इस लाभसे साधकको वञ्चित रखती है। इससे पाठकोंको पता लग जायगा कि अपने शरीरस्थानीय देवताओंकी शक्तिसे किस तरह साधकको लाभ होता है और किस कारण नहीं होता है। पाठक यह समझें और अपना आत्मविश्वास बढानेका अभ्यास करें। अब वेदमें जो देवताएं हैं उनका थोडासा यहां विचार करेंगे।

द्यौः, सूर्यः, अश्विनौ, नक्षत्राणि, ब्रह्मणस्पतिः, केशी, विश्वावसुः, विश्वरूपः, विश्वकर्मा, विधाता, ब्रह्म।

'सूर्य' के अन्दर 'आदित्य, भगः, मित्र, सविता' आदि आगये हैं। 'ब्रह्मणस्पति' के अन्दर 'वाचस्पति, बृहस्पति' आदि आगये हैं। 'विधाता' के अन्दर 'धाता, वेधा' आदि आगये हैं, तथा 'ब्रह्म' के अन्दर 'ब्रह्मा, आत्मा, परमात्मा, स्कंभ, उच्छिष्ट' आदि आगये हैं ऐसा समझना चाहिये।

मनुष्यका सिर द्युलोक है। इसमें सूर्य नेत्रका रूप धारण करके नेत्रके स्थानमें रहा है। नासिकामें प्राण संचार कर रहा है। नासिकाका स्थान अश्विनौ देवताका भी है, 'नास-त्यौ' यह उस देवताका नाम उनका स्थान बता रहा है। मुखमें वाणीके रूपसे अग्नि रहा है। दिशाएं कानमें रहती हैं। जिह्वामें रुची ग्रहणशक्ति है, जलका यह स्थान है और जलकी रुची प्रसिद्ध है।

पृथ्वीका गंध, जलकी रुची, तेजका रूप, वायुका स्पर्श, तथा आकाशका शब्द इन पांच इंद्रियोंसे हम अनुभव लेते हैं।

देवोंका राजा इन्द्र मध्यस्थानमें, अन्तरिक्षस्थानमें इसका स्थान है, वायु, इन्द्र, विद्युत् ये देव मध्यस्थानमें हैं और अन्तरिक्षस्थान मनुष्यके शरीरमें नाभिसे ऊपर और गलेके नीचे है। तथापि इन्द्र अपने साथ अन्यान्य देवोंको लेकर मस्तकमें जाकर बैठा है। इस विषयमें ऐतरेय उपनिषद्में स्पष्ट निर्देश है—

अन्तरेण तालुके। य एष स्तन इवावलंबते।
सेन्द्रयोनिः। यत्रासौ केशान्तो वर्तते।
व्यपोह्य शीर्षकपाले ॥ २ ॥ तैत्तिरीय उ. १।६

'जहां सिर और कपालकी हड्डियां विभक्तसी दीखती हैं, जहां यह बालोंका विभाग हुआसा दीखता है, जो तालुके ऊपरका भाग है (य एष स्तन इव अवलंबते) जो एक स्तन जैसा लटकता है वह (इन्द्रयोनिः) वह इन्द्रशक्तिका उत्पत्तिस्थान है। योगी लोग इसपर ध्यान लगाकर मन केन्द्रित करते हैं। इससे इन्द्रशक्तिका रस स्रवने लगता है। इस इन्द्ररससे सब शरीर नवजीवनसे संचारित होता है। इन्द्रशक्तिका प्रत्यक्ष अनुभव इस तरह साधक ले सकते हैं।

शरीरमें इन्द्र देवताका स्थान यह निश्चित रीतिसे लिखा है। तैत्तिरीय उपनिषद्कार इसको जानते थे। आजके डाक्तर लोग इस इंद्रग्रंथीका अर्क निकालते हैं और सुईसे शरीरमें डाल देते हैं। पीट्यूटरी ग्लँडका अर्क इस कार्यके लिये बाजारमें मिलता है। मनकी धारणासे इस रसको आत्मसात करना यह ऋषियोंका मार्ग था। और सुईसे इसी ग्रंथीके रसको शरीरमें टोंचना यह यूरोपका मार्ग है। इसमें कौनसा अच्छा मार्ग है इसका विचार पाठक करें।

जैसे इस इन्द्रग्रंथीके रससे इन्द्रशक्तिका शरीरमें संचार होता है वैसी और भी अनेक ग्रंथियां शरीरमें हैं, जिनसे नाना प्रकारकी शक्तियां शरीरमें उनके रसोंके स्रावसे संचरित होती हैं। कईयोंके रस सुईसे शरीरमें डालनेके लिये तैयार किये बाजारोंमें मिलते हैं और डाक्तर लोग आजकल इनको शरीरमें टोंचते भी हैं। प्राचीन कालमें एक आसनमें बैठकर चित्तका लय उस ग्रंथीमें करते थे और उस ग्रंथीका स्राव होता था उसको शरीरमें पचाते थे। यह योगकी सिद्धि आज भी हरएकको प्राप्त हो सकती है। थोडेसे प्रयत्नसे इसकी सिद्धि मिल सकती है।

सूर्य आंखोंमें, दिशाएं कानोंमें, प्राण नाकमें, अग्निदेव

नाकमें, अग्नि मुखमें, पृथ्वी पांवोंमें, मृत्यु नाभिमें, जल रेत बनकर पुरुष इंद्रियमें, चन्द्रमा हृदयमें, मरुत् फेंफडोंमें, इन्द्र मस्तिष्कके इन्द्रग्रन्थीमें, इन्द्रकी युद्धशक्ति बाहुओंमें इस तरह ये देव शरीरमें रहते हैं। हृदयमें ब्रह्म, ब्रह्म परमात्मा, आत्मा, यक्ष, परब्रह्म इनमेंसे एकके अंश रहते हैं, क्योंकि ये सब नाम एक ही अद्वितीय सत्तत्वके हैं अतः यह एक ही तत्व है। नाम अनेक होनेसे घबरानेका कोई कारण नहीं है।

अग्नि, विद्युत् और सूर्य ये अपनी अपनी नाना शक्तियोंसे शरीरके नाना स्थानोंमें भी रहते हैं और वहांके नाना कार्य करते हैं। सूर्यचक्र नाभिके पीछे पृष्ठवंशमें है इसको अंग्रेजीमें 'सोलर प्लेक्सिस्' कहते हैं। सूर्यशक्ति यहां रहती है और पेटमें पाचनका कार्य करती है। सूर्यनमस्कारके कई आसन तथा योगके कई आसन इस सूर्यचक्रको प्रस्फुरित करनेके लिये हैं। जो ये व्यायाम करते हैं और इस व्यायाम करनेके समय अपने मनको इस सूर्यचक्रपर केन्द्रित करते हैं उनको बडा लाभ होता है, और इससे पाचनक्रियाके सब दोष दूर हो जाते हैं। इसी तरह वेदमें कहे और योगमें कहे आठ चक्रोंपर तथा उन चक्रोंमें रही शक्तियोंपर मनकी शक्ति केन्द्रित करनेसे बडे लाभ होते हैं। इस अष्टचक्र प्रकरणका अब हम यहां थोडासा, जितना सर्वसाधारणके उपयोगी हो उतना विचार करते हैं—

अष्टचक्रोंका विचार

वेदमें 'अष्टा चक्रा नवद्वारा देवानां पूः अयोध्या' (अथर्व. १०।२) 'आठ चक्रों और नौ द्वारोंवाली यह देवोंकी अयोध्या नगरी है।' ऐसा शरीरका वर्णन आया है। नौ द्वार तो हमने देखे हैं। यह देवोंकी अयोध्या नगरी है। यहां सब देव रहते हैं। देव एक हो, तीन हों, तैंतीस हों या इनसे भी अधिक सहस्रों हों। वे सब इस शरीरमें–इस अयोध्या नगरीमें रहते हैं। यह अयोध्या है अर्थात् शत्रुओंसे पराजित होनेवाली यह शरीररूपी नगरी नहीं है। यह ऐसी बनाई है कि इसपर रोगादि शत्रुओंका अमल न हो सके। पर हमने दुर्व्यवहार करके इस शरीररूपी नगरीको नाना रोगोंका शिकार बनाया है और ११६ वर्ष आनन्दसे रहनेके स्थानपर अल्प आयुमें ही इसका नाश हो जाय, ऐसी दुर्व्यवस्था हमने बनाई है। पाठक इसका विचार करें।

अब हम आठ चक्रोंका विचार करते हैं। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, सूर्य, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा, सहस्रार ये आठ चक्र हैं। कई लोग दस चक्र हैं ऐसा कहते हैं। पृष्ठवंशमें ये चक्र हैं। पृष्ठवंश छोटे छोटे हड्डियोंके टुकडोंका एक स्तंभ जैसा बना है। इसको वेदमें 'पर्वत' कहा है क्योंकि इसमें हड्डियोंके पर्व अर्थात् टुकडे अनेक होते हैं। दो हड्डियोंके टुकडोंके बीचमेंसे मज्जातन्तु निकलते हैं उनको चक्र कहते हैं। योगसाधनमें ८ या १० चक्र हैं ऐसा कहा है। पर आजके डाक्तरी विद्या जाननेवाले कहते हैं कि इतने चक्र पृष्ठवंशमें नहीं हैं। यह सत्य है कि डाक्तरोंके चीरफाडसे इतने चक्र आज पृष्ठवंशमें नहीं दीखते, पर योगीजन जो अपने अनुभवसे लिखते हैं वह भी असत्य नहीं है। वास्तविक बात यह है कि जो स्थूल दृष्टिसे अनुभवमें आते हैं उतने डाक्तर प्रेतको चीरफाड कर देखते हैं, पर योगीजन जीवित दशामें जो सूक्ष्म दृष्टिसे मानसिक अनुभवसे अनुभवते हैं वह भी सत्य ही है। मृतशरीरको डाक्तर फाडकर देखते हैं। शरीर मृत होनेके कारण जो मज्जातंतुके अंश अन्तर्हित होते हैं वे डाक्तरोंको नहीं दीख सकते। शरीर जीवित और जाग्रत रहनेकी अवस्थामें स्थूल मज्जाकेन्द्र नहीं, परंतु तन्मात्राके अति सूक्ष्म मज्जातन्तु जो अनुभवमें आते हैं वे डाक्तरोंको शरीर मरनेपर नहीं दीख सकते। शरीर मरनेपर जो कमी होती है वह यही है। इसलिये योगियोंके अनुभव विचारमें लेने योग्य है। अतः हम अब यहां आठों चक्रोंका विचार करते हैं—

मूलाधार चक्र

यः करोति सदा ध्यानं मूलाधारे विचक्षणः।
तस्य स्याद्दर्दुरी सिद्धिः भूमित्यागक्रमेण वै ॥९१॥
वपुषः कान्तिरुत्कृष्टा जठराग्निविवर्धनम्।
आरोग्यं च पटुत्वं च सर्वज्ञत्वं च जायते ॥९२॥

'जो बुद्धिमान पुरुष इस मूलाधार चक्रमें ध्यान करता है, उसको दर्दुरवृत्तीकी सिद्धि होती है और क्रमसे भूमिको छोडकर उसका आसन ऊपर उठने लगता है। शरीरकी कान्ती उत्तम होती है, जठराग्निका संवर्धन होता है, आरोग्य बढता है और चपलता बढती है और ज्ञानमें वृद्धि होती है।'

मूलाधार चक्र गुदाके पास पृष्ठवंशमें रहता है। इस मूलाधारको अंग्रेजीमें 'पेल्वीक प्लेक्सिस्' कहते हैं। गुदासे

दो अंगुल ऊपर यह रहता है। यह शरीरका आधारचक्र है। शरीरकी आधारशक्तियाँ इससे प्रकट होती हैं। नीचे जानेवाले अपानको यह ठीक कार्य करनेके लिये प्रवृत्त करता है।

साधक पद्मासनमें बैठे, पीठकी रीढ समसूत्रमें रखे, मन इस मूलाधार चक्रमें स्थिर करे और प्राणायाम करे। मनकी पूर्ण शक्ति इस चक्रपर लगने लगी तो इस चक्रसे शक्ति बाहर आने लगती है। इससे शरीरका तेज बढता है, पाचनशक्ति बढती है, शरीरका आरोग्य बढता है, शरीरकी चपलता बढती है और ज्ञानकी धारणाशक्ति विशेष होने लगती है। इस अनुष्ठानको दो तीन मास तथा प्रतिदिन घण्टाभर करनेसे ये अनुभव होने लगते हैं। इससे पूर्व यम, नियम, आसन, प्राणायामका अभ्यास तथा मन एकाग्र करनेका अच्छा अभ्यास होना आवश्यक है।

स्वाधिष्ठान चक्र

द्वितीयं तु सरोजं च लिंगमूले व्यवस्थितम्।
स्वाधिष्ठानाभिघ तत्तु पंकजं शोणरूपकम ॥ १०४ ॥
यो ध्यायति सदा दिव्यं स्वाधिष्ठानारविंदकम्।
सर्वरोगविनिर्मुक्तो लोके चरति निर्भयः ॥ १०६ ॥
वायुः संचरते देहे रसवृद्धिर्भवेत् ध्रुवम् ॥ १०८ ॥

शिवसंहिता पटल ५

'दूसरा चक्र लिंगमूलमें है। इसका नाम स्वाधिष्ठान है। यह रक्तवर्ण है। जो इस चक्रमें अपना ध्यान लगाता है, वह सब रोगोंसे मुक्त होकर निर्भय होकर विचरता है। इसके देहमें प्राणवायुका योग्य रीतिसे संचार होता है और शरीरमें शरीरको नीरोग रखनेवाले अनेक रसोंकी वृद्धि होती है।'

इस अनुष्ठानके लिये पद्मासन अच्छा है। इस आसनपर स्थिर बैठना, पीठकी रीढ समसूत्रमें रखना, प्राणायाम करना और अपना मन इस स्वाधिष्ठान चक्रमें सुस्थिर करना। ठीक लिंगमूलमें पीछे रीढमें यह चक्र है। लिंगमूलसे सीधा पृष्ठवंशमें जानेसे इस चक्रका स्थान मनमें ज्ञात हो सकता है। इसका नाम 'स्वाधिष्ठान' है, स्वकीय अधिष्ठान अर्थात् स्वशरीरको नीरोग रखकर, शरीरपोषक रसोंकी वृद्धि करनेका इसका कार्य है। पंचप्राणोंको बलवान् बनाना और शरीरपोषक रसोंको यथायोग्य रीतिसे शरीरमें संचारित करनेवाला यह चक्र है। जितना मन इस चक्रमें स्थिर रहेगा उतना कार्य इससे होगा।

मणिपूरक चक्र

तृतीयं पंकजं नाभौ मणिपूरकसंज्ञितम्।
रुद्राख्यो यत्र सिद्धोऽस्ति सर्वमंगलदायकः ॥११०
तस्मिन् ध्यानं सदा योगी करोति मणिपूरके।
तस्य पातालसिद्धिः स्यान्निरंतरसुखावहा।
ईप्सितं च भवेल्लोके दुःखरोगविनाशनम् ॥११२

शिवसंहिता पटल ५

'तीसरा मणिपूरक चक्र है। ठीक नाभिस्थानके पीछे पृष्ठवंशमें यह चक्र है। रुद्रका यह स्थान है जो सर्व मंगल करता है। इस चक्रमें ध्यान करनेसे निरंतर सुख देनेवाली पातालसिद्धि होती है। इच्छाके अनुसार दुःखों और रोगोंका नाश होता है।'

दुःखोंका अनुभव इसको नहीं होता। दुःखोंको अपने अनुभवमें न आने देनेकी शक्ति साधकमें इस मानसिक ध्यानसे आती है। इसको रोग नहीं होते और यह साधक आनन्दमय अवस्थामें सदा प्रसन्न रहता है। सुखासन या पद्मासन इस अभ्यासके लिये योग्य है।

अनाहत चक्र

हृदयेऽनाहतं नाम चतुर्थं पङ्कजं भवेत्।
अतिशोणं वायुबीजं प्रसादस्थानमीरितम् ॥११५
पद्मस्थं तत् परं तेजो बाणलिंगं प्रकीर्तितम्।
तस्य स्मरणमात्रेण दृष्टादृष्टफलं भवेत् ॥११६॥

शिवसंहिता पटल ५

'अनाहत चक्र हृदयस्थानमें है। यह रक्तवर्ण और वायुबीज है। प्रसन्नताका यह स्थान है। इसमें परम तेज है। इसपर ध्यान करनेसे प्रकाशदर्शन होता है। दृष्ट अदृष्ट अनेक फल इसपर मन स्थिर करनेसे होते हैं।'

अनाहत चक्रको 'कार्डियाक प्लेक्सिस्' अंग्रेजीमें कहते हैं। हृदयमें धुकधुक होता रहता है। ठीक यह स्थान इसका ध्यान करनेके लिये है। इससे हृदयकी शक्ति बढती है। यहीं आत्माका स्थान है। आत्मामें अनन्त शक्तियाँ रहती हैं वे सब इस ध्यानसे विकसित होती हैं। आजकल हृदय

विकारसे अधिक मृत्यु होने लगे हैं। यदि आसनप्राणायाम, ध्यानधारणा करनेवाले साधक इस चक्रपर ध्यान करेंगे तो उनका हृदय बलवान् होगा और हृदयकी सब कमजोरी दूर होगी।

विशुद्धि चक्र

कण्ठस्थानस्थितं पद्मं विशुद्धं नाम पंचमम् ॥१२१॥
ध्यानं करोति यो नित्यं स योगीश्वर पण्डितः।
इह स्थाने स्थितो योगी सदा क्रोधवशो भवेत् १२४
इह स्थाने मनो यस्य दैवात् याति लयं यदा।
तदा बाह्यं परित्यज्य स्वान्तरे रमते ध्रुवम् ॥१२७॥

शिवसंहिता पटल ५

'कण्ठस्थानमें विशुद्धि चक्र है। इस चक्रपर ध्यान करनेसे साधक विशेष ज्ञानी होता है और क्रोधको वशमें करता है। इस चक्रपर ध्यान करनेवाला अपने अन्तःकरणमें आनन्दप्रसन्न रहता है।' इसकी बुद्धि अति सूक्ष्म होती है।

इसको अंग्रेजीमें 'करोटिड प्लेक्सिस्' कहते हैं। वह मनोवृत्तियोंको अपने आधीन कर सकता है। मनोवशीकरणका बल इसपर ध्यान करनेसे प्राप्त होता है।

आज्ञा चक्र

आज्ञाचक्रं भ्रुवोर्मध्ये हक्षोपेतं द्विपत्रकम्।
शरच्चन्द्रनिभं तत्राक्षरबीजं विजृंभितम् ॥ १३० ॥
चिन्तयित्वा परां सिद्धिं लभते नात्रसंशयः।

शिवसंहिता पटल ५

'दोनों भौहोंके बीचमें आज्ञा चक्र है। शरदृतुके चन्द्रमाके समान इसका तेज है। इसपर ध्यान करनेसे श्रेष्ठ सिद्धि प्राप्त होती है।'

सहस्रार कमल

अत ऊर्ध्वं तालुमूले सहस्रारं सरोरुहम्।
अस्ति यत्र सुषुम्नाया मूलं सविवरं स्थितम् ॥
तालुमूले सुषुम्ना सा अधोवक्त्रा प्रवर्तते

शिवसंहिता पटल ५

'इससे ऊपर मस्तिष्कमें सहस्रार कमल है। वहां सुषुम्ना नाडीका मुख है। तालुमूलमें सुषुम्ना नीचे मुख करके रहती है।' इसमें ध्यान करनेसे आत्माकी शक्तिसे सब शरीर चल रहा है, यह ज्ञान होता है। इसका प्रभाव बड़ा भारी है। योगसे साध्य होनेवाले सब लाभ यहां मन लगाकर ध्यान करनेसे होते हैं। इनको अंग्रेजीमें 'मेरेब्रल प्लेक्सिस्' कहते हैं और इसका महत्त्व सब जानते हैं।

सूर्य चक्र

सूर्य चक्र नाभिके पास पीठकी रीढमें है। सूर्यनमस्कार अनेक आसनोंके योगसे सिद्ध होते हैं। उनसे इसमें स्फुरण आता है। 'सोलर प्लेक्सिस्' इसको अंग्रेजीमें कहते हैं। इसपर मनःसंयम तथा व्यायाम करनेसे शरीर बलवान्, हृष्टपुष्ट तथा तेजस्वी और नीरोग होता है।

इन आठ चक्रोंके विषयमें अतिसंक्षेपसे यह विवरण है। इनमें अनेक दैवी शक्तियां हैं। इनपर मनःसंयम तथा आसन प्राणायाम करनेसे अनेक बल प्राप्त होते हैं।

मूलाधार चक्रसे सहस्रार चक्रतक मेरुदण्डमें अनेक देवताओंकी दैवी शक्तियां हैं। पंद्रह सोलह देवताओंके स्थानोंका ठीक ठीक पता इस समयतक लगा है। अन्य देवताएं कौनसी और कहां रहती हैं इनकी खोज वेदाभ्यासी तथा योगाभ्यासी करेंगे तो उनसे जनताके आरोग्यका साधन उत्तम रीतिसे प्राप्त हो सकता है। आशा है वेदाभ्यासी संशोधक इसकी खोज करके अपनी खोज प्रकाशित करेंगे।

'कैन्सर रोग' आजकल बढ रहा है, जहां कैन्सर रोग होनेका संभव है, वहांके चक्रपर मनःसंयम किया जाय, परमेश्वर भक्तिसे मन सदा आनन्दप्रसन्न रखा जाय, तो कैन्सर रोग ही नहीं होगा, और हुआ तो इस अनुष्ठानसे दूर भी हो सकेगा। मन आनन्दित रखनेसे यह रोग होता नहीं ऐसा बडे डाक्टरोंका मत है। परमेश्वरका ध्यान ही परमानन्दका ध्यान है।

वेदके व्याख्यान

वेदोंमें नाना प्रकारके विषय हैं, उनको प्रकट करनेके लिये एक एक व्याख्यान दिया जा रहा है। ऐसे व्याख्यान २०० से अधिक होंगे और इनमें वेदोंके नाना विषयोंका स्पष्ट बोध हो जायगा।

मानवी व्यवहारके दिव्य संदेश वेद दे रहा है, उनको लेनेके लिये मनुष्योंको तैयार रहना चाहिये। वेदके उपदेश आचरणमें लानेसे ही मानवोंका कल्याण होना संभव है। इसलिये ये व्याख्यान हैं। इस समय तक ये व्याख्यान प्रकट हुए हैं।

१ मधुच्छन्दा ऋषिका अग्निमें आदर्श पुरुषका दर्शन।
२ वैदिक अर्थव्यवस्था और स्वामित्वका सिद्धान्त।
३ अपना स्वराज्य।
४ श्रेष्ठतम कर्म करनेकी शक्ति और सौ वर्षोंकी पूर्ण दीर्घायु।
५ व्यक्तिवाद और समाजवाद।
६ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।
७ वैयक्तिक जीवन और राष्ट्रीय उन्नति।
८ सप्त व्याहृतियाँ।
९ वैदिक राष्ट्रगीत।
१० वैदिक राष्ट्रशासन।
११ वेदोंका अध्ययन और अध्यापन।
१२ वेदका श्रीमद्भागवतमें दर्शन।
१३ प्रजापति संस्थाद्वारा राज्यशासन।
१४ त्रैत, द्वैत, अद्वैत और एकत्वके सिद्धान्त।
१५ क्या यह संपूर्ण विश्व मिथ्या है?
१६ ऋषियोंने वेदोंका संरक्षण किस तरह किया?
१७ वेदके संरक्षण और प्रचारके लिये आपने क्या किया है?
१८ देवत्व प्राप्त करनेका अनुष्ठान।
१९ जनताका हित करनेका कर्तव्य।
२० मानवके दिव्य देहकी सार्थकता।
२१ ऋषियोंके तपसे राष्ट्रका निर्माण।
२२ मानवके अन्दरकी श्रेष्ठ शक्ति।
२३ वेदमें दर्शाये विविध प्रकारके राज्यशासन।
२४ ऋषियोंके राज्यशासनका आदर्श।
२५ वैदिक समयकी राज्यशासन व्यवस्था।
२६ रक्षकोंके राक्षस।
२७ अपना मन शिवसंकल्प करनेवाला हो।
२८ मनका प्रचण्ड वेग।
२९ वेदकी दैवत संहिता और वैदिक सुभाषितोंका विषयवार संग्रह।
३० वैदिक समयकी सेनाव्यवस्था।
३१ वैदिक समयके सैन्यकी शिक्षा और रचना।
३२ वैदिक देवताओंकी व्यवस्था।
३३ वेदमें नगरोंकी और वनोंकी संरक्षण व्यवस्था।
३४ अपने शरीरमें देवताओंका निवास।

आगे व्याख्यान प्रकाशित होते जायंगे। प्रत्येक व्याख्यानका मूल्य ।=) छः आने रहेगा। प्रत्येकका डा. व्य. =) दो आना रहेगा। दस व्याख्यानोंका एक पुस्तक सजिल्द लेना हो तो उस सजिल्द पुस्तकका मूल्य ५) होगा और डा. व्य. १॥) होगा।

मंत्री — स्वाध्यायमण्डल, पोस्ट- 'स्वाध्यायमण्डल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]

मुद्रक और प्रकाशक- व. श्री. सातवलेकर, भारत-मुद्रणालय, पो- 'स्वाध्याय मण्डल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]



वैदिक व्याख्यान माला — ३५ वाँ व्याख्यान

[अश्विनौ देवताके मन्त्रोंका निरीक्षण]

वैदिक राज्यशासनमें आरोग्यमन्त्रीके कार्य और व्यवहार

[१]

[यह व्याख्यान नागपुर विश्वविद्यालयमें ता. २९-१२-५७ के दिन हुआ था]

लेखक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

साहित्य-वाचस्पति, वेदाचार्य, गीतालङ्कार

अध्यक्ष- स्वाध्याय मण्डल

स्वाध्यायमण्डल, पारडी

मूल्य छः आने

ॐ

[अश्विनौ देवताके मन्त्रोंका निरीक्षण]

वैदिक राज्यशासनमें आरोग्यमन्त्रीके कार्य और व्यवहार

वेदमें देवताओंके राज्यका वर्णन है। सर्वोपरि ब्रह्म और प्रकृति है। ब्रह्म निष्क्रिय है और सब कुछ प्रकृति करती है। यह लोकशाही राज्य व्यवस्थाका आदर्श है। इसीको वैदिक भाषामें 'जानराज्य' कहते हैं। सब जनोंद्वारा जिसका राज्यशासन होता रहता है, वही जानराज्य है। इसमें 'ब्रह्म' सबके ऊपर है पर वह कुछ भी करता नहीं, 'प्रकृति' सब करती है। प्रकृतिका अर्थ 'प्रजाजन' है। ब्रह्म सबसे श्रेष्ठ सबका आधार, सबका आश्रयस्थान है, पर वह कुछ करता नहीं। आजके लोकराज्यके राष्ट्रपति जैसे रहते हैं, वे सबके ऊपर हैं, पर उनको कुछ भी करनेका अधिकार नहीं, वैसा ही यहां 'ब्रह्म' है। प्रकृति अर्थात् प्रजा सब करती है, उसी तरह लोकराज्यमें प्रजानियुक्त मंत्री ही सब करते हैं। यह ब्रह्म और प्रकृतिके वर्णनसे बताया है। यह पूर्ण लोकराज्यका ही उत्तम स्वरूप है।

देवताएं विश्वराज्यके मंत्री

बृहस्पति, ब्रह्मणस्पति, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि आदि देव, जो प्रकृतिसे उत्पन्न हुए हैं वे इस जगत्का सब व्यवहार करते हैं। येही विश्वराज्यके विविध मंत्री हैं—

वेदमंत्रोंमें प्रायः विश्वरूपी विश्वराज्यका तथा विश्वराज्यके संचालक शक्तियोंका वर्णन है। विश्वराज्यकी संचालक शक्तियां ही इन्द्र, वायु, सूर्य, अग्नि आदि हैं। ये शक्तियां जैसी विश्वमें हैं वैसी ही मनुष्यमें भी हैं। इसलिये कहा है कि—

ये पुरुषे ब्रह्म विदुः
ते विदुः परमेष्ठिनम्॥ अथर्व. १०।७।१७

'जो मनुष्य शरीरमें ब्रह्म जानते हैं वे परमेष्ठीको जानते हैं।' वेदका गूढ आशय जाननेकी यह चावी है। विश्व इतना बडा है, उसका आकलन करना कठिन है। इसलिये पिण्ड शरीरमें वही व्यवस्था है, उसको जाननेसे विश्वव्यवस्थाका ज्ञान हो सकता है।

पिण्ड ब्रह्माण्डकी व्यवस्था

ब्रह्माण्ड	पिण्ड	पिण्ड समूह (राष्ट्र)
विश्व	शरीर	समूह शरीर, समाज
ब्रह्म (परमात्मा)	आत्मा	संघात्मा
शिव	जीव	जीवसंघ
देवगण	इंद्रियगण	शासकवर्ग

यहां विदित हो सकता है कि जो विश्वमें है वही जीवके शरीरमें है और जो जीवके शरीरमें है वही समष्टि शरीर अर्थात् व्यावहारिक अर्थमें राष्ट्रमें है। यह ठीक तरह समझमें आगया, तो वेदका रहस्य समझमें आगया ऐसा समझना योग्य है।

ब्रह्म, परब्रह्म, आत्मा, परमात्मा, ईश, ईश्वर आदि नाम एक विशाल विश्वव्यापक शक्तिके हैं। वैसा ही जीवात्मा शरीरमें है। परमात्मा 'दावानल' है तो जीवात्मा 'चिनगारी' है। परमात्मा विश्वमें है तो जीवात्मा शरीरमें है। परमात्माको जानना कठिन है, पर जीवात्माको जानना उससे सुगम है, इसलिये कहा है कि—

दावानल और चिनगारी

'जो पुरुषमें- मनुष्य शरीरमें ब्रह्म देखते हैं, अर्थात् जीवात्माको जानते हैं वे परमात्मा, परब्रह्मको जानते हैं।

जो चिनगारीको जानते हैं वे दावानलको जानते हैं।' विश्वको जाननेके लिये शरीरको जानना चाहिये। विश्वकी सब शक्तियां शरीरमें हैं। विश्वमें पूर्णरूपसे जो शक्तियां हैं वेही शक्तियां अंशरूपसे शरीरमें हैं। इसलिये कहा है कि 'पिण्डका यथार्थ ज्ञान होनेसे ब्रह्माण्डका ज्ञान होता है।'

विश्वमें और व्यक्तिमें पंचभूत

यह तत्व समझनेके लिये संपूर्ण विश्व पंचभूतोंका बना है और यह मानव शरीर भी पंचभूतोंका ही बना है। इसलिये कहा है मानव शरीरमें पंचभूतोंको जाननेसे विश्वके पंचभूत जाने जा सकते हैं।

यही दूसरे शब्दोंमें ऐसा कहा जा सकता है कि यह विश्व ३३ देवताओंका बना है, वैसा ही यह शरीर भी ३३ देवताओंका बना है। जो विश्वमें है वही शरीरमें भी है। विश्वमें जैसी ३३ देवताएं हैं वैसी शरीरमें भी ३३ देवताएं अंशरूपसे हैं। अतः शरीरमें ३३ देवताओंका ज्ञान हुआ तो विश्वके ३३ देवताओंका ज्ञान हो सकता है।

पुरुषमें ब्रह्म

ये पुरुषे ब्रह्म विदुः
ते विदुः परमेष्ठिनम् ॥ अथर्व १०।७।१७

'जो पुरुषमें ब्रह्म जानते हैं वे परमेष्ठीको जानते हैं' इसका भाव यह है।' इस तरह व्यक्ति और विश्वमें समानता है यही हमने देखा। एक व्यक्तिमें जो तत्व हैं वे ही व्यक्ति समूहमें होते हैं, इस कथनका विरोध कोई कर नहीं सकता। देखिये व्यक्तिके मस्तकमें ज्ञान, बाहुओंमें बल और शौर्य, मध्यमें वीर्य और पांवोंमें गति है। येही गुण समाजमें भी होते हैं। समाजमें ज्ञानी, शूर, धनी और कर्मचारी रहते हैं। येही समाज शरीरके चार अवयव हैं जिनको ज्ञानी, शूर, व्यापारी और कर्मचारी कहते हैं। व्यक्तिमें जो गुण हैं वे ही समाजमें गुणी करके प्रसिद्ध होते हैं। इस रीतिसे व्यक्ति, समाज या राष्ट्र और विश्वका संबंध है यही जानना चाहिये। वेदका रहस्य अर्थ जाननेके लिये यह संबंध ठीक तरह जानना अत्यंत आवश्यक है, अन्यथा वेदका रहस्य अर्थ समझमें नहीं आ सकता। इसकी सारिणी यह है—

विश्व--राष्ट्र--व्यक्तिका सम्बन्ध

विश्वमें देवता	राष्ट्रमें शासक	व्यक्तिमें इंद्रिय
विश्व	राष्ट्र	शरीर
ब्रह्म	राष्ट्रपति	जीव-आत्मा
प्रकृति	प्रजा	शरीर
इन्द्र	सेनापति	मन
मरुत्	सैनिक	इंद्रियगण
वायु	रक्षक	प्राण
सूर्य	दर्शनकार	नेत्र
चन्द्र	मननशील	मन
अग्नि	वक्ता	वाणी

इस रीतिसे विश्वकी देवताएं व्यक्तिमें किस रूपमें हैं और राष्ट्रमें किस रूपमें रहती हैं यह जाना जा सकता है। इस तरह विश्वशक्ति, राष्ट्रशक्ति और व्यक्तिशक्ति परस्पर सम्बन्धमें किस रीतिसे रहती है, यह जाननेसे सब वेदमंत्रोंका रहस्य स्पष्ट हो जाता है। पर इसका निश्चय तबतक नहीं होता, जबतक वेदमंत्र समझमें आना अशक्य है। इसलिये यह परस्पर सम्बन्ध जानना अत्यंत आवश्यक है।

शरीरमें इन्द्र शक्ति

शरीरमें इन्द्रशक्ति उत्पन्न होती है इस विषयमें उपनिषद्का यह प्रमाण है—

अन्तरेण तालुके। य एष स्तन इव अवलंबते।
सा इन्द्र योनिः। तै. उ. १।६।२

'तालुपर जो स्तन जैसा लटकता है, यह इन्द्र शक्ति उत्पन्न करनेका स्थान है।'

शरीरमें इन्द्र शक्ति तालूके ऊपर रही इन्द्र ग्रंथीसे उत्पन्न होती है। इसी तरह शरीरमें ३३ देवताओंके स्थान हैं वहांसे ३३ शक्तियां मनुष्यको प्राप्त होती हैं और उनसे यह शरीर कार्यक्षम रहता है। इन केन्द्रोंपर मनका संयम करनेसे वे शक्तियां प्राप्त होती हैं। शरीरमें जो प्रकृति है उसमें ये शक्तियां हैं। इनसे शरीर व्यापार ठीक चलता है।

राष्ट्रमें जो प्रजारूप प्रकृति है उसमेंसे इसी तरह शासक वर्ग उत्पन्न होता है। ये शक्तिकेन्द्र प्रजाकी शक्ति लेकर ऊपर आते हैं और राष्ट्रका शासन करते हैं।

इस तरह विश्वमें, राष्ट्रमें और व्यक्तिमें समान रूपमें कार्य हो रहा है। प्रायः वेदमंत्रोंमें विश्वशक्तियोंका वर्णन है,

इसको देखकर व्यक्तिके शरीरके नियम तथा राष्ट्रसंचालनके बोध प्राप्त करने चाहिये। वैदिक ऋषि इस दृष्टिसे विश्वकी ओर, राष्ट्रकी ओर और व्यक्तिकी ओर देखते थे। उसी दृष्टीसे हमने वेदमंत्रोंको देखना चाहिये।

अश्विनौ देवताका विचार

इन्द्र मरुत् सूर्य वायु चन्द्र अग्नि आदि ३३ मुख्य देव हैं। उनमें 'अश्विनौ' भी एक देवता है। यह दो हैं और दोनों मिलकर साथ-साथ रहते हैं और दोनों मिलकर कार्य करते हैं। रोग दूर करना, आरोग्य बढाना, दीर्घायु देना आदि कार्य इनके हैं।

(१) देवानां भिषजौ (वा. य. २१।५३)
(२) दैव्यौ भिषजौ, (ऋ. ८।१८।८)
(३) भिषजौ (ऋ. १।११६।१६)

ये इनके नाम हैं, ये नाम इनके वैद्य होनेकी सूचना देते हैं। यदि ये वैद्य हैं तो इनको विश्वराज्यमें वैद्यकीय कार्य मिलना चाहिये। इसीलिये हमने इनको 'आरोग्यमंत्री' कहा है। इनका मंत्रीमंडल इस प्रकार है—

परब्रह्म	राष्ट्रपति
प्रकृति	प्रजासमिति, राष्ट्रसंसद्
इन्द्र, मरुत्	युद्ध मंत्री और उनके सैनिक
ब्रह्मणस्पति	शिक्षा मंत्री
बृहस्पति	,, ,, (सहायक)
अश्विनौ	आरोग्यमंत्री (शस्त्रकर्म और चिकित्सा करनेवाले)
अग्नि	प्रचार मंत्री
वायु	वाहन मंत्री,
यम	धर्म मंत्री
पूषा	पोषण मंत्री, अन्न मंत्री
अर्यमा	न्याय मंत्री

इस तरह यह मंत्री मंडल ३३ देवोंका है। इनमें २ मुख्य हैं और ३० गौण हैं। इनमें भी १०।१० के तीन गण हैं। आज इसमें केवल अश्विनौका थोडासा विचार करना है। इसका शीर्षक 'वैदिक समयके आरोग्य मंत्रीका कार्य और व्यवहार' है। इसीका विचार आज करेंगे।

अश्विनौकी विद्वत्ताका विचार

'विद्वांसौ (ऋ. १।११६।११), विप्रौ' (ऋ. ८।२६।९), ये पद इनकी विद्वत्ता दर्शाते हैं। 'वि-चेतसौ (ऋ. ५।७४।९)' यह विशेषण इनका चित्त विशेष प्रौढ है वह भाव बताता है। 'कवी (ऋ. १।११७।२३)' यह इनका नाम ये 'क्रान्तदर्शी' हैं यह भाव बता रहा है। क्रान्तदर्शीका भाव दूरका देखनेवाला। वैद्यके-लिये इस गुणकी आवश्यकता है। रोगी आया तो उस रोगका भविष्यमें कौनसा दुष्परिणाम कैसा होगा, उसका निवारण किस उपचार द्वारा करना चाहिये, यह सब उसको मालूम होना चाहिये। अश्विनौ ऐसे थे।

'धिष्ण्यौ (ऋ.१।३।२), धियं जिन्वौ (ऋ. १।१८२।१) प्रियमेधौ (ऋ. ८।८।१८), ' ये उनके नाम इनकी बुद्धि-मत्ता दर्शा रहे हैं। ये बुद्धिमान् थे, बुद्धि इनको प्रिय थी, ये बुद्धिसे सब कार्य करते थे। यह भाव इनमें हैं।

'गंभीर-चेतसौ' (ऋ. ८।८।२) इनका चित्त बडा गंभीर रहता था। रोगीकी अवस्था जानकर गंभीरतासे ये कार्य करते थे। रोगीके मनको सुदृढ रखना इस गंभी-रताका प्रयोजन था। 'न-वेदसौ' (ऋ. १।३४।१) जिनसे किसी दूसरेको अधिक ज्ञान नहीं, अर्थात् येही अधिक ज्ञानसे युक्त हैं। रोगचिकित्सा संबंधी सबसे अधिक ज्ञान अपने पास रखनेवाले ये उत्तम ज्ञानी वैद्य तथा शस्त्रकर्मकर्ता थे।

'प्रचेतसौ' (ऋ. ८।१०।४) विशेष बुद्धिमत्ताका कार्य करनेवाले 'प्रथमौ' (ऋ. २।२९।३) चिकित्सा तथा शस्त्रकर्ममें जो प्रथम श्रेणीमें रहते हैं, 'मायाविनौ' (ऋ. १०।२४।४) कुशलतासे अपना कार्य करनेवाले, मायाका अर्थ कौशल्य है।

'वाजयन्तौ' (ऋ. ८।३५।१५) बलवान्, अन्नवान् 'वाजसातमौ' (ऋ. ८।५।५) अन्न योग्य रीतिसे रोगीको देनेवाले, जिससे रोगी नीरोगी बने और बलवान् भी बने। औषध प्रयोग करनेकी अपेक्षा अन्न प्रयोगसे ही रोगदूर करनेवाले ये थे।

'विपन्यू' (ऋ. ८।८।१९) उक्त कारणसे चारों ओर प्रशंसा जिनकी होती थी। 'वसू' (ऋ. १।१५८।१) 'वसुविदौ' (ऋ. १।४६।२) जिससे मानवोंका निवास उत्तम रीतिसे होता है उस वसुविद्यामें जो प्रवीण हैं। वैद्योंको यह ज्ञान चाहिये। निवास उत्तम रीतिसे हो ऐसे साधन तथा ज्ञान जिनके पास हैं।

*

'रिशादसौ' (ऋ. ८।८।१७) रिश नाम रोग दोष आदिका है इसको खानेवाले अर्थात् नष्ट करनेवाले वैद्य होते है। 'रक्षो-हणौ' (ऋ. ७।७३।४) राक्षसोंका नाश करनेवाले, रोगोत्पादक कृमियोंको 'रक्षः' कहते हैं। उनका नाश ये करते हैं और रोगियोंको राक्षसोंके आक्रमणसे बचाकर नीरोग स्वस्थ तथा आरोग्यपूर्ण बनाते हैं।

'प्रत्नौ' (ऋ. ६।६२।५) पुरातन कालसे प्रसिद्ध, 'निचेतारौ' (ऋ. १।१८४।२) औषधोंका संग्रह करनेवाले, चिकित्साके उपाय सदा अपने पास रखनेवाले, भरपूर औषधोंका संग्रह अपने पास रखनेवाले।

'विश्व-वेदसौ' (ऋ. १।४७।४) सब ज्ञान अपने पास रखनेवाले, सब उपाय तथा साधन अपने पास रखनेवाले, चिकित्साके सब साधन अपने पास तैयार रखनेवाले। 'वर्धनौ' (ऋ. ८।८।५) बढानेवाले, चिकित्सा कर्मकी कुशलता बढानेवाले 'रुद्रौ' (रुद्-द्रौ ऋ. १।१५८।१) रोदनको दूर करनेवाले, रोगी तथा उसके संबंधी रोते हैं, पर रोगी इनके पास गया तो रोगमुक्त होता है, इसलिये रोनेका कोई कारण शेष नहीं रहता, 'रुद्रौ' का अर्थ 'भयानक' ऐसा भी है। शस्त्र क्रिया करनेमें ये भयानक होते हैं, शरीरको काट-कूटकर रथके दुरुस्त करनेके समान ये ठीक करते हैं उस समय इनकी भयानकता प्रकट होती है।

'वल्गू' (ऋ. ६।६२।५) ये सुन्दर सुकुमार हैं। वैद्य दीखनेमें सुन्दर होने चाहिये। इनकी सुन्दरता देखकर रोगी आनंदित हो जांय। यह रोगीका रोग दूर करनेमें सहायक होनेवाला गुण है। वैद्य कुरूप होनेसे सुन्दर रहा तो चिकित्सा करनेमें वह सुन्दरता सहायक होती है।

'पुरु-मन्द्रौ' (ऋ. ८।५।४) बहुतोंको हर्षित करनेवाले, रोग दूर करनेके कारण जो नीरोग होते हैं वे इनसे आनंदित होते हैं। इस कारण 'पुरु-प्रियौ' (ऋ. ८।५।४) अनेकोंको ये प्रिय होते हैं। ऐसे वैद्य प्रिय होना स्वाभाविक ही है। 'प्रेष्ठौ' (ऋ. १।१८३।१) ये प्रिय रहते हैं।

'पुरु-शाक-तमौ' (ऋ. ६।६२।५) अनेक कार्य करनेकी शक्ति रखनेवाले ये हैं। चिकित्साके अनेक कार्य ये उत्तम रीतिसे कर सकते हैं। 'पुरु-वसू' (ऋ. १।४७।१०) अनेक निवासक शक्तियां इनके पास रहती हैं। वसुका अर्थ धन, तथा निवास करानेकी शक्ति, जो इनके पास विशेष है।

'प्रातर्यावाणौ' (ऋ. २।३९।२) 'प्रातर्युजौ' (ऋ. १।२२।१) प्रातःकाल रोगीके पास जानेवाले, सबेरे ही रोगीकी परीक्षा करनेके लिये जुटनेवाले, प्रातःकालसे अपना कार्य करनेवाले।

'रत्नानि बिभ्रतौ' (ऋ. ५।७५।३) रत्नोंका धारण करनेवाले। रत्नोंके भस्मोंसे तथा रत्नोंके रंगोंसे चिकित्सा करनेवाले, अपनेपास रत्नोंको रखनेवाले।

'विद्युतं तृपाणौ' (ऋ. ७।६९।६) बिजलीकी जिनको तृषा है, प्यास है। चिकित्सा करनेके लिये जो विद्युतका बर्ताव करते हैं, ऐसे ये अश्विनौ वैद्य हैं।

अपने अश्विनौ देवोंकी विद्या किस तरहकी थी, उनकी अपने व्यवसायमें कितनी पूर्णता थी यह इन गुणोंके मननसे ज्ञात हो सकता है। हमारे वैदिक समयके आरोग्य मंत्रीके ये गुण हैं। आज भी इन गुणोंसे युक्त पुरुष आरोग्य मंत्रीके स्थानपर आरूढ हो सकते हैं। वैदिक समयकी आरोग्य मंत्रीकी योग्यता इससे विदित हो सकती है।

आरोग्यमंत्रीका संरक्षण सामर्थ्य

वैदिक समयके आरोग्य मंत्री अपनी सेना रखते थे और शत्रुके आक्रमणको रोक सकते थे। प्रत्येक मंत्री इस तरह सेनासे सुसज्ज रहता था। इस विषयमें देखिये—

'वाजिनीवन्तौ' ऋ. (१।१२०।१०) ''वाजिनीवसू' (ऋ. २।३७।५) बलवर्धक अन्न जिनके पास है, बलवर्धक अन्न अपने पास रखनेवाले। इस अन्नसे इनके अनुयायी बलवान् बनते हैं, और इनके कारण इनकी संरक्षण शक्ति बढती है।

'गो-पौ' (ऋ. १०।४०।१२) गायोंका रक्षण करनेवाले, (गोपौ) रक्षण करनेवाले ये अश्विनौ हैं। 'जगत्-पौ' (ऋ. ८।९।११) जगत्का रक्षण करनेवाले, 'नृ-पती' (ऋ. ७।६७।१) मानवोंके रक्षक, 'मर्त्य-त्रौ' (ऋ. ६।६२।८) मर्त्योंका, मनुष्योंका रक्षण करनेवाले, 'जनानां अवितारौ' (ऋ. १।१८३।१) जनताका संरक्षण करनेवाले। ये वैद्य होनेसे सबका रोगोंसे संरक्षण करते हैं, उसी तरह अन्य प्रकारसे रक्षण भी करते हैं। 'छर्दिः पौ' (ऋ.८।९।११) घरका रक्षण करनेवाले, 'परस्पौ' (परः पौ) (ऋ. ८।९।११) शत्रुसे रक्षण करनेवाले, रोगरूपी शत्रुसे

संरक्षण करनेवाले, ' वीरौ ' (ऋ. २।३९।२) ये वीर हैं, शत्रुसे बचाते हैं, ' वज्रि-पाणी ' (ऋ. ७।७३।४) बलवान् शस्त्रास्त्रोंसे युक्त, ' वृत्रहन्-तमा ' (ऋ. ८।८।९) रोगक्रिमियोंका नाश करनेवाले। ये शब्द इनका रक्षण सामर्थ्य बता रहे हैं। इनमें कई पद रोग दूर करनेके सामर्थ्य परक हैं, पर कई शत्रुको दूर करनेके अर्थमें भी हैं।

' मयो भुवौ ' (ऋ. १।९२।१८) सुख देनेवाले नीरोगिताका सुख इनसे प्राप्त होता है। ' भुरण्यू ' (ऋ. ६।६२।७) ' भुरणौ ' (ऋ. ७।६७।८) भरणपोषण करनेवाले, कृशको योग्य अन्न देकर हृष्टपुष्ट करनेवाले ' धर्तारौ ' (ऋ. ७।७३।४) जीवनका धारण करनेवाले, ' गोमधौ ' (ऋ. ७।७१।१) गौरूपी धन अपने पास रखनेवाले, पंचगव्यसे लोगोंके रोग दूर करनेवाले, गौसे उत्पन्न होनेवाले पदार्थोंसे भरण पोषण करवाले।'

' मधुपौ (ऋ. १।१८०।२) ' मधुपातमौ ' (ऋ. ८।२२।१७) ' मधूयुवौ ' (ऋ. ५।७३।८) ' मधुवर्णौ ' (ऋ. ८।२६।६) ये पद अश्विनौ मधुपीनेवाले, मधका उपयोग करनेवाले, मधके वर्णवाले थे ऐसा बताते हैं। वैद्य लोग अपनी औषधि मधके साथ देते हैं, मध स्वयं गुणकारी है और औषधका गुण पूर्ण रूपसे रोगीको देनेवाला है। यह बात प्रसिद्ध है। अश्विनौ ये वैद्य मधका विशेष उपयोग करते थे, यह इन पदोंसे सिद्ध होता है। रोगोंसे संरक्षण वे मधके प्रयोगसे करते हैं।

' वावृधानौ ' (ऋ. ८।५।१२) बढनेवाले, उत्तम वैद्य होनेके कारण इनका यश बढता है, ' धर्मवन्तौ ' (ऋ. ८।३५।१३) चिकित्साका धर्म जिनमें उत्तम रीतिसे विद्यमान रहता है, ' मंहिष्ठा ' (ऋ. ८।५।६) जो महान् हैं, श्रेष्ठ हैं, उत्तम वैद्य होनेके कारण यह श्रेष्ठता है, ' मघवानौ ' (ऋ. १।१८४।५) औषधिरूपी धन जिनके पास विपुल है, ' मदन्तौ ' (ऋ. १।१८४।२) आनंदित रहनेवाले, सदा प्रसन्नचित्त जो होते हैं।

इनका रहना सहना, इनका संरक्षण कार्य, रोगादिसे बचाव करनेका इनका सामर्थ्य विशेष रहता है। युद्धोंमें जो जख्मी होते हैं, अन्य रीतिसे जो अपंग बनते हैं ' उन सबका रक्षण करते हैं। समय पडा तो ये अपनी सेनासे भी अपना तथा अपने पास रहनेवालोंका रक्षण करते हैं।

आरोग्य मंत्रीका उत्साह

आरोग्य मंत्रीका तथा उनके साथ जो कार्यकर्ता होते हैं उनका उत्साह अपूर्व होना चाहिये। इस विषयमें देखिये–

' तनूपौ ' (ऋ. ८।९।११) शरीरका पालन करनेमें ये समर्थ हैं। अपने शरीर ये जैसे उत्तम रखते थे, उसी तरह रोगियोंके शरीर भी उत्तम अवस्थामें रखते थे, अर्थात् शरीरके पालन करनेकी विद्या वे अच्छी तरह जानते थे। ' अजरौ ' (ऋ. १।११२।२) ये जरा रहित रहते हैं, रोगियोंको भी जरा रहित करते हैं। ' अश्रान्तौ ' (ऋ. ८।५।२१) ये कभी थकते नहीं, सदा उत्साहसे अपना कार्य करते हैं। ' युवानौ ' (ऋ. १।११७।१४) ये सदा तरुण रहते हैं, वृद्धोंको भी तरुण बनाते हैं। ' रराणौ ' (ऋ. १।११७।२४) सुशोभित दीखते हैं, शोभासे सदा संयुक्त रहते हैं। ' तन्वा शुंभमानौ ' (ऋ. १।३९।२) शरीरसे शोभनेवाले, शरीरसे शोभा युक्त दीखनेवाले। ' अमर्त्यौ ' (ऋ. ८।२२।१७) अमर जैसे दीखते हैं। ' अर्वाचीनौ ' (ऋ. ५।७४।२) प्राचीन होनेपर भी इनके शरीरपर प्राचीनता दीखती नहीं, परंतु ये अर्वाचीन हैं ऐसा ही दीखता है, वृद्ध होनेपर भी तरुण दीखनेवाले, ' अस्रिधौ ' (ऋ. ३।५८।७) जिनमें कोई क्षति नहीं है, जिनका शरीर निर्दोष है। ' अहर्विदौ ' (ऋ. ८।५।९) दिनका महत्त्व जाननेवाले, दिनका समय कैसा है, ऋतु कैसी है, काल कैसा है यह जानकर उपचार करनेवाले। यह गुण वैद्योंमें अवश्य रहना चाहिये। वर्षका ऋतु, उष्ण शीतकाल आदि ठीक तरह जानकर उपचार करनेवाले ये अश्विनौ थे।

ये स्वयं उत्साहित रहते थे और दूसरोंको उत्साहयुक्त करनेमें समर्थ थे। ऐसे ही आरोग्य मंत्री रहने चाहिये।

आरोग्यमंत्रीकी दक्षता

आरोग्य मंत्री स्वयं दक्ष रहकर सब कार्य करे। ' अधप्रियौ ' (ऋ. ८।८।४) अपने नीचे रहनेवाले लोगोंपर प्रेम करनेवाले ये थे। अधिकारीमें यह गुण अवश्य चाहिये। अधिकारी अपने कार्यालयके लोगोंपर प्रेम करे, उनके हितका विचार करे। ' अनिद्यौ ' (ऋ. १।१८०।७) निंदनीय व्यवहार करनेवाले न हों, सदा उत्तम ही प्रशंसनीय आचरण करें।

'अनपच्युतौ' (ऋ. ८।२६।७) अपने शुद्ध मार्गसे भ्रष्ट न होनेवाले, अपने शुद्ध मार्गपर रहनेवाले, 'अ-तूर्त-दक्षौ' (ऋ. ८।२६।२) जिनकी दक्षताका बल कभी कम नहीं होता, कोई इनके बलमें क्षति उत्पन्न नहीं कर सकता, 'अ-दाभ्यौ' (ऋ. ५।७५।७) जिनको कोई दबा नहीं सकता, दबाकर इनसे अयोग्य कार्य कोई करा नहीं सकता।

'अनुशासितारौ' (ऋ. १।१३९।४) अनुशासनके अनुसार कार्य करनेवाले, अनुशासनका त्याग कभी न करनेवाले, सदा अनुशासनमें रहनेवाले, 'ऋतावृधौ' (ऋ. १।४७।१) सरलताके साथ बढनेवाले, सत्य मार्गपर रहनेवाले' 'दक्ष-पितरौ' (वा. य. १४।३) दक्षतासे जो कार्य करते हैं उनका संरक्षण करनेवाले।

'अ-वद्य-गोहनौ' (ऋ. १।३४।३) किसीकी कुछ गुप्त बात हो तो उसको गुप्त रखनेवाले, विशेषकर रोगीकी गुप्त बातोंका गोपन करनेवाले, किसीकी गुह्य बातको प्रकट न करनेवाले, 'अ-रेपसौ' (ऋ. १।१८१।४) दोष रहित, शरीर मन तथा आचरणसे निर्दोष रहनेवाले, 'ऋत-प्सू' (ऋ. १।१८०।३) सत्य स्वरूप, सत्यका पालन करनेवाले, 'पुरु-त्रा (ऋ. २।३९।१) रक्षितारौ' (ऋ. २।३९।६) अनेक प्रकारसे रक्षण करनेवाले, रोगादिकोंसे बचाव करनेवाले।

'ऋभुमन्तौ' (ऋ. ८।३५।१५) कारीगरोंके साथ रहनेवाले, अपने साथ कुशल पुरुषोंको रखनेवाले, 'उग्रौ' (ऋ. २।३९।३) रोगादि शत्रुओंका नाश करनेवाले, 'उग्रौ' (ऋ १।१५७।६) उग्र शूरवीर, 'नरौ' (ऋ. १।३।२) नेता, नेतृत्व करनेवाले। 'वृषणौ (ऋ. १।११२।८) बलवान, बल बढानेवाले, 'इषयन्तौ' (ऋ. ८।५।५) उत्तम अन्न अपने पास रखनेवाले, 'जेन्या-वसू' (ऋ. ७।७४।३) मानवोंका निवास जिससे होता है; उस वसुको जीतनेवाले, मानवोंके निवास साधनको पास रखनेवाले।

'शंभुवौ (ऋ. ८।८।१९) कल्याण करनेवाले,' शंभविष्ठौ' (ऋ. २।३३।५) 'शंभू' (ऋ. १।४६।१३) 'शुभस्पती' (ऋ. १।३।१) जनताका कल्याण, हित करनेवाले, जो कभी किसीका अहित नहीं करते, 'शुचि-व्रतौ' (ऋ. १।१५।११) जिनका व्रत पवित्र कार्य करना ही है, जो कभी अपवित्र कार्य नहीं करते, 'शुभस्पती' (ऋ. १।३४।६) शुभकार्य करनेवाले।

'शक्रौ (ऋ. २।३९।२) सामर्थ्यवान्, 'शचि-ष्ठौ' (ऋ. ४।४३।३) अपनी शक्तिसे कार्य करनेवाले, 'शची-पती' (ऋ. ७।६७।३) शक्तिके स्वामी, जिनके अधीन दूसरोंका हित करनेकी शक्ति है, 'शत-क्रतू' (ऋ. १।११२।२३) सैंकडों प्रकारके शुभकर्म करनेवाले,' सचा-भुवौ' (ऋ. १।३४।११) साथ साथ रहनेवाले, 'शुभ्रौ' (ऋ. ७।६८।१) निर्दोष, निष्कलंक।

'सत्यौ' (ऋ. १।१८०।७) अपने कर्ममें सत्य रीतिसे विजयी होनेवाले, 'सन्तौ' (ऋ. १।१८४।१) सच्चे कार्यको करनेवाले, 'सुगोपौ' (ऋ. १।१२०।७) उत्तम रक्षण करनेवाले, 'सुदक्षौ' (ऋ. ३।५८।७) उत्तम दक्षतासे कार्य करनेवाले, 'समनसौ' (ऋ. १।९२।१६) एक मनसे कार्य करनेवाले, 'सध्रीचीनौ' (ऋ. १०।११६।१) साथ-साथ रहकर कार्य करनेवाले, 'स-जोषसौ' (ऋ. ३।५८।७) प्रीतिपूर्वक उत्साहसे कार्य करनेवाले।

'परिज्मानौ' (ऋ. १।४६।१४) चारों ओर रोगियोंके रोग दूर करनेके हेतुसे भ्रमण करनेवाले, 'चरन्तौ कामप्रेण मनसा' (ऋ. १।१५८।२) रोगनिवारणके हेतुसे भ्रमण करनेवाले, 'आशु-हेपसौ' (ऋ. ८।१०।२) सत्वर जानेवाले, शीघ्रगतिसे जानेवाले, 'अध्रि-गू' (ऋ. ५।७३।२) विना रोक आगे बढनेवाले, अर्थात् रोगियोंकी चिकित्सा करनेके लिये शीघ्रतासे जानेवाले।

'सुरथौ' (ऋ. १।२२।२) उत्तम रथ जिनका है, 'स्वश्वौ' (ऋ. ७।६८।१) उत्तम घोडे जिनके पास होते हैं 'वातरंहौ' (ऋ. १।११८।१) वायु वेगसे जानेवाले,' श्येनपत्वौ' (ऋ १।११८।१) 'श्येनस्य जवसौ' (ऋ. ५।७८।४) श्येन पक्षीके वेगसे जानेवाले ये पद अश्विनौका वेग बताते हैं। यह वेग इसलिये है कि रोगीके पास शीघ्रातिशीघ्र पहुंचकर उनके रोग शीघ्र दूर किये जांय।

दानका स्वभाव

आरोग्य मंत्री उदार अथवा दानशील होने चाहिये। गरीबोंको भी इनकी उदारताका लाभ मिलना चाहिये। 'दशस्यन्तौ' (ऋ. ६।६२।७) 'सुदानू' (ऋ.

१।११२।११) 'दानूनस्पती' (ऋ. ८।८।१६) दान देनेवाले, रोगीकी शुश्रूषा धनके लोभसे न करनेवाले।

'द्रवत्पाणी' (ऋ. १।३।१) अपने हाथसे शीघ्र-कार्य करनेवाले, 'पुरु-दंससौ' (ऋ. १।३।२) बहुत कार्य करनेवाले, कितना भी कार्य आपदा हो भी न थकनेवाले, 'सुयुजौ' (ऋ. ७।७०।२) दोनों मिलकर एक मतसे कार्य करनेवाले।

'सुश्रुतौ' (ऋ. ३।२९।६) उत्तम अध्ययन जिन्होंने किया है, 'स्थविरौ' (ऋ. १।१८९।७) अपनी विद्यामें उत्तम वृद्ध, उत्तम कुशल, 'सुवीरा' (ऋ. ८।२६।७) रोग दूर करनेमें श्रेष्ठ वीर 'हिरण्यपेशसौ' (ऋ. ८।८।२) 'हिरण्यवर्तनी' (ऋ. १।९२।१८) सोनेके रंगसे शोभनेवाले।

आरोग्य मंत्रियोंका आकाशगमन

ये आरोग्यमंत्री विमानमें बैठकर आकाशमें संचार करते थे। 'दिविस्पृशौ' (ऋ. १।२२।२) द्युलोकको स्पर्श करनेवाले ये थे। विमानमें बैठनेके विना आकाशमें संचार नहीं हो सकता।

'दिव आजातौ' (ऋ. ४।४३।२) द्युलोकसे ये आये हैं। 'दिवोनरौ' (ऋ. १०।१४३।३) द्युलोकके ये नेता हैं। 'दिव्यौ' (ऋ. ४।४३।३) ये दिव्य अर्थात् द्युलोकमें हुए हैं। द्युलोकके ये 'देवौ' (ऋ. १।२२।२) देव हैं।

ऐसा वर्णन करनेवाले इन अश्विनौंके वाचक ये पद ये आकाश यानसे जाते हैं यह सिद्ध करते हैं।

अनश्व रथ

घोडेके विना चलनेवाला रथ अश्विनौका था, इस विषयमें नीचे लिखा मंत्र देखिये—

> अश्विनोः असनं रथं
> अनश्वं वाजिनीवतोः।
> तेनाऽहं भूरि चाकन ॥ ऋ. १।१२०।१०

'(वाजिनीवतोः अश्विनोः) 'बलवाले अश्विनौका (अनश्वं रथं) घोडेरहित रथको (असनं) मैं प्राप्त करता हूं। (अहं तेन भूरि चाकन) मैं उससे बहुत लाभ प्राप्त करूंगा।

इससे सिद्ध होता है कि अश्विनौका रथ घोडोंके विना भी जाता था, आकाशगामी विमान थे, घोडोंके विना चलनेवाला रथ था और घोडोंसे चलनेवाला रथ भी था। अनश्व रथका वर्णन और देखिये—

> अनेनो वो मरुतो यामो अस्तु
> अनश्वश्चिद् यमजत्यरथीः।
> अनवसो अनभिशू रजस्तूः
> विरोदसी पथ्या याति साधन् ॥ ऋ. ६।६६।७

'हे मरुतो! (वः यामः) आपका वाहन (अनेनः) निर्दोष है,) अनश्वः)उसको घोडे नहीं जोतते, (अरथीः यं अजति) जिसको सारथी भी चलानेके लिये नहीं होता, (अनवसः) जिसको संरक्षण साधन नहीं है, (अनभिशुः) जिसको लगाम नहीं है, परंतु जो [रजस्तूः] धूली उडाता हुआ चलता है ऐसा तुम्हारा रथ द्यावापृथिवीके अन्दरके मार्गसे सब प्रकारकी साधना करता हुआ जाता है।' यह मरुतोंका अश्वरहित परंतु धूली उडाता हुआ चलनेवाला रथ है। ऊपर जिसका वर्णन है वह अश्विनौका रथ अश्वरहित है।

घोडा नहीं, लगाम नहीं, पृथक् सारथी नहीं पर धूली उडाता हुआ चलता है यह रथ कोई ऐसा रथ है कि जो घोडेके विना वेगसे चलता है।

'वातरंहा' (ऋ. १।११८।१) वायुके वेगसे चलनेवाला अश्विनौका रथ है, 'श्येन पत्वा' (ऋ. १।११८।१) श्येनपक्षीके समान आकाशमें जाता है, 'श्येनस्य जवसा' (ऋ. ७।७८।४) श्येनपक्षीके वेगसे चलता है, यह विमान ही होगा, क्योंकि श्येन पक्षी कभी भूमिपरसे वेगसे जाता ही नहीं, इसका वेग आकाशमें ही रहता है। इसलिये श्येनके समान जानेका अर्थ आकाशमेंसे ही जाना है।

यहां आकाशयान, घोडेके यान, तथा घोडेके विना चलनेवाले यान हमारे देखनेमें आये। आकाशमें चलनेवाले यान तथा घोडेके विना धूली उडाते हुए चलनेवाले यान किस साधनसे चलते थे इसका पता नहीं चलता, पर आकाशयान तीन अहोरात्र चलते रहे ऐसा वर्णन मंत्रमें है—

> तिस्रः क्षपः तिरहाति व्रजद्भिः अन्तरिक्षप्रुद्भिः।
> ऋ. १।११६।४

तीन रात्री और तीन दिन अति वेगसे अन्तरिक्षमेंसे जानेवाले हवाई यान थे। किसी यंत्रसाधनसे जाते होंगे, पर ऐसे जाते थे इसमें संदेह नहीं है।

रथ कैसे थे ?

इस अश्विनोंका रथ ' अत्य ' (ऋ. १।१८०।२) वेगसे जानेवाला था, ' आशुः ' (ऋ. ४।४३।२) शीघ्र गतिसे रथ जाता था, ' जवीयान् ' (ऋ. १।११७।२) वेगके साथ जानेवाला रथ, ' मनसः जवीयान् , (ऋ. १०। ३९।१२) मनसे भी वेगवान्, ' रघुवर्त्मनिः ' (ऋ. ८। ९।८) शीघ्रगतिसे जानेवाला ' स्ववान् ' (ऋ. १।११८।१) अपनी शक्तिसे रहनेवाला, अपनी शक्तिसे चलनेवाला । ये रथके वर्णन करनेवाले पद बता रहे हैं कि रथ अश्विनौंके कैसे शीघ्रगामी रथ थे ।

' दिविस्पृक् ' (ऋ. ८।५।३५) यह रथका नाम बता रहा है कि अश्विनौंके कई रथ आकाशको स्पर्श करने वाले थे अर्थात् वे अन्तरिक्षसे जाते थे ।

' हिरण्ययः ' (ऋ. १।१२९।३) ये रथ सुवर्णके नक्शीके कामसे सुभूषित थे । ' हिरण्याभिशुः ' (ऋ. ८।५। २८) सुवर्ण जैसे चमकनेवाले जिनके लगाम या चाबूक थे। ' सुपेशाः ' (ऋ. १।४७।२) सुन्दर रंगरूप रोगन आदि जिसपर लगा हुआ है । ' सुखः ' (ऋ. १।१२०।११) रथ बैठनेवालोंको सुख देनेवाला सुख देनेवाला था । ' शंतमः ' (ऋ. ५।७८।४) अत्यंत आनंद देनेवाला रथ था । ' वसुमान् ' (ऋ. १।११८।१०) ' वसूयुः ' (ऋ. ४।४४।११) ' वसुवाहनः ' (ऋ. ५।७५।१) धनवान्, देखनेमें धनसे युक्त था । ' नर्यः ' (ऋ. १।१८०।२) मानवका हित करनेवाला, मनुष्योंका सहायक, अश्विनौंके रथमें औषधादि साधन होनेसे उनका रथ लोगोंका हित करनेवाला कहा जाता था, ' इषां वोळ्हा ' (ऋ. ७।६९।१ अनेक प्रकारके पौष्टिक अन्नोंका वहन करनेवाला, रोगियोंको देनेके लिये अनेक प्रकारके पौष्टिक अन्न इस रथमें रहते थे, ' अनेहा ' (ऋ. ८।२२।२) दोषरहित रथ अश्विनौंका था ।

' अश्वः ' (ऋ. ७।३०।१) अश्वावान् ' (७।७२।२) घोडे जिसको जोते हैं, ' वाजी ' (७।७०।१) घोडेसे युक्त ' वृषभिः अश्वैः युक्तः ' बलवान् घोडे जिसको जोते हैं, ऐसा वर्णन घोडोंके रथका है ।

' त्रिचक्रः ' (ऋ. १।११८।२) तीन चक्रोंवाला, ' त्रिधातुः ' (ऋ. १।१८३।१) तीन दण्डे जिसमें लगे हैं, ' त्रिवंधुरः ' (ऋ. १।४७।२) तीन बैठके जिसमें बैठनेके लिये हैं, ' पवयः त्रयः ' (१।३४।२) तीन पहिये जिसको लगे हैं, ' त्रयः स्कंभासः ' (ऋ. १।३४।२) तीन स्तंभ जिसमें लगाये होते हैं, ' वीळुवंगः ' (ऋ. ८।८५।७) मजबूत अंगोंसे युक्त इनका रथ था । ' विश्वसौभगः ' (ऋ. १।१५७।३) सब प्रकारकी सुंदरता इसमें है । ' शतोतिः ' (ऋ. ६।६३।५) सैकडों प्रकारके संरक्षण साधन जिस रथमें रहते हैं ।

' पृक्षः वहन् ' (ऋ. ५।७७।३) अन्नको लेजानेवाला, रोगियोंको देनेके लिये उत्तम अन्न तथा औषधादि जिसमें रहते हैं । ' घृतस्नुः ' (५।७७।३) ' घृतवर्तनिः ' (७।६९।१) घीको रखनेवाला, शहद रखनेवाला यह वर्णन पीछे आया ही है । ' गोमान् ' (ऋ. ७।७२।१) गौओंको पास रखनेवाला, अर्थात् गोरस अपने पास रखनेवाला अश्विदेवोंका रथ था ।

' उग्रः ' (ऋ. ५।७३।७) यह वीरतासे युक्त था, ' सेनाजूः ' (ऋ. १।११६।१) सेनाके साथ रहनेवाला इनका रथ था । इतनी तैयारीके साथ अश्विनौंका रथ रहता था ।

' विदथ्यः ' (ऋ. १०।४१।१) युद्धमें जाने योग्य इनका रथ था । इस प्रकार इनके रथका वर्णन है ।

अब ' अश्विनौ ' देवताके नामों और विशेषणोंका थोडासा विचार किया, अब इनके विषयमें ब्राह्मण और निरुक्तमें क्या विचार किया गया है वह देखेंगे—

अश्विनौ देवताके विषयमें ब्राह्मणवचन

' अश्विनौ ' देवताके विषयमें ब्राह्मण ग्रंथोंमें नीचे लिखे वचन मिलते हैं, जो इस देवताके स्वरूपको बताते हैं—

१ इमे ह वै द्यावापृथिवी प्रत्यक्षं अश्विनौ, इमे हीदं सर्वं आश्नुवतां, पुष्करस्रजाविति अग्निरेवास्यै (पृथिव्यै) पुष्करं आदित्योऽमुष्यै (दिवे) ॥
श. ब्रा. ४।१।५।१६

२ श्रोत्रे अश्विनौ ॥ श. ब्रा. १२।९।१।१३

३ नासिके अश्विनौ ॥ श. ब्रा. १२।९।१।१४

४ तयौ ह वा इमौ पुरुषाविवाक्ष्योः एतावेवाश्विनौ ॥
श. ब्रा. १२।९।१।१२

५ अश्विनावध्वर्यू ॥ ऐ. ब्रा. १।१८; श. ब्रा. १।१।२। १७; ३।९।४।१६; तै. ब्रा. ३।२।२।१; गो. ब्रा. उ. २।६

६ अश्विनौ वै देवानां भिषजौ। ऐ. ब्रा. ३।१८; कौ. ब्रा. १८।१
७ सुरयौ वा अश्विनौ (यज्ञस्य)। श. ब्रा. ४।१।५।१९
८ श्येताविव हि अश्विनौ। श. ब्रा. ५।५।४।१
९ सयोनी वा अश्विनौ। श. ब्रा. ५।३।१।८;
१० आश्विनाविव रूपेण (भूयासं)। मं. ब्रा. २।४।१४
११ आश्विनं द्विकपालं पुरोडाशं निर्वपति। श. ब्रा. ५।३।१।८
१२ अश्विनोः द्विकपालः (पुरोडाशः)। तां ब्रा. २१।१०।२३
१३ वसन्तग्रीष्मावेवाभ्यां अश्विनाऽऽभ्यां (अवरुन्धे)। श. ब्रा. १२।८।२।३४
१४ अश्विभ्यां धानाः। तै. ब्रा. १।५।११।३
१५ अथ यदेनं (अग्निं) द्वाभ्यां बाहुभ्यां द्वाभ्यां अरणीभ्यां मंथन्ति, द्वौ वा आश्विनौ, तदस्य आश्विनं रूपं॥ ऐ. ब्रा. ३।४
१६ गर्दभरथेनाश्विना उदजयताम्। ऐ. ब्रा. ४।९
१७ तदश्विना उदजयतां रासभेन। कौ. ब्रा. १८।१
१८ इममेव लोकमाश्विनेन (अवरुन्धे)। श. ब्रा. १२।८।२।३२
१९ अश्विनमन्वाह तदमुं लोकं (दिवं) आप्नोति। कौ. ब्रा. ११।२।१८।२

ये ब्राह्मण वचन अश्विनौ देवताका स्वरूप देखनेके लिये मनन करने योग्य हैं। इनका अर्थ देखिये—

१ ये पृथिवी और द्युलोक ये प्रत्यक्ष अश्विनौ हैं क्योंकि ये सबका भक्षण करते हैं। ये पुष्करमाला पहनते हैं, अग्नि पृथिवीका पुष्प है और सूर्य द्युलोकका पुष्प है। २ दोनों कान अश्विनौ हैं। ३ दोनों नाक अश्विनौ हैं। ४ दोनों आंख अश्विनौ हैं। ५ यज्ञमें जो दो अध्वर्यु होते हैं वे अश्विनौ हैं। ६ अश्विनौ ये देवोंके वैद्य हैं। ७ यज्ञमें मुख्य अश्विनौ हैं। ८ अश्विनौ गौर वर्णके हैं। ९ एक ही स्थानसे ये अश्विनौ उत्पन्न हुए हैं। १० अश्विनौ विशेष सुंदर हैं। ११-१२ अश्विनौके लिये दो थालियोंमें खानेको दिया जाता है। १३ वसन्त और ग्रीष्म ऋतुओंका संबंध अश्विनौके साथ है। १४ अश्विनौके लिये धान्य (भून कर जो लाजाएं होती हैं वे) दी जाती हैं। १५ अग्निका मन्थन दोनों हाथोंसे करते हैं, दोनों अरणियोंसे करते हैं, वह अश्विनौका रूप है। १६-१७ गधे जोडे हुए रथसे अश्विनौ ऊपर आते हैं। १८ इस भूलोकको अश्विनौके सामर्थ्यसे अवरुद्ध करता हूं। १९ अश्विनौके साहाय्यतासे उस स्वर्गलोकको अवरुद्ध करता हूं।

ये ब्राह्मण वचन अश्विनौके स्वरूपको जाननेके लिये सहायक होनेवाले हैं। अतः इनका विचार अब करते हैं—

व्यक्तिमें अश्विनौंका रूप

इन ब्राह्मण वचनोंमें अश्विनौका रूप वैयक्तिक शरीरमें कहां है यह बताया है।

२-४ मानवी शरीरमें नाक, कान, और आंख ये अश्विनौ हैं। अश्विनौके नामोंमें 'नासत्यौ' (नास-त्यौ) यह एक नाम है। नासिकामें रहनेवाले यह इसका भाव है। नासिकासे श्वास तथा उच्छ्वास चलता है वह अश्विनौका रूप है। दायां और बायां शरीर भी अश्विनौका रूप है। नाक, कान, आंख इनमें दायां और बायां ऐसे दो भाग हैं। ये अश्विनौ हैं।

नासिकासे प्राणका संचार होता रहता है। यही अश्विनौ देव शरीरमें रोग दूर करके आरोग्य स्थापनाका कार्य कर रहे हैं, दीर्घजीवन ये दे रहे हैं। अतः शरीरमें ये अश्विनौ हैं। दक्षिण दिशाका नासिका छिद्र शरीरमें उष्णता बढाता है और उत्तर दिशाका छिद्र शरीरमें शीतता उत्पन्न करता है। दोनों नासिका छिद्रोंसे सतत श्वास चलता नहीं। दो दो घण्टोंके पश्चात् श्वास बदलता रहता है। दाहिनेसे बाहिना और बाहिनेसे दाहिना इस तरह बदलता रहता है और इससे शरीरमें उष्णता और शान्तता होती रहती है और शरीर स्वस्थ रहता है। यदि नाकसे एक ही स्वर चलता रहेगा और दो घंटोंके पश्चात् दूसरा नहीं चलेगा, तो समझना चाहिये कि मनुष्य रोगी होगा। यह सूचना नासिकामें स्थित अश्विनौ देते हैं। यह स्वरशास्त्र एक बडा शास्त्र है और यह अश्विदेवोंका कार्य है।

इसी तरह आंख और कानोंमें अश्विनौ कार्य करते हैं और शरीरके दायें और बायें अंगोंमें भी ये अश्विदेव कार्य करते हैं और इस शरीरको स्वस्थ रखते हैं। ये देवोंके वैद्य हैं। शरीरमें ३३ देव रहते हैं। सूर्य आंखमें, वायु नासिकामें, अग्नि मुखमें, दिशाएं कानमें, आप् (जल)

शिश्नमें, मृत्यु नाभिमें, बाहुओंमें इन्द्र, छातीमें मरुत इस रीतिसे ३३ देवताएं मानवी शरीरमें रहती हैं। इन देवताओंकी शक्तिसे यह मनुष्य शरीर कार्यक्षम होरहा है और सब कार्य कर रहा है। इन देवोंको स्वास्थ्यसंपन्न रखनेका कार्य नासिकामें रहकर ये अश्विदेव कर रहे हैं। इसलिये ये इन देवोंके वैद्य हैं।

प्राणायामसे दीर्घायु प्राप्त होती है इसका कारण यही है कि प्राणायामसे-दीर्घश्वसनसे-रक्त शुद्धि होती है, इस शुद्ध रक्तसंचारसे शरीरमें रहे ३३ देवता सबल होते हैं। और देवता 'निर्जराः' अर्थात् जरारहित हुए तो मानव दीर्घायु प्राप्त कर सकता है। शरीर स्थानीय देवताओंको निर्जर अर्थात् जरारहित रखनेका कार्य ये अश्विनौ नासिकामें रहकर कर रहे हैं। इस तरह जराको दूर करना और तारुण्य तथा दीर्घायु देना यह इन अश्विनौंका कार्य यहां हो रहा है।

इस रीतिसे विचार करनेपर पता लग जायगा कि शरीर में श्वास उच्छ्वास ये नासिकासे कार्य करनेवाले अश्विनौ हैं और ये यहां देवोंके वैद्य हैं।

जो गुण व्यक्तिमें होते हैं, उन गुणोंसे युक्त पुरुष समाज, राष्ट्र या पंचजनोंमें होते ही हैं। ज्ञान शौर्य, पोषण और कर्म ये मनुष्यमें मस्तक, बाहू, पेट और पांवके अन्दर रहने वाले गुण हैं। इन गुणोंसे युक्त पुरुष समाजके अवयव हैं। जैसा देखिये—

व्यक्तिमें	राष्ट्रमें
सिर—ज्ञान	ज्ञानी पुरुष राष्ट्रके सिर हैं
बाहू—शौर्य	शूर ,, ,, बाहू ,,
पेट—पोषण	धनी ,, ,, पेट ,,
पांव—गति, कर्म	कर्मचारी ,, ,, पांव ,,

इसी तरह 'वैद्य' राष्ट्रके आरोग्यवर्धक अधिकारी हैं। अश्विनौ शरीरमें नसिका स्थानमें रहकर शरीरका आरोग्य सुरक्षित रखते हैं, और वैद्य राष्ट्रका आरोग्य रक्षणका कार्य करते हैं, इसलिये राष्ट्रमें वैद्य ही अश्विनौ है इसका सूचक ब्राह्मण वाक्य यह है—

अश्विनौ वै (देवानां) भिषजौ।

ऐ. ब्रा. १।१८; कौ. ब्रा. १८।१

'अश्विनौ ये वैद्य ही हैं।' अर्थात् राष्ट्रका आरोग्य-रक्षण करनेवाले अश्विनौ वैद्य ही हैं। इसलिये हमने अश्विनौंको 'आरोग्यमंत्री' कहा है। वैद्यमें चिकित्सक वैद्य और शस्त्रकर्म करनेवाले ऐसे दो होते हैं। ये दोनों आरोग्यमंत्रीके स्थानपर रहें और राष्ट्रका आरोग्य संभालें।

यहां ऊपर दिये ऐतरेय ब्राह्मणके वाक्यमें 'देवानां भिषजौ' ऐसे पद हैं। ये देवोंके वैद्य हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि ये देवोंकी ही चिकित्सा करते हैं। चारों वेदोंमें जो अश्विनौके मंत्र हैं उनमें किसी भी देवताकी चिकित्सा उन्होंने की ऐसी बात नहीं है। अश्विनौके मंत्रोंमें उन्होंने मानवोंकी ही चिकित्सा की है। अर्थात् ये अश्विनौ देव हैं, ये मानवोंकी चिकित्सा करते रहते हैं। देव जरारहित, सदा तरुण तथा नीरोग रहते हैं, इसलिये उनको वैद्योंकी सहायताकी आवश्यकता रहती नहीं होती।

इन्द्रको मेषके वृषण लगाये यह अपवाद है। बाकी अश्विनौंने किसी देवकी चिकित्सा की ऐसा वर्णन वेदके मंत्रोंमें नहीं है। जो वर्णन है उससे यही सिद्ध हो रहा है कि अश्विनौंने मानवोंकी ही चिकित्सा की थी। इसलिये राज्यशासनमें उनका स्थान 'आरोग्यमंत्री' का ही है। और आरोग्यमंत्रीके कार्य हम अश्विनौके मंत्रोंसे जान सकते हैं।

निरुक्तका निर्वचन

अब हम निरुक्तके 'अश्विनौ' के निर्वचनका विचार करेंगे—

अथातो द्युस्थाना देवताः। तासां अश्विनौ प्रथमागामिनौ भवतः। अश्विनौ यद् व्यश्नुवाते सर्वं, रसेनान्यो ज्योतिषाऽन्यः। अश्वैरश्विनावित्यौर्णवाभः तत् कावश्विनौ? द्यावापृथिवी इत्येके, अहोरात्रावित्येके, सूर्याचन्द्रमसावित्येके, राजानौ पुण्यकृतौ इत्यैतिहासिकाः। तयोः काल ऊर्ध्वमर्धरात्रात् प्रकाशीभावस्यानुविष्टम्भमनु तमो भागो हि मध्यमः ज्योतिर्भाग आदित्यः॥ १॥ तयोरेषा भवति 'वसातिषु स्म चरथोऽसितौ ये त्वाविव॥'
तयोः समानकालयोः समानकर्मणोः संस्तुतप्राययोः असंस्तवेन एषोऽर्द्धर्चो भवति वासात्यो अन्य उच्यते, उषः पुत्रस्तवान्य इति॥ २॥

इह चेह च जातौ संस्तूयते पापेनालिप्यमान-
तया तन्वा नामभिश्च स्वैः। जिष्णुर्वामन्यः
सुमहत्तो बलस्येरयिता मध्यमः, दिवो अन्यः
सुभगः पुत्र ऊह्यत आदित्यः ॥ ३ ॥
प्रातर्युजा वि बोधयाश्विनावेह गच्छताम्।
ऋ. १।२२।१
प्रातर्योगिनौ वि बोधयाश्विनाविहा गच्छताम्।
निरुक्त १२।१
सृण्येव जर्भरी तुर्फरीतू नैतोशेव तुर्फरी पर्फरीका।
उदन्यजेव जेमना मदेरू ता मे जराय्वजरं मरायु॥
ऋ. १०।१०६।६
सृण्येवेति द्विविधा सृणिर्भवति भर्ता च हन्ता
च, तथा अश्विनौ चापि भर्तारौ, जर्भरी
भर्तारावित्यर्थः। तुर्फरी तू हन्तारौ। नैतोशेव
तुर्फरी पर्फरीका, नितोशस्य अपत्यं नैतोशं,
नैतोशेव तुर्फरी क्षिप्रहन्तारौ। उदन्यजेव
जेमना मदेरू, उदन्यजेवेति उदकजे इव रत्ने
सामुद्रे चान्द्रमसे वा। जेमने जयमाने, जेमना
मदेरू। ता मे जरायु अजरं मरायु, एतज्जरा-
युजं शरीरं शरदं अजीर्णम्। निरुक्त १३।५

अब द्युलोककी देवताओंकी व्याख्या करते हैं। इनमें अश्विनौ देव प्रथम आनेवाले हैं। ये सब व्यापते हैं, इसलिये इनको 'अश्विनौ' कहते हैं। इन दोमेंसे एक रससे व्यापता है और दूसरा प्रकाशसे व्यापता है।

(अश् व्यापना इस धातुसे अश्विनौ बना है, इसलिये इसका अर्थ व्यापनेवाला है।)

और्णवाभ ऋषि कहता है कि अश्विनौके पास घोडे रहते हैं इसलिये इनको अश्विनौ कहते हैं। ये अश्विनौ कौन हैं? 'द्युलोक और पृथिवी लोक' ऐसा कइयोंका मत है, 'अहो रात्र' ऐसा दूसरोंका मत है, 'सूर्य चन्द्र' ऐसा कइयोंका मत है। 'पुण्यकर्म करनेवाले राजालोग' ऐसा ऐतिहासिकोंका मत है। इनका समय आधीरात व्यतीत होनेके पश्चात्का है। जब प्रकाश फटने लगता है तब इनके उदयका समय होता है। इस कालमें जो अंधकारका समय होता है वह एक भाग है, वह मध्यम देवता है और जो प्रकाशका भाग है वह उत्तम भाग है वह सूर्य है। इस तरह अन्धकार और प्रकाश इस समय इकट्ठे रहते हैं ये ही अश्विनौ हैं।

ये दोनों एक ही कालमें आते हैं, एक ही कर्म करते हैं। इसका वर्णन 'वसातिषु स्म' इस मंत्रमें किया है। इनमें एक रात्रीका और दूसरा दिनका पुत्र है।

जयशील अन्य है और द्युलोकका पुत्र अन्य है। वह आदित्य है।

जिस तरह रात्री पोषण करनेवाली और नाश करनेवाली होती है, उस तरह अश्विनौमें एक देव पोषण करनेवाला और दूसरा रोगका विनाशक है।

यह निरुक्तका स्पष्टीकरण है। अश्विनौमें दो देव हैं, एक पोषण करता है और दूसरा विनाश करता है। ये दोनों वैद्य हैं। एक रोगका नाश करता है और दूसरा रोगीका पोषण करता है। इसके अतिरिक्त द्यावा-पृथिवी, सूर्य-चन्द्र, अहो-रात्र, अन्धेरा-प्रकाश, पोषक-संहारक ये भी अर्थ इनमें हैं। पुण्य कर्म करनेवाले राजा या राजपुरुष यह भी अर्थ निरुक्तकारने ऐतिहासिकोंका करके दिया है। 'राजा' के स्थानपर 'राजपुरुष' हम मान सकते हैं। इसलिये हमने 'आरोग्यमंत्री' यह अर्थ इनका माना है और मंत्रोंका विवरण आरोग्यमंत्रीके राज्याधिकारके अनुकूल किया है। इसका विद्वान् लोग विचार करें।

दो नक्षत्र

अश्विनौ नामके दो नक्षत्र आकाशमें हैं। ये प्रातःकालमें उदित होते हैं। ये नक्षत्र साथ-साथ रहते हैं। आधिदैविक सृष्टिमें इनका नाम अश्विनौ है।

आधिभूत सृष्टिमें अर्थात् प्राणियोंके राज्यशासन व्यवहारमें अश्विनौका अर्थ 'आरोग्य-मंत्री' नामक राजपुरुष हैं। ये राजे हैं, ये राजपुरुष हैं। इनके कर्म क्या-क्या थे इस बातका पता अश्विनौके मंत्रोंसे लग सकता है।

विश्वव्यापक देवताओंका राज्य है, उसमें जिस तरह बृहस्पति, ब्रह्मणस्पति, इन्द्र, वरुण आदिके पास एक-एक कार्य रखा है और वह कार्य उन देवताओंके वैदिक वर्णनमें किया गया है, उसी तरह अश्विनौ देवताके वर्णनमें इनका आरोग्यसाधनका कार्य वर्णन किया है। यह वर्णन आगे बताया जायगा।

व्यक्तिमें आध्यात्मिक दृष्टिसे नासिकामें स्थित 'नासत्यौ' अर्थात् अश्विनौका कार्य भी विचारणीय है। परंतु यह अतिअल्प वर्णित हुआ है।

आरोग्यसाधनका इनका जो कर्म है वही विशेष रीतिसे वर्णन किया गया है।

इस समयतक अश्विनौ देवताके गुण वर्णन करनेवाले वैदिक पदोंका थोडासा विचार किया है। इससे अश्विनौ देवता 'स्वास्थ्य-मंत्री' हैं यह स्पष्ट हो रहा है। इनके जो गुणबोधक पद यहां दिये हैं उनसे स्पष्ट प्रतीत हो रहा है कि इनमें ये गुण हैं अर्थात् वैदिक समयके 'स्वास्थ्यमंत्री' में ये गुण थे—

१ ये 'देवोंके वैद्य' हैं अर्थात् ये देव हैं और ये चिकित्सा करते हैं, ये रोग दूर करते हैं, लोगोंको स्वस्थ करते हैं, बलवान् करते हैं, दीर्घायु भी करते हैं। ये केवल देवोंकी ही चिकित्सा करते हैं ऐसा नहीं। वेदमंत्रोंका वर्णन देखनेसे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि, ये मानवोंकी ही चिकित्सा करते हैं। वेदमंत्रोंमें जो इनके कर्म वर्णन किये हैं वे देखनेसे यह स्पष्ट दीख रहा है कि मानवोंकी ही ये चिकित्सा करते हैं।

ये देव हैं पर ये मानवोंकी चिकित्सा करनेके कार्यमें नियुक्त हैं।

२ ये अपनी चिकित्सा विद्यामें निपुण हैं, पर अन्य रीतिसे भी ये विद्वान्, शास्त्रज्ञ, शास्त्रनिपुण हैं। बहुश्रुत कहने योग्य अनेक विद्याओंमें ये प्रवीण हैं।

आजकलके चिकित्सक वैद्य या डाक्टर अपनी चिकित्सा शास्त्रमें जैसे प्रवीण होते हैं, वैसे न सही। परंतु गणित, भाषा, इतिहास, साहित्य, काव्य, नाटक, भूगोल, नागरिक-शास्त्र, जीवनशास्त्र आदि विद्याओंमें साधारण परिचय अवश्य रखते हैं, उसी तरह ये अश्विनौ देव 'विद्वान्' थे, 'वि-प्र' ये अर्थात् विशेष प्राज्ञ थे। 'कवि' यह इनका विशेषण बता रहा है कि ये काव्यशास्त्र विनोदमें निपुण थे। ये बुद्धिमान् थे।

चिकित्सा योग्य रीतिसे करनेके लिये उत्तम बुद्धिमत्ता अवश्य चाहिये। निर्बुद्ध चिकित्सक उत्तम चिकित्सा कर नहीं सकेगा।

३ ये अश्विदेव गंभीर थे। चिकित्सकको गंभीर होना आवश्यक है। रोगीकी कुछ गुप्त बातें इनको मालूम हुई तो इन्होंने उनको गंभीरताके साथ गुप्त रखना आवश्यक है। रोगीको विश्वास चाहिये कि ये वैद्य मेरी गुप्त बातोंको गुप्त रखेंगे, ऐसा रोगीके मनमें विश्वास हुआ, तो ही वह रोगी अपनी सब बातोंको खुले दिलसे वैद्यको कहेगा। अतः वैद्यको गंभीर होना आवश्यक है।

४ प्रशस्त चित्तवाले अश्विनौ हैं, अपनी चिकित्सामें प्रथम अर्थात् पहिले हैं और मायावी हैं, अर्थात् अपने चिकित्सामें अत्यंत कुशल हैं। इनके दो काम हैं। एक औषधि प्रयोगसे रोगीका रोग दूर करना और शस्त्रकर्मसे रोगीको रोग मुक्त करना। इन दोनों कर्मोंमें इनकी परमश्रेष्ठ कुशलता है। साथ-साथ ये भोजनमें ऐसी औषधीयुक्त भोजन देते हैं कि जिससे रोगीका रोग दूर हो जाय, और औषध मैं लेता हूं यह भी उसको पता न लगे। यह अद्भुत सामर्थ्य इनमें था।

५ मानव इस भूमिपर सुखसे रहें इसलिये जैसा उसको चाहिये वैसा रहन-सहन, भोजन तथा अन्य उपचार अश्विनौ देव उसको देते थे। इसलिये उनको 'वसु-विदौ' कहा है। यहां सुखसे निवास होनेके लिये जो आवश्यक साधन हैं उन साधनोंको 'वसु' कहते हैं। इन साधनोंको ये अच्छी तरह जानते थे। इस कारण मानवोंको उत्तम मार्गपर ये ला सकते थे और मानवोंका जीवन सुखमय होनेके लिये जो करना आवश्यक है वह ये बताते थे। अर्थात् ये मानवका निवास सुखमय करनेके लिये जो ज्ञान मानवोंको उपदेश द्वारा देना आवश्यक था, वह ये देते थे।

६ रोगोंके कृमि होते हैं। वे कृमि मानवी शरीरमें जानेसे रोग उत्पन्न होते हैं। इन रोग कृमियोंके 'रक्षः, या राक्षस' आदि नाम हैं। 'रक्षो-हणौ' यह नाम इनको इसलिये दिया है कि ये अश्विनौ वैद्य इन रोग-कृमियोंका समूल नाश करते हैं। 'रिशादसौ' यह इनका नाम भी वही अर्थ बताता है। 'रिश' का अर्थ शरीरमें बिगाड करनेवाला जो होगा उसको विनष्ट करनेवाले ये वैद्य हैं। राक्षसोंके आक्रमणसे रोग होते हैं। कृमियोंके आक्रमणसे रोग होते हैं। इन सब रोगकृमियोंका नाश वैद्य करते हैं और रोगको निर्मूल करते हैं।

वेदमें रोगकृमियोंका अनेक स्थानपर वर्णन है। ये रोग कृमि सूर्यप्रकाशसे मरते हैं, रात्रीमें बढते हैं, अतः इनको रात्रिचर, निशाचर कहते हैं। इन सब कृमियोंको दूर करनेसे सब रोग समूल दूर हो सकते हैं।

८ अश्विनौ देव बडे सुन्दर हैं। वैद्य सुन्दर चाहिये। रोगीके सामने वैद्य सुन्दर, सजा हुआ, उत्साही, हंसते मुख, नीरोग स्थितिमें जाना चाहिये। जिसको देखते ही रोगीके मनपर ऐसा परिणाम होना चाहिये कि यह मेरा रोग अवश्य दूर कर सकेगा। इसके विरुद्ध यदि वैद्य रोगग्रस्त, निर्बल, दुर्मुख उदास, निस्तेज अवस्थामें जायगा तो रोगी-पर विरुद्ध परिणाम होगा। अश्विनौके मंत्रोंमें अश्विदेव सुंदर हैं, सजे हुए हैं, कमलोंकी माला धारण करते हैं ऐसा जो वर्णन है, वह बोधप्रद है। वैद्योंको कैसा रहना चाहिये इसका बोध इन वर्णनोंसे प्राप्त हो सकता है।

अश्विनौ देव प्रातःकाल रोगीके घर जानेवाले हैं। वे प्रातःसमयमें उठते हैं और रोगीयोंके घर जाते हैं, उनको देखते हैं और जो उपचार करना हो वह करते हैं। इनमें आलस नहीं होता। रोगीको देखनेमें वे कभी आलस्य नहीं करते। उपचार करके रोगीका रोग दूर करनेमें वे आलस्य नहीं करते। किसी तरह रोगीकी सेवा करके उसको रोग-मुक्त करनेमें ये शिथिलता नहीं करते। शस्त्रक्रिया करनी हो, औषधियोंसे चिकित्सा करनी हो, योग्य अन्न देकर रोगीको पुष्टी देनी है, ये सब कार्य करनेमें ये बडे दक्ष रहते हैं। इनकी शिथिलताके कारण किसीका रोग बढ गया ऐसा कभी नहीं होता।

९ रत्नोंको ये धारण करते हैं। रत्नोंके भस्म रोगनिवृत्तिके उपचार करनेके लिये अपने पास रखते हैं। औषधोंका प्रयोग करनेमें कितना भी व्यय हो ये करते हैं। व्यय होता है इसलिये वे कभी कंजूसी नहीं करते। रत्नोंका प्रयोग करते हैं, विद्युतका उपयोग करते हैं, अथवा कीमती औषध देना हो तो वे देते हैं। मुख्य बात रोगीको रोगमुक्त करना यह होती है। रोगीको स्वस्थ करना यह मुख्य उद्देश्य इनका रहता है। बाकी खरचोंको ये देखते नहीं। इसी लिये इनकी चारों ओर प्रशंसा होती है।

१० अश्विनौ आरोग्यमंत्री थे यह यहांतक बताया है। ये आरोग्यमंत्री होनेके कारण इनको सैनिकोंमें भी औषध उपचार करनेके लिये जाना पडता था। जखमी सैनिकोंको उठाना, औषधोपचार करना आवश्यक था। इसलिये इनके पास रुग्ण पथक होते थे। हवाई जहाज रुग्ण शुश्रूषाके लिये इनके पास थे। रुग्ण शुश्रूषाके रथ थे। और पदाती पथक भी थे। तीन अहोरात्र इनके हवाई जहाज दूर देशमें गये थे और वहांसे जखमियोंको हवाई जहाजमें लेकर वे वापस आये ऐसा वेदमंत्रमें वर्णन है। ये रुग्ण पथक बडे कार्य करनेवाले थे। संदेश आते ही ये चल पडते थे और कार्य तत्परतासे करते थे। इस कारण इनको 'मानवोंके रक्षक' लोग कहते थे।

घरोंका अर्थात् गृहनिवासियोंका रक्षण ये करते थे। शत्रुसे रक्षण ये करते थे। इनके पास आवश्यक सेनाबल भी था। अर्थात् यह सेना रोगियोंकी शुश्रूषा करनेवालोंकी होती है। युद्धभूमिसे रोगी या जखमीको लानेका कार्य इनका होता था। इस कारण जखमीका और अपना बचाव होना चाहिये। इतना सेनाबल इनके पास रहता था। इस सेनाका उपयोग ये करते थे।

११ गौओंको ये अश्विनौ देव अपने पास रखते थे। गौका दूध, दही, घी, मठ, मूत्र, शृंग आदि सब पदार्थ रोग-निवारक हैं। पीपकी नदीसे गौ बचाती है। इसका अर्थ ही यह है कि गौके उक्त पदार्थ पीप होने नहीं देते। रोगि-योंके शरीरके दोष गौके गोरससे दूर होते हैं। गौके पदार्थ रोग दूर करते हैं और पोषण भी करते हैं।

१२ मधु अर्थात् शहदका उपयोग अश्विनौ देव करते थे। इनके रथमें मधका घडा रहता था। रोगीको ये औषध मधमें मिलाकर देते थे। मध स्वयं उत्तम पौष्टिक है और जिस औषधके साथ वह दिया जाता है, उस औषधका गुण वह पूर्णरूपसे रोगीके शरीरमें पहुंचा देता है। इस-लिये अश्विदेवोंके रथमें मधका घडा रहता था।

१३ ये अश्विदेव शरीरका रक्षण करनेमें सिद्धहस्त थे। ये जरारहित अर्थात् नित्य तरुण थे। आयु बहुत होनेपर भी ये तरुण जैसे दीखते थे। अर्थात् ये अपने शरीरको भी उत्तम अवस्थामें सदा रखते थे। वृद्धोंको भी तरुण बनाते थे। आयु बहुत होनेपर भी नित्य तरुण रहते थे। इनके

अन्दर कोई दोष नहीं था। ये अपना शरीर सदा सुंदर रखते थे, और सदा उत्साही रहते थे।

१४ समयको वे जानते थे। यह समय कैसा है यह उनको मालूम होता था। वर्ष, ऋतु, मास, दिन कैसा है, इस समय क्या करना चाहिये इसका ज्ञान उनको था। ऋतुका विज्ञान उनको था। किस ऋतुमें कौनसे रोग होते हैं, उनसे बचनेके लिये क्या करना चाहिये इससे वे परिचित थे। मानवी आयुष्यमें भी ऋतु होते हैं। इन ऋतुओंमें मनुष्यने कैसा आचरण करना चाहिये, इस विषयको वे जानते थे। इस ज्ञानसे वे अनिंद्य किंवा प्रशंसा योग्य आचरण करते थे।

१५ अपने सुयोग्य मार्गसे वे कभी भ्रष्ट नहीं होते थे। कोई इनको दबाकर इनसे अयोग्य आचरण करावे यह हो नहीं सकता था। ये अनुशासनके अनुसार चलते थे। अनुशासनमें ये रहते थे। इसलिये सबपर इनका प्रभाव पडता था। सत्य मार्गपर ये चलते थे। सत्य और सरलताकी वृद्धि ये करते थे अर्थात् जो इनके संसर्गमें आजाय उनको भी सत्य और सरल मार्गपर ये चलाते थे। अनुशासनमें रहनेसे व्यक्तिका तथा राष्ट्रका कल्याण होता है यह इनका निश्चय था।

हरएक कार्य दक्षतासे ये करते थे। नहीं तो रोगीको आरोग्य निश्चयसे प्राप्त करा देनेका कार्य इनसे होना असंभव होगा। रोगीको भी ये नियमोंसे ही चलाते थे। दक्षता इनके कार्यमें सदा रहती थी। ये गुप्तताकी रक्षा करते थे। यह गुण वैद्योंमें रहना आवश्यक है। रोगियोंकी गुप्त बातें जानकर उनको प्रकट करना यह बडा दोष है। ऐसा वैद्योंको करना नहीं चाहिये। इसलिये सब रोगियोंकी गुप्त बातोंको ये गुप्त ही रखते थे।

१६ इनका आचरण दोषरहित रहता था। शरीर, मन तथा आचार व्यवहारमें इनसे दोष नहीं रहता था। रोगीका रोग दूर होजाय और उनका स्वास्थ्य उत्तम रीतिसे सुरक्षित रहे, इसके लिये जो करना आवश्यक होजाय, वह सब ये अश्विनौ देव करते थे। ये अपने साथ कुशल पुरुषोंको रखते थे। औषध निर्माण, औषधोंका वितरण, शस्त्रक्रिया आदि कार्य ये करते थे। इन कार्योंको योग्य रीतिसे करनेके लिये जिस तरहके कुशल लोग चाहिये उस तरहके कुशल लोग इनके पास सदा रहते थे और उनसे सब कार्य ये उत्तम रीतिसे कराते थे।

१७ मानवोंका निवास जिस रीतिसे सुखमय हो उस रीतिका अवलंबन ये करते थे। इसमें इनसे कसूर नहीं होती थी। ऐसा निर्विघ्नताके साथ करनेके लिये जितना बल चाहिये, उतना बल इनके पास था। ओहदेदारीकी दृष्टिसे यह करनेके लिये जो सामर्थ्य चाहिये वह उनमें था। उग्रता भी जितनी चाहिये उतनी इनमें थी, अन्यथा हरएक कार्य यथायोग्य रीतिसे होना असंभव है। अतः समयपर ये आवश्यक उग्रता, कठोरता भी दिखाते थे

सबका कल्याण करनेके लिये ये सदा कटिबद्ध रहते थे। प्रजाजनोंमें कोई रोगी न हो, कोई निर्बल न हो, सबके सब अवश्य हृष्टपुष्ट हों, कार्यक्षम हों इसलिये जो ज्ञान चाहिये, जो कुशलता चाहिये, जो व्यवस्था चाहिये वह सब इनमें थीं। उन शक्तियोंसे ये युक्त थे। इसलिये इनको कोई कठिनता प्रतीत नहीं होती थी। जो कर्तव्य आता था वह निर्दोष रीतिसे ये करते थे और सबका हित ये उत्तम रीतिसे करते थे। इसलिये लोग इनको निष्कलंक कहते थे। ये जो कार्य करते थे वह सत्यके प्रेमसे और अपना कर्तव्य समझकर करते थे। मनकी शुभ भावनासे ये सब कार्य करते थे।

१८ रोगियोंकी चिकित्सा करनेके लिये चारों ओर भ्रमण करना आवश्यक ही होता है। इसलिये ये आवश्यक हो इतना भ्रमण करते थे। रोग निवारण करनेकी इच्छासे वैद्योंको भ्रमण करना आवश्यक ही होता है। यह भ्रमण वे न करें, तो उनका कार्य ठीक रीतिसे हो ही नहीं सकता।

किसी समय वेगसे जानेकी आवश्यकता हो तो ये वेगसे जाते थे। ये अपने हवाई जहाजसे भी जाते थे। अथवा इनके खच्चरोंके तथा घोडोंके रथ तो थे ही। इनका जाना विना प्रतिबंध सर्वत्र होता था।

इनके रथ उत्तम होते थे। इनके रथमें उपचारके साधन रहते थे। श्येन पक्षीके समान ये आकाशमें भी संचार करते थे। श्येन पक्षी बडे वेगसे उडते हैं, वैसे ये बडे वेगसे आकाशमेंसे जाते थे। और जहां पहुंचना चाहिये वहां शीघ्र पहुंचते थे।

१९ इन अश्विनौंका स्वभाव उदार था। दान देनेमें

इनकी सहज प्रवृत्ति थी। रोगीकी चिकित्सा ये किसी भी लालचसे नहीं करते थे, परंतु रोगीका कल्याण हो इस सदिच्छासे ही वे सब कार्य उपकार करनेकी भावनासे करते थे।

२० जो कार्य करना होता है वह शीघ्रताके साथ ये अश्विनौ देव करते थे। कार्य करनेसे वे थकते नहीं थे। वे अपने शास्त्रोंका अर्थात् चिकित्साशास्त्रका उत्तम अध्ययन करके चिकित्सामें अति प्रवीण बने थे। ये विद्यामें निपुण थे, ये विद्यावृद्ध अथवा ज्ञानवृद्ध थे। सुवर्णके समान ये तेजस्वी थे। ये अपने चिकित्साके कार्यमें प्रवीण थे।

यहां स्वास्थ्यमंत्रीके अन्दर कौनसे गुण चाहिये इसका संक्षेपसे वर्णन हुआ है। वैदिक समयमें आरोग्यमंत्री इन गुणोंसे योग्य होते थे।

आज भारतमें ' स्वराज्य व्यवस्था ' चली है। इसमें जो आरोग्य मंत्री रखे जाते हैं उनमें कौनसे गुण हैं इसकी तुलना पाठक इन गुणोंके साथ करें और विचार करके निश्चित करें कि वैदिक कालके आरोग्यमंत्री अच्छे थे या आजके अच्छे हैं।

वेदमंत्रोंमें देवोंके वर्णन हैं। देवोंने क्या किया था, या देव क्या करते थे, यह वर्णन है। यह किस लिये है यह प्रश्न महत्त्वका है। शतपथ ब्राह्मणमें कहा है कि " यत् देवा अकुर्वन्, तत् करवाणि " जो देव करते रहे वह मैं करूंगा। देव जगत्‌का हित करते रहते हैं। ' देवो, दानाद्वा, द्योतनाद्वा ' देव दान देता है और प्रकाश देता है। जो दान देता है, जो प्रकाश देता है वे ही देव हैं। जो दान देकर आवश्यकता दूर करता है, जो प्रकाश देकर मार्गदर्शन करता है वह देव है। दूसरोंको ऐसी सहायता देव करते हैं। मनुष्य भी ऐसी सहायता देनेका, प्रकाश बतानेका कार्य करें।

यहां अश्विनौ देव नीरोगिता उत्पन्न करते हैं, रोगियोंके रोग दूर करते हैं, आरोग्यका रक्षण करते हैं, आरोग्यके संरक्षणका मार्ग बताते हैं। हम वैसा करते रहें, यह मनुष्योंके लिये मार्गदर्शन यहां मिलता है।

अब इसके पश्चात् आरोग्य मंत्रीके कार्य जो: वेदमंत्रोंमें वर्णित हुए हैं वे कौनसे हैं इसका विचार करेंगे।



प्रश्न



१ वेदकी जानराज्यकी व्यवस्था कैसी है वह बताइये।
२ देवताएं विश्वराज्यके मंत्री हैं यह कुछ उदाहरण देकर सिद्ध कीजिये।
३ ब्रह्माण्डमें, पिण्डसमूहमें (राष्ट्रमें), तथा पिण्डमें, नियमकी समानता कैसी है यह बताइये।
४ शरीरमें कहां कौनसी देवताएं है यह बताइये।
५ शरीरमें इन्द्रशक्ति कहां उत्पन्न होती है और वह हमें कैसी उपयोगी होती है यह बताइये।
६ शरीरमें अश्विनौ देवता कहां कैसी रहती हैं।
७ अश्विनौ विद्वान् और बुद्धिमान् हैं इसके प्रमाण दीजिये।
८ अश्विनौ ' गंभीर ' हैं इसके प्रमाण दीजिये।
९ अश्विनौ शत्रुका नाश करते हैं इसके प्रमाण दीजिये।
१० वेदमें रोगकृमियोंके वाचक कौनसे पद हैं और ये रोगकृमि किस रीतिसे नष्ट होते हैं ?
११ अश्विनौ प्रातःकालमें उठकर क्या करते हैं ?
१२ अश्विनौ रत्नोंका क्या उपयोग करते हैं ?
१३ आरोग्यमंत्रीके पास संरक्षक सैन्य था यह सिद्ध कीजिये।
१४ अश्विनौ कल्याण करते थे यह सिद्ध कीजिये।
१५ अश्विनौ मधका क्यों उपयोग करते थे ?
१६ अश्विनौ सुन्दर थे और तरुण थे यह सिद्ध कीजिये।
१७ अनुशासनशील थे थे इसके प्रमाण दीजिये।
१८ अश्विनौ अपने कार्यमें प्रवीण थे यह सिद्ध कीजिये।
१९ अश्विनौके वाहन कौनसे थे और वे कैसे थे यह बताइये।
२० शतपथ और निरुक्तमें जो अश्विनौका वर्णन है उससे अश्विनौके कौनसे कर्म सिद्ध होते हैं ?
२१ नासिकामें रहनेवाले अश्विनौ कौनसे हैं और वे वहां क्या करते हैं ?



वेदके व्याख्यान

वेदोंमें नाना प्रकारके विषय हैं, उनको प्रकट करनेके लिये एक एक व्याख्यान दिया जा रहा है। ऐसे व्याख्यान २०० से अधिक होंगे और इनमें वेदोंके नाना विषयोंका स्पष्ट बोध हो जायगा।

मानवी व्यवहारके दिव्य संदेश वेद दे रहा है, उनको लेनेके लिये मनुष्योंको तैयार रहना चाहिये। वेदके उपदेश आचरणमें लानेसे ही मानवोंका कल्याण होना संभव है। इसलिये ये व्याख्यान हैं। इस समय तक ये व्याख्यान प्रकट हुए हैं।

१ मधुच्छन्दा ऋषिका अग्निमें आदर्श पुरुषका दर्शन।
२ वैदिक अर्थव्यवस्था और स्वामित्वका सिद्धान्त।
३ अपना स्वराज्य।
४ श्रेष्ठतम कर्म करनेकी शक्ति और सौ वर्षोंकी पूर्ण दीर्घायु।
५ व्यक्तिवाद और समाजवाद।
६ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।
७ वैयक्तिक जीवन और राष्ट्रीय उन्नति।
८ सप्त व्याहृतियाँ।
९ वैदिक राष्ट्रगीत।
१० वैदिक राष्ट्रशासन।
११ वेदोंका अध्ययन और अध्यापन।
१२ वेदका श्रीमद्भागवतमें दर्शन।
१३ प्रजापति संस्थाद्वारा राज्यशासन।
१४ त्रैत, द्वैत, अद्वैत और एकत्वके सिद्धान्त।
१५ क्या यह संपूर्ण विश्व मिथ्या है?
१६ ऋषियोंने वेदोंका संरक्षण किस तरह किया?
१७ वेदके संरक्षण और प्रचारके लिये आपने क्या किया है?
१८ देवत्व प्राप्त करनेका अनुष्ठान।
१९ जनताका हित करनेका कर्तव्य।
२० मानवके दिव्य देहकी सार्थकता।
२१ ऋषियोंके तपसे राष्ट्रका निर्माण।
२२ मानवके अन्दरकी श्रेष्ठ शक्ति।
२३ वेदमें दर्शाये विविध प्रकारके राज्यशासन।
२४ ऋषियोंके राज्यशासनका आदर्श।
२५ वैदिक समयकी राज्यशासन व्यवस्था।
२६ रक्षकोंके राक्षस।
२७ अपना मन शिवसंकल्प करनेवाला हो।
२८ मनका प्रचण्ड वेग।
२९ वेदकी दैवत संहिता और वैदिक सुभाषितोंका विषयवार संग्रह।
३० वैदिक समयकी सेनाव्यवस्था।
३१ वैदिक समयके सैन्यकी शिक्षा और रचना।
३२ वैदिक देवताओंकी व्यवस्था।
३३ वेदमें नगरोंकी और वनोंकी संरक्षण व्यवस्था।
३४ अपने शरीरमें देवताओंका निवास।
३५, ३६, ३७ वैदिक राज्यशासनमें आरोग्य-मन्त्रीके कार्य और व्यवहार।

आगे व्याख्यान प्रकाशित होते जायगे। प्रत्येक व्याख्यानका मूल्य ।=) छः आने रहेगा। प्रत्येकका डा. व्य. =) दो आना रहेगा। दस व्याख्यानोंका एक पुस्तक सजिल्द लेना हो तो उस सजिल्द पुस्तकका मूल्य ५) होगा और डा. व्य. १।।) होगा।

मंत्री — स्वाध्यायमण्डल, पोस्ट- 'स्वाध्यायमण्डल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]

मुद्रक और प्रकाशक- व. श्री. सातवलेकर, भारत-मुद्रणालय, पो.- 'स्वाध्याय मण्डल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]



वैदिक व्याख्यान माला — ३३ वाँ व्याख्यान

[अश्विनौ देवताके मन्त्रोंका निरीक्षण]

वैदिक राज्यशासनमें आरोग्यमन्त्रीके कार्य और व्यवहार

[२]

[यह व्याख्यान नागपूर विश्वविद्यालयमें ता. ३०-१२-५७ के दिन हुआ था]

लेखक
पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर
साहित्य-वाचस्पति, वेदाचार्य, गीतालङ्कार
अध्यक्ष- स्वाध्याय मण्डल

स्वाध्यायमण्डल, पारडी

मूल्य छः आने

ॐ

[अश्विनौ देवताके मन्त्रोंका निरीक्षण]

वैदिक राज्यशासनमें आरोग्यमन्त्रीके कार्य और व्यवहार

[दूसरा व्याख्यान]

१ अत्रि ऋषिकी सुश्रूषा

असुरोंका राज्य था। उस असुर राज्यको तोडनेके लिये और वहां आर्योंका राज्य स्थापन करनेके लिये अत्रिऋषिके नेतृत्वमें बडी हलचल चल रही थी। अत्रिऋषि नेता थे और उनके नेतृत्वमें रहकर अनेक ऋषि यह असुरोंके विरुद्ध हलचल चला रहे थे। इस वृत्तांतको बतानेवाला यह मंत्र है—

कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजःऋषिः।

हिमेन अग्निं घ्रंसं अवारयेथां
पितुमतीं ऊर्जं अस्मा अधत्तम्।
ऋबीसे अत्रिं अश्विना अवनीतं
उन्निन्यथुः सर्वगणं स्वस्ति ॥ ऋ० १।११६।८

१ अश्विनौ सर्वगणं अत्रिं, ऋबीसे अवनीतं, स्वस्ति उन्निन्यथुः— अश्विदेवोंने सब अनुयायियोंके साथ अत्रिऋषिको, जो कि कारावासमें नीचे रखा था उसको ऊपर लाया।

यहां कहा है कि अत्रिके साथ (सर्वगणं) अनेक अनुयायी थे। ये सब अत्रिके साथ हलचलमें शामिल थे। ये सब कारावासमें रखे गये थे। यह कारागृह (अवनीतं) भूसमतल भागसे नीचा था। तब घर जैसा था। ऐसे कठोर कष्ट ये ऋषिगण इस कारावासमें भोग रहे थे। इन ऋषियोंको अश्विदेवोंने (स्वस्ति उन्निन्यथुः) सुखदायी रीतिसे ऊपर लाया। जेलखानेसे इन ऋषियोंको बाहर लाया। अर्थात् अश्विदेव प्रजापक्षका साथ कर रहे थे।

२ पितुमतीं ऊर्जं अस्मै अधत्तम्— पुष्टिकारक और बल बढानेवाला अन्न उन ऋषियोंको अश्विदेवोंने दिया। ये ऋषि कारावाससे अत्यंत कृश तथा शरीरसे निर्बल हुए थे। अतः इनको पुष्टिकारक, बल बढानेवाला, शीघ्र पचनेवाला अन्न दिया गया और इनको शीघ्र हृष्टपुष्ट बना दिया।

ऐसे योग्य अन्न अश्विदेवोंने तैयार किये थे। जो इन्होंने इन ऋषियोंको दिये। इससे ये ऋषिगण शीघ्र कार्य करनेमें समर्थ हुए। उत्तम वैद्य ही ऐसे अन्न तैयार कर सकते हैं जिनमें औषधियोंका मिश्रण किया होगा। और चातुर्यसे कुछ विशेष भी किया ही होगा। (पितुमतीं ऊर्जं) ये शब्द विशेष प्रकारके अन्नके सूचक हैं। साधारण भोजनसे यह अन्न विशेष गुणोंसे युक्त था इसमें संदेह नहीं है।

३ घ्रंसं अग्निं हिमेन अवारयेथां— धधकते हुए अग्निको हिमसे-बर्फसे-अथवा जलसे हटा दिया। अर्थात् तब घरमें इन ऋषियोंको असुरोंने रखा था। और अग्निकी उष्णतासे और धूंवेसे ऋषियोंको कष्ट पहुंचे इस दुष्ट उद्देश्यसे असुरोंने आजुबाजू अग्नि भी जलाया था, जिससे कारावासमें पडे ऋषियोंको बडे कष्ट होते थे। अश्विदेवोंने पानीसे उस अग्निको शान्त किया।

यहां हम देखते हैं कि असुर सम्राट् ऋषियोंका विरोधी था, ऋषियोंकी हलचल तोडनेका यत्न वह करता था और जनताके नेता ऋषियोंकी सहायता करते थे। ऋषियोंको कारावाससे कारागृह तोडकर छुडाते थे, और उनको उत्तम सहज पचनेवाला पुष्टिकारक और बल बढानेवाला अन्न देकर हृष्टपुष्ट करते थे।

सांख्यः अत्रि ऋषि ।

त्यं चिदत्रिं ऋतजुरं अर्थं अश्वं न यातवे ।
कक्षीवन्तं यदी पुना रथं न कृणुथो नवम् ॥१॥
त्यं चिदश्वं न वाजिनं अरेणवो यमत्नत ।
दृळ्हं ग्रंथिं न विष्यतं अत्रिं यविष्ठमा रजः ॥२॥
नरा दंसिष्ठौ अत्रये शुभ्रा सिपासतं धियः ॥३॥
ऋ० १०।१४३

१ त्यं ऋतजुरं अत्रिं, यातवे, अश्वं न, अर्थं कृणुथः— उस जर्जर बने अत्रिऋषिको, घोडेके समान चलने-फिरने योग्य, समर्थ बनाया । कारावासमें पडनेके कारण अत्रिऋषि अतिकृश बना था, उसको फिर चलने-फिरने योग्य, घोडेके समान हृष्टपुष्ट बना दिया ।

२ नवं रथं न पुनः कक्षीवन्तं इव कृणुथः— रथ जैसा दुरुस्त करके नया बनाते हैं, वैसा तुमने कक्षीवान्‌के समान, अत्रि ऋषिको पुनः नयासा हृष्टपुष्ट बनाया ।

३ अत्रिं यविष्ठं दृळ्हं ग्रंथिं न आ विष्यतं— अत्रिको बलवान् बनाया, सख्त गांठको खोलनेके समान, उस ऋषिको मुक्त किया, बंधनसे छुडाया ।

४ अत्रये धियः सिपासतं— अत्रिके लिये बुद्धि भी प्रदान की । अर्थात् कारावासके कारण जो क्षीणता आगयी थी, वह तुमने दूर की, जिससे वह ऋषि पुनः पूर्ववत् बुद्धिके कार्य करनेमें समर्थ हुए । इससे यह सिद्ध हो रहा है, कि अत्रिका केवल शरीर ही नहीं ठीक किया, परंतु उसके मनबुद्धिको भी सामर्थ्यवान् बनाया ।

(अश्वं न यातवे) घोडेके समान चलने फिरनेके लिये अत्रिको समर्थ बनाया । इससे स्पष्ट हो रहा है, कि उनके दिये अन्नमें ऐसी शक्ति बढानेका सामर्थ्य था ।

कुत्स आंगिरस ऋषि कहते हैं—

तप्तं घर्मं ओम्यावन्तं अत्रये ॥ ७ ॥
याभिः अत्रये० ईषथुः ॥ १६ ॥ ऋ. १।११२

'अत्रिके लिये तपे स्थानको सुखदायी और शान्त बनाया । जिन साधनोंसे अत्रिको पुनः ठीक किया ।'

इस कथनमें वही बातें हैं कि जो पूर्वोक्त मंत्रमें वर्णन की हैं । अब कक्षीवान् ऋषिका मंत्र देखिये—

कक्षीवान् ऋषिका यह मंत्र और स्पष्ट कर रहा है—

ऋषिं नरौ अंहसः पांचजन्यं
ऋबीसादत्रिं मुञ्चथो गणेन ।
मिनन्ता दस्योः अशिवस्य माया
अनुपूर्वं वृषणा चोदयन्ता ॥ ऋ. १।११७।३

हे (वृषणौ नरौ) बलवान् नेताओ !

१ पांचजन्यं अत्रिं ऋषिं ऋबीसात् गणेन मुञ्चथः—पञ्चजनोंका हित हो इसलिये अत्रिऋषि हलचल कर रहे थे । उसको अनुयायियोंके साथ कारावाससे तुमने छुडाया । अत्रिऋषिकी हलचल ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद इन पांचों प्रकारके लोगोंका हित करनेके लिये थी । और असुर राजा पांचों लोगोंका अहित हो ऐसा राज्य-शासन करता था ।

२ अशिवस्य दस्योःमाया मिनन्तौ, अनुपूर्वं चोदयन्तौ— अशुभ दस्यु राज्यशासकके कपट जाल जानकर, उनको-उन मायाजालोंको- एकके पीछे दूसरे, इस तरह तुम दूर करते रहे ।

यहां अत्रिऋषिकी हलचल पंचजनोंका हित कर रही थी । तथा असुर दस्यु प्रजाका अहित हो ऐसा राज्यशासन कर रहे थे, यह स्पष्ट हुआ । असुर राजाके कपट प्रयोगोंको निष्फल बनाना, उनको यथा योग्य रीतिसे जानना और उनमें प्रजाजन न फंसे ऐसा करना अश्विदेवोंका तथा अत्रि-ऋषिका प्रयत्न था । कारावासके कारण कृश बने ऋषियोंको पुनः शीघ्र शक्तिवान् बनाना यह अश्विदेवोंका कार्य था ।

कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः ।

युवमत्रयेऽवनीताय तप्तं
ऊर्जं ओमानं अश्विनौ अधत्तम् ॥ ऋ. १।११८।७
हिमेन घर्मं परितप्तं अत्रये ॥ ऋ. १।११९।६

अगस्त्यो मैत्रावरुणिः ।

युवं ह घर्मं मधुमन्तं अत्रये ।
अपो न क्षोदोऽवृणीतं एषे ॥ ऋ. १।१८०।४

तुम दोनों अश्विदेवोंने अत्रि ऋषिके लिये तपे गरम स्थानको ठंडा कर दिया और उस ऋषिको सुख हो ऐसा किया । तथा—

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः ।

चित्रं ह यद् वां भोजनं न्वस्ति
न्यत्रये महिष्वन्तं युयोतम् ।
यो वां ओमानं दधते प्रियःसन् । ऋ. ७।६८।५

तुमने अत्रिके लिये जो भोजन तैयार करके दिया था, वह (चित्रं नु अस्ति) सचमुच विलक्षण और आश्चर्यकारक था। तथा वह (अत्रये महिष्मन्तं नि युयोतन) अत्रिके लिये उसकी शक्ति बढानेके हेतुसे तुमने दिया था। तुम्हारी सहायतासे वह अत्रि (वां ओमानं दधते) आपका सुरक्षित आश्रय प्राप्त करता है क्योंकि वह (यः वां प्रियः सन्) आपको प्रिय है।

अश्विदेवोंने अत्रिको ऐसा भोजन दिया कि जिसके सेवन करनेसे निर्बल हुए अत्रि ऋषि पुनः अपना कार्य करनेमें समर्थ हुए। वैद्योंके लिये यह योग्य है कि वे ऐसा भोजन, अथवा पाक अथवा खानेके पदार्थ तैयार करके निर्बलोंको दें कि जिनके खानेसे वे निर्बल पुनः हृष्टपुष्ट तथा बलवान् बन सकें। पुनः देखिये—

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः ।

निः अंहसः तमसः स्पर्त अत्रिं ॥ ऋ. ७।७१।५

ब्रह्मातिथिः काण्वः ।

आवतं० अत्रिं ॥ ऋ. ८।५।२५

गोपवन आत्रेयः ।

उपस्तृणीतं अत्रये गृहं कृणुत युवं अश्विना ।
दधते वल्वं अत्रये ॥ ऋ. ८।७३।७-८

काक्षीवती घोषा ।

युवं ऋबीसं उत तप्तं अत्रये ओमवन्तं चक्रथुः ।
ऋ. १०।३९।९

सप्तवध्रिरात्रेयः ।

अत्रिर्यद् वां अवरोहद् ऋबीसं
अजोहवीत् नाधमानेव योषा ।
श्येनस्य चित् जवसा नूतनेन
आगच्छतं अश्विना शंतमेन ॥ ऋ. ५।७८।४

अश्विदेवोंने अत्रिका तपा हुआ स्थान सुखावह शान्त किया। जिस समय कारावासमें अत्रिको रखा, उस समय उसने अश्विदेवोंकी प्रार्थना की। अनाथ स्त्री जैसी प्रार्थना करती है वैसी प्रार्थना उसने की। आपने वह सुनी और तरुण श्येन पक्षीके वेगसे आप वहां पहुंचे और उसको आराम पहुंचाया।

इस वृत्तान्तमें स्पष्ट रीतिसे कहा है कि अश्विदेव किस तरह दुर्बलोंको सबल बनाते थे। किस तरह पुष्टिकारक अन्न तैयार करके दुर्बलोंको देते थे और उनको कार्यक्षम किस रीतिसे बनाते थे।

यह रुग्ण शुश्रूषाका कार्य है।

२ रुग्णशुश्रूषाके वैमानिक पथक

अश्विदेव विश्व साम्राज्यके आरोग्यमन्त्री होनेके कारण रुग्णोंकी शुश्रूषा और चिकित्सा करनेका कार्य उनके आधीन था। विदेशी कपटी राज्यके विरुद्ध हलचल करनेवाले पंचजनोंके हितकर्ता अत्रिऋषिकी शुश्रूषा उन्होंने कैसी की थी, इसका वृत्तान्त हमने देखा। अनुयायियोंके साथ अत्रि ऋषिको पुनः पूर्ववत् स्फूर्तिला बनाया यह हमने देखा। अब सैनिकोंके लिये रुग्णपथक थे और उनकी शुश्रूषा करनेवाले वैमानिक पथक थे, और उनकी सुव्यवस्था कैसी थी, यह देखना है। यदि वैमानिक पथक थे ऐसा सिद्ध हो जाय, तो साधारण शुश्रूषा पथक थे, यह स्वयंसिद्ध हो जाता है। इस लिये हम प्रथम वैमानिक पथकोंका ही विचार करेंगे—

कुत्स आंगिरस ऋषिः ।

भुज्युं याभिः अव्यथिभिः जिजिन्वथुः ॥ ६ ॥
भुज्युं याभिः अवथः ॥ २० ॥ ऋ. १।११२।६;२०

'हे अश्विदेवों! जिन सुखदायी साधनोंसे तुमने भुज्युका संरक्षण किया था।' इन मन्त्रोंमें 'अव्यथिभिः' अर्थात् व्यथा न देनेवाले वे साधन थे, ऐसा कहा है। साधन रोगियोंकी शुश्रूषा करनेके थे और वे ऐसे थे कि जिनसे रोगियोंको बिलकुल कष्ट नहीं होता था। ऐसे उत्तम साधन अश्विदेवोंने तैयार किये थे। इस विषयमें और मन्त्र देखिये—

कक्षीवान् दैर्घतमस औशिज ऋषिः ।

तुग्रो ह भुज्युं अश्विना उदमेघे
रयिं न कश्चित् ममृवाँ अवाहाः ।
तं ऊहथुः नौभिः आत्मन्वतीभिः
अन्तरिक्षप्रुद्भिः अपोदकाभिः ॥ ३ ॥

*

तिस्रः क्षपः त्रिः अहा अतिव्रजद्भिः
नासत्या भुज्युं ऊहथुः पतङ्गैः ।
समुद्रस्य धन्वन्नार्द्रस्य पारे
त्रिभी रथैः शतपद्भिः षळश्वैः ॥ ४ ॥
अनारम्भणे तदवीरयेथां
अनास्थाने अग्रभणे समुद्रे ।
यद् अश्विना ऊहथुः भुज्युं अस्तं
शतारित्रां नावं आतस्थिवांसम् ॥ ५ ॥

ऋ. १।११६।३-५

युवं तुग्राय पूर्व्येभिः एवैः
पुनर्मन्यौ अभवतं युवाना ।
युवं भुज्युं अर्णसो निः समुद्रात्
विभिः ऊहतुः ऋज्रेभिः अश्वैः ॥ १४ ॥
अजोहवीद् अश्विना तौग्र्यो वां
प्रोळ्हः समुद्रं अव्यथिभिः जगन्वान् ।
निः तं ऊहथुः सयुजा रथेन
मनो जवसा वृषणा स्वस्ति ॥ १५ ॥

ऋ. १।११७।१४-१५

१ कश्चित् ममृवान् रयिं न— जैसा कोई मरनेवाला अपने धनको यहां छोडता है, और मरता है उस तरह,

२ तुग्रः भुज्युं उदमेघे अवाहाः— तुग्र राजाने अपने पुत्र भुज्युको समुद्रमें छोड दिया। तुग्र नामक राजाने दूसरे राज्यपर आक्रमण करनेके लिये सेनाके साथ अपने पुत्र भुज्युको समुद्रमेंसे भेजा।

३ समुद्रस्य आर्द्रस्य पारे धन्वन्— वह भुज्यु पानीसे भरपूर भरे समुद्रके परे जो रेतका मैदान है उसके समीप पहुंचा था। इतनी दूरीपर वह सैन्यके साथ गया था। वहां उसने युद्ध किया, परन्तु उसका पराभव हुआ और वह भुज्यु सेनाके साथ डूबने लगा।

४ अनारम्भणे अग्रभणे समुद्रे तत् अवीरयेथां— जिसका आरम्भ और अन्त नहीं है, जिसमें आधार किसीका नहीं मिल सकता, ऐसे अगाध समुद्रमें भुज्यु अपनी सेनाके गया था, वहां पराभूत होकर वह कष्ट भोग रहा था। ऐसी अवस्थामें—

५ अश्विना ! तौग्र्यः वां अजोहवीत्— हे अश्विदेवो ! तुग्र राजाके पुत्रने उस पराभूत अवस्थामें आपको बुलाया। आपने उनका शब्द सुना और आप वहां गये।

६ तं ऊहथुः आत्मन्वतीभिः नौभिः अन्तरिक्षप्रुद्भिः अपोदकाभिः— उस भुज्युको तुमने अपने अन्तरिक्षमेंसे जानेवाली मेघमण्डलके जलस्थानमें संचार करनेवाली, इच्छानुसार चलनेवाली आकाशनौकाओंसे ऊपर उठाया।

ये विमान थे इसमें सन्देह नहीं है। क्योंकि (अन्तरिक्षप्रुद्भिः) अन्तरिक्षसे वे जाते हैं, अन्तरिक्षमें मेघमण्डलमें जो जल है (अप-उदकाभिः) उस उदकको ये जहाज स्पर्श कर रहे थे और ये जहाज (आत्मन्वतीभिः) आत्मा जिस तरह स्वेच्छापूर्वक हलचल करता है उस तरह ये हवाई जहाज चलनेवालेकी इच्छानुसार चलाये जाते थे। इस प्रकारके ये उत्तम हवाई जहाज थे।

७ त्रिभिः रथैः शतपद्भिः षडश्वैः— ये हवाई जहाज तीन थे, इनको सौ पग थे और छः छः अश्व शक्तिवाले ये पग थे। ये तीन रथ थे यह पूर्वोक्त स्थानमें 'नौभिः अन्तरिक्षप्रुद्भिः' इन पदोंसे भी सिद्ध होता है। क्योंकि ये पद बहुवचनमें हैं।

८ तिस्रः क्षपः त्रिः अहा अतिव्रजद्भिः पतङ्गैः भुज्युं नासत्या ऊहथुः— तीन रात्री और तीन दिन अति वेगसे चलनेवाले पक्षी जैसे आकाश यानोंसे अश्विदेवोंने भुज्युको उठाकर लाया। यहां 'पतङ्गैः' पद पक्षी जैसे आकाश यानोंका स्पष्ट वाचक है। 'वीभिः' यह पद भी पक्षी जैसे आकाश यानोंका ही भाव बता रहा है। तीन आकाश यान थे, इससे भुज्युके साथ अन्य सैनिक भी थे, यह स्पष्ट होजाता है। नहीं तो अकेले भुज्यु नामक राजकुमारको तीन आकाश यानोंकी जरूरत नहीं है। तीन अहोरात्र अतिवेगसे चलनेवाले ये हवाई जहाज थे। इससे पता लगता है कि भुज्यु आफ्रिकाके रेतीले प्रदेशके समीप किसी देशमें गया होगा। नहीं तो हवाई जहाज इतने समय क्यों घूमता रहेगा।

घण्टेमें सौ मील भी आकाश यान गया तो भी ७२ घण्टोंमें ७२०० मील तो जायेगा ही। कमसेकम इतना दूर तो वह स्थान होगा ही जहां भुज्युका पराभव हो गया था।

हवाई जहाज तीन अहोरात्र आज भी एक वेगसे आकाशमें रह नहीं सकता। और यहां तो तीन अहोरात्र एकसा बडे वेगसे उडनेका उल्लेख है। किस यंत्र शक्तिसे यह गति मिलती थी इसका पता वेदसे नहीं मिलता।

कई लोगोंका मत है कि वह 'पारदयंत्र' थे जिससे ये विमान चलते थे। पारेकी भाप करके यंत्रको गति देनी और पुनः उस भापका पारा बनाना। इससे सतत गति मिल सकती है। दूसरोंका कहना है कि घण्टेमें सौ डेढसौ मील उडनेवाले पक्षी उत्तर ध्रुवके पास हैं। उनको विमानोंमें लगाया जाता था। इस तर्कमें कौनसा सत्य है इसकी खोज कोई विद्वान् करे। आज हमारे पास कोई साधन नहीं है कि जिनसे इन विमानोंको गति देनेके साधन कौनसे थे यह हम जान सकें। पर ये विमान थे इसमें संदेह नहीं। क्योंकि वैसे अर्थके पद उक्त मंत्रोंमें हैं और उनका दूसरा कोई अर्थ हो नहीं सकता।

९ **मनोजवसा सयुजा रथेन तं स्वस्ति निः ऊहथुः—** मनके वेगसे चलनेवाले संयुक्त रथसे उस भुज्युको अश्विदेव ले जाते थे। अति वेगसे वह रथ जाता था, परंतु अन्दर बैठनेवालेको (स्वस्ति) आराम मिलता था। ऐसे वे रथ उत्तम थे।

(अजोहवीत् तौग्र्यो वां) अर्थात् इतनी दूरसे भुज्युने अश्विदेवोंके पास संदेश भेजा और अश्विदेव इतनी दूर विमान लेकर चले गये। इससे पता लगता है कि संदेश शीघ्र भेजनेका कोई "शीघ्रगामी साधन" उस समय अवश्य था। नहीं तो तीन अहोरात्र विमानके प्रवास पर जो राजपुत्र पडा था, उसका पता उसके घर या अश्विदेवोंको किस तरह लग सकता है।

१० **युवं तुग्राय पूर्वेभिः एवैः पुनः मन्यौ अभवतम्—** इन सहायताओंसे तुम दोनों तुग्र राजाके लिये पुनः माननीय होगये। इससे पता चलता है कि इमसे अश्विदेवोंका संमान तुग्रके दरबारमें पूर्वकी अपेक्षा अधिक होने लगा। जब राजपुत्रको उन्होंने सुरक्षित घर पहुंचाया, तब उनका संमान बढना स्वाभाविक ही है। इतनी दूरसे राजकुमार अपने अनुयायियोंसे सुरक्षित वापस घर आया, यह आनंदकी बात है इसमें क्या संदेह है।

११ **यद् अश्विना भुज्युं अस्तं ऊहथुः शतारित्रां नावं आतस्थिवांसम्—** अश्विदेवोंने भुज्युको घर पहुंचा दिया, चलानेके साधन सौ जिसको लगे हैं वैसी नौकामें बिठलाकर घर भुज्युको पहुंचाया। नौका शब्द नावका वाचक ही नहीं है, हवाई जहाज कहते हैं, हवाई नौका भी कहा जा सकता है। 'विभिः, पतङ्गैः, अन्तरिक्षप्रुद्भिः' आदि पद स्पष्टतासे विमानके ही वाचक हैं। यही भाव 'नौ, रथ' आदि पदोंका मानना योग्य है।

ये विमान रुग्णोंकी शुश्रूषा करनेके थे। अश्विनौ देव वैद्य थे। वैद्यकी आवश्यकता उस समय होती है कि जिस समय मनुष्य रोगी, या जख्मी होता है। भुज्यु समुद्रके पार रेतीले देशमें पहुंचा हुआ था। अरब देशसे परे रेतके मैदान हैं वहां गया था। वहां उसका पराभव हुआ। वहांसे संदेश भेजा गया। यह केवल प्रार्थना ही हो, तो केवल प्रार्थना इतनी दूरीपरसे कैसी पहुंचे? इसलिये 'संदेश वाहक कुछ यंत्र थे' ऐसा मानना ही चाहिये।

बडा समुद्र था, उसमें आधारके लिये कोई स्थान नहीं था। इस कारण घोडोंसे चलनेवाले रथ वहां जा ही नहीं सकते थे। भुज्यु नौकाओंसे गया होगा पर आनेके समय वह हवाई जहाजसे आया है। इस विषयमें और मन्त्र देखिये—

कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः।

१ निः तौग्र्यं पारयथः समुद्रात्। ऋ. १।११८।६

२ युवं भुज्युं भुरमाणं विभिर्गतम्।
स्वयुक्तिभिः नि वहन्ता पितृभ्य आ॥
ऋ. १।११९।४

३ अगच्छतं कृपमाणं परावति
पितुः स्वस्य त्यजसा निबाधितम्।
स्वर्वतीः इत ऊतीः युवोः अह
चित्रा अभीके अभवन्नभिष्टयः॥ ऋ. १।११९।८

दीर्घतमा औचथ्यः।

४ युक्तो ह यद् वां तौग्र्याय
पेरुः वि मध्ये अर्णसो धायि पज्रः।
ऋ. १।१५८।३

५ तौग्र्यो न जिव्रिः॥ ऋ. १।१८०।५

अगस्त्यो मैत्रावरुणिः।

६ युवं एतं चक्रथुः सिन्धुषु प्लवं
आत्मन्वन्तं पक्षिणं तौग्र्याय।
येन देवत्रा मनसा निः ऊहथुः
सुपप्तनी पेतथुः क्षोदसो महः॥५॥
अवविद्धं तौग्र्यं अप्स्वन्तः
अनारम्भणे तमसि प्रविद्धम्।

चतस्रो नावो जठरस्य जुष्टाः
उदश्विभ्यां इषिता पारयन्ति ॥ ६ ॥
ऋ. १।१८२।५-६

बार्हस्पत्यो भरद्वाज ऋषिः ।

७ ता भुज्युं विभिः अद्भ्यः समुद्रात्
तुग्रस्य सूनुं ऊहथुः रजोभिः ।
अरेणुभिः योजनेभिः भुजन्ता
पतत्रिभिः अर्णसो निः उपस्थात् ॥ऋ. ६।४२।१

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः ऋषिः ।

८ उत त्यं भुज्युं अश्विना सखायो
मध्ये जहुः दुरेवासः समुद्रे ।
निः ईं पर्षत् अरावा यो युवाकुः ॥ ७ ॥
ऋ. ७।६८।७

९ युवं भुज्युं अवविद्धं समुद्रे
उदूहथुः अर्णसो अस्रिधानैः ।
पतत्रिभिः अश्रमैः अव्यथिभिः
दंसनाभिः अश्विना पारयन्ता ॥७॥ ऋ.७।६९।७

ब्रह्मातिथिः काण्वः ऋषिः ।

१० कदा वां तौग्र्यो विधत् समुद्रे जहितो नरा ।
यद्वां रथो विभिष्पतात् ॥ २२ ॥ ऋ, ८।५।२२

काक्षीवती घोषा ऋषिका ।

११ निः तौग्र्यं ऊहतुः अद्भ्यः परि
विश्वेत् ता वां सवनेषु प्रवाच्या ॥
ऋ. १०।३९।४

युवं भुज्युं पारयथ ॥ ऋ. १०।४०।७

अत्रिः सांख्यः ऋषिः ।

१२ युवं भुज्युं समुद्र आ रजसपार ईंखितम् ।
यातमच्छा पतत्रिभिः नासत्या सातये कृतम्
॥ ५ ॥ ऋ. १०।१४३।७

इन मंत्रोंमें तुग्र राजाका पुत्र भुज्यु परदेशमें विजय प्राप्तिके लिये गया था ऐसा वर्णन है। (जिव्री तौग्र्यः। ऋ. १।१८०।५) तुग्र राजाका पुत्र विजय प्राप्त करनेकी इच्छासे इतना दूर गया था। वहां उसका पराभव हुआ। इसलिये शुश्रूषा करनेके विमान भेजने पडे।

ये विमान तीन थे या चार थे इस विषयमें संदेह है। अगस्त्य ऋषिके मंत्रमें कहा है कि—

चतस्रो नावो जठलस्य जुष्टा ।
उदश्विभ्यां इषिताः पारयन्ति ॥ ऋ. १।१८२।५

'चार नौकाएं अन्तरिक्षमें तुम्हारे— अश्विदेवोंके-द्वारा चलायी हुई भुज्युको पार करती रहीं।' इसमें 'चतस्रः नावः' ये पद चार हवाई जहाज थे ऐसा बता रहे हैं। 'जठल' पद 'जठर' के लिये है। यह वास्तवमें उदरका नाम है। जो व्यक्तिमें उदर है वही विश्वमें अन्तरिक्ष है अर्थात् ये चार नौकाए विश्वके उदरमेंसे अर्थात् अन्तरिक्ष-मेंसे भुज्युको पार कर रही थीं। पर कक्षीवान् ऋषिके मंत्रमें—

त्रिभी रथैः शतपद्भिः षळश्वैः ।
अतिव्रजद्भिः ऊहथुः पतङ्गैः ॥ ऋ. १।११६।४

तीन रथोंसे जो पक्षीके सदृश और अतिवेगसे जानेवाले थे, उनमेंसे भुज्युको उनके साथके अनुयायियोंके समेत अश्विदेव उठाकर ले जाते थे।

'चतस्रो नावः।' = अगस्त्यः
'त्रिभी रथैः।' = कक्षीवान्

इन दो ऋषियोंके कथनमें यह अन्तर है। इस विषयकी खोज करनी चाहिये। 'शुश्रूषाके वैमानिक पथक थे' इतनी बात हमारे लिये पर्याप्त है। फिर वे तीन विमानोंके हों, या चार विमानोंके हों।

भुज्यु अपने राज्यसे सेना लेकर जो विजयार्थ गया था, वह भी विमानोंसे गया था, ऐसा कक्षीवान्‌के मंत्रसे पता लगता है, देखिये—

युवं भुज्युं भुरमाणं विभिर्गतं ।
स्वयुक्तिभिः निवहन्ता पितृभ्य आ ॥
ऋ. १।११९।४

(विभिः गतं भुरमाणं भुज्युं) पक्षी सदृश विमानोंसे गये और श्रान्त हुए भुज्युको (युवं) तुम दोनोंने (स्वयुक्तिभिः) अपनी युक्तियोंसे (पितृभ्यः आ निवहन्ता) उसके पिता तुग्रय राजाके पास उस भुज्युको पहुंचाया।

इसमें कहा है कि भुज्यु भी विमानोंसे गया था पर इस मंत्रका अन्वय अन्य रीतिसे भी लग सकता है इस-लिये यह बात यहां अनिश्चितसी रहती है।

युवं पतं आत्मवन्तं पक्षिणं प्लवं
तौग्र्याय चक्रथुः । ऋ. १।१८२।५

'आपने भुज्युके लिये यह पक्षी सदृश स्वशक्तिसे युक्त हवाई जहाज किये थे।' इस मंत्रमें 'पक्षिणं गुवं' ये दो पद महत्त्वके हैं। ये जहाज पक्षी सदृश थे यह बात इससे सिद्ध होती है।

परदेशमें भुज्युका पराभव हुआ और वह समुद्रमें कष्टमें पडा था—

अनारम्भणे तमसि प्रविद्धं अप्सु अन्तः।
अवविद्धं तौग्र्यं नावः उत्पारयन्ति ॥
ऋ. १।१८२।६

जिसका आदि अन्त नहीं ऐसे अन्धकारमें तथा अगाध जलमें पडे भुज्युको अश्विदेवोंकी नौकाएं ऊपर उठाकर पार करती हैं।

अर्थात् यह भुज्यु पराभूत होकर समुद्रमें पडा था। उस समय अन्धकार भी घना था। अर्थात् इस राजपुत्रके पास समुद्रमें चलनेवाली नौकायें टूटी फूटी होंगी। उनमें उनके सैनिक रहे थे और कष्ट भोग रहे थे। और वहांसे उसने संदेश भेजा होगा। और वह संदेश प्राप्त करके अश्विदेवोंने विमान भेजे होंगे।

इन मंत्रोंको देखनेसे इस बातका स्पष्ट पता लगता है कि भुज्यु समुद्रमें पराभूत अवस्थामें पडा था। वह समुद्र भी अथांग था। आजूबाजूमें किसीका आधार नहीं था। अश्विदेवोंके हवाई जहाज आये और (उत् ऊहथुः) भुज्युके सैनिकोंको उन्होंने ऊपर उठाकर हवाई जहाजमें लिया और उसके घर पहुंचा था। यह हवाई जहाजका प्रवास तीन अहोरात्रका था। और यह प्रवास उन जख्मी सैनिकोंको (स्वस्ति) सुखसे हुआ। ऐसे आराम देनेवाले ये विमान थे।

हवाई जहाज अन्तरिक्षमें रहे होंगे, छोटी नौकाएं नीचे छोड दी गयी होंगी। उनके साथ शुश्रूषाके स्वयंसेवक गये और उन्होंने उन जख्मी सैनिकोंको ऊपर लिया होगा। अर्थात् ये सब साधन होंगे ऐसा ऊपर लिखे पदोंसे स्पष्ट दीखता है। 'उत् ऊहथुः' का अर्थ 'ऊपर उठाया' ऐसा ही है। नीचे रहेको ऊपर उठाया जाता है। ऊपर हवाई जहाज रहेगा, उसमें समुद्रमें पडे जख्मियोंको ऊपर उठानेके साधनोंके विना नहीं लिया जा सकता। अर्थात् ये साधन थे इसमें संदेह नहीं है।

*

हवाई जहाज आकाशमें ही रहेंगे, पर जहां चाहिये वहां वे जितनी देरतक स्थिर रहें ऐसी योजना उनमें होनी चाहिये। अन्यथा नीचे समुद्रमें पडे जख्मियोंको ऊपर उठाना संभव ही नहीं है।

पचास वर्षोंके पूर्व युरोपमें बलून थे। उस समय पक्षी सदृश हवाई जहाज नहीं थे। पर वेदमें हजारों वर्षोंके पूर्वके इन मंत्रोंमें 'पतंग, वी, श्येन, पक्षी' ये पद हवाई जहाजोंके लिये प्रयुक्त हुए हैं। ये पद 'पक्षी जैसे हवाई जहाजोंके ही निःसंदेह वाचक हैं।' युरोपीयनोंको पक्षी जैसे हवाई जहाजोंका पता भी नहीं था, उस समय वैदिक ऋषि ऐसे हवाई जहाजोंका वर्णन कर रहे हैं यह आश्चर्यकी बात है।

शुश्रूषापथकके विमान थे, उस समय अन्य आवागमनके लिये विमान होंगे यह स्वयं सिद्ध है। यदि इन मंत्रोंसे विमानोंका अस्तित्व माना जायगा तो उसके साथ प्रकृति विज्ञानकी जितनी विशेष प्रगति होनी आवश्यक है उतनी माननी ही पडेगी, अन्यथा विमान थे और अन्य प्रगति नहीं थी ऐसा मानना कठिन है।

३ विश्पलाको लोहेकी टांग लगाना

खेल राजाकी पुत्री विश्पला थी। वह युद्ध करनेके लिये युद्धमें गयी थी। युद्ध करते समय उसकी टांग टूट गयी थी। अश्वि देवोंने उसको लोहेकी टांग बिठला कर उसको चलने फिरने योग्य बनाया। यह वृत्त नीचे लिखे मंत्रोंमें है। देखिये—

कुत्स आंगिरस ऋषि।
याभिः विश्पलां धनसां अथर्व्यं।
सहस्रमीळ्ह आजावजिन्वतम् ॥ ऋ. १।११२।१०

'(सहस्र-मीळ्हे आजौ) सहस्रों सैनिक जहां लडते हैं ऐसे युद्धमें (याभिः) जिन साधनोंसे (धनसां अथर्व्यं विश्पलां अजिन्वतं) धनका दान करनेवाली अथर्वकुलमें उत्पन्न विश्पलाकी सहायता की।' इस विश्पलाको किस तरहकी सहायता की गई इसका वर्णन नीचे लिखे मंत्रमें देखिये—

कक्षीवान् दैर्घतमस औशिज ऋषिः।
चरित्रं हि वे इव अच्छेदि पर्ण
आजा खेलस्य परितक्म्यायाम्।

सद्यो जंघां आयसीं विश्पलायै
धने हिते सर्त्तवे प्रत्यधत्तम् ॥ ऋ. १।११६।१५

(वेः पर्ण इव) पक्षीका पंख टूटता है उस तरह (आजा) युद्धमें (खेलस्य चरित्रं अच्छेदि हि) खेल राजाकी पुत्री विश्पलाका पांव टूट गया था। तब (परितक्म्यायां) उस कठिन समयमें (धने हिते) युद्ध चालू रहनेकी अवस्थामें (सर्तवे) चलने फिरनेके लिये (सद्यः) तत्काल ही (आयसीं जंघां विश्पलायै प्रत्यधत्तं) लोहेकी टांग विश्पलाके लिये लगा दी।

'खेल' नाम अब भी सीमा प्रान्तके पठाणोंमें है। 'झाका खेल, ईसा खेल' आदि नाम आज भी वहां हैं। उस खेल राजाकी पुत्री विश्पला थी। वह युद्ध करनेके लिये गयी थी। युद्ध चल रहा था, इतनेमें उस विश्पलाकी टांग कट गयी। इस कारण उस विश्पलाका चलना-फिरना और युद्ध करना असंभवसा हो गया। अश्विदेवोंने उस विश्पलाका आपरेशन किया, घाव ठीक किया और उसको लोहेकी टांग बिठला दी जिससे वह विश्पला उत्तम रीतिसे चलने-फिरने योग्य बन गयी।

लोहेकी टांग लगानेका कार्य और कटी टांगको काट-कूट करके ठीक करनेका कार्य अश्विदेवोंने किया। यह आपरेशन बडा है, तथा लोहेकी टांग लगा कर युद्धमें जाने और युद्ध करनेमें समर्थ बनाना एक कठिन कार्य है। अश्विदेवोंने यह ठीक तरह किया है। इस विषयमें कहा है—

सं विश्पलां नासत्या अरिणीतम् ॥
ऋ. १।११७।११

'हे अश्विदेवो! तुमने विश्पलाको (सं अरिणीतं) ठीक कर दिया था' तथा—

प्रति जंघां विश्पलाया अधत्तम् ॥ ऋ.१।११८।८
धियं जिन्वा धिष्ण्या विश्पलावसू सुकृते शुचिव्रता। ऋ. १।१८२।१

'आपने विश्पलाको नयी जांघ लगादी। आप बुद्धिसे कार्य करनेवाले, बुद्धिमान्, उत्तम कार्य करनेवाले, पवित्र कार्य करनेवाले और विश्पलाको चलने-फिरने योग्य बनानेवाले हैं।

काक्षीवती घोषा ऋषिका।
युवं सद्यो विश्पलां एतवे कृथः ॥ ऋ.१०।३९।८

तुमने विश्पलाको लोहेकी टांग लगाकर चलने-फिरने योग्य बना दिया।

इस तरह विश्पला नामक शूरवीर राजपुत्रीको कटी हुई टांगके स्थानपर लोहेकी टांग ठीक तरह लगाकर उसको चलने-फिरने, युद्ध करने योग्य बना दिया इसका वर्णन है। इस वृत्तसे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि ऐसे बडे आपरेशन्स इस वैदिक समयमें होते थे, और कृत्रिम बनावटी अवयव लगाकर लोगोंको अपने कार्य करने योग्य बनाया जाता था।

४ वृद्ध च्यवन ऋषिको तारुण्यकी प्राप्ति

अतिवृद्ध च्यवन ऋषिको अश्विदेवोंने औषधियोंके उपचारसे तरुण बनाया और उसका विवाह तरुणी राजपुत्रीके साथ हुआ और वे विवाहित स्त्रीपुरुष सुखसे संसारयात्रा करने लगे। च्यवन ऋषिके लिये जो कायाकल्प किया था, उसका नाम "च्यवन प्राश" नामसे आयुर्वेदके ग्रंथोंमें प्रसिद्ध है। यह आंवलोंका पाक है और उसमें अष्टवर्ग आदि औषधियां पडती हैं। 'च्यवनप्राश' नाम वेदमें नहीं है, पर च्यवनऋषिको तरुण बनानेका उल्लेख वेदमें है, देखिये—

कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः।
जुजूरुषो नासत्योत वव्रिं
प्रामुञ्चतं द्रापिमिव च्यवानम्।
प्रातिरतं जहितस्य आयुः
दस्राऽऽदित् पतिं अकृणुतं कनीनाम् ॥
ऋ. १।११६।१०

१ जुजूरुषः च्यवानात् द्रापिं इव वव्रिं प्रमुञ्चतं— अति वृद्धच्यवन ऋषिके शरीरसे, कवच निकालनेके समान, ऊपरकी चमडी तुमने निकाल दी।

शरीरपरसे जैसा कोट उतारते हैं उस तरह शरीर परसे चमडी उतार दी। यही तारुण्य प्राप्त होनेका साधन होगा। शरीरपरसे चमडी उतारी जाय और नयी चमडी वहां आ जाय तो मनुष्य तरुण हो सकता है। साप अपनी कंचुली उतार देता है उस तरह मनुष्यके शरीरसे ऊपरकी पतली त्वचा औषधि प्रयोगसे उतारी जाय, तो मानव शरीर तरुण जैसा पुनः हो सकता है। इस विधिकी सूचना देनेवाले पद इस मंत्रमें ये हैं— 'द्रापिं इव वव्रिं प्रमुञ्चतं' कुर्ता या कवच उतारनेके समान शरीर परसे चमडी उतार दी।

२ उत जहितस्य आयुः प्रातिरतं— और तुमने उस परित्यक्त जैसे ऋषिको अतिदीर्घ आयु प्रदान की। शरीरपरकी चमडी उतारनेसे यह वृद्ध तरुण बना।

३ आत् इत् कनीनां पतिं अकृणुत— और अनेक कन्याओंका पति उस च्यवनको तुमने बनाया। इतना तारुण्य उस च्यवनके देहमें आया था जिससे वह (कनीनां पतिः) अनेक स्त्रियोंका पति होने योग्य जवान हुआ।

च्यवन ऋषिने एक ही कन्याका पाणिग्रहण किया था, अनेकोंका नहीं। यहांके मंत्रमें (कनीनां पतिः) ऐसे पद हैं। इसका अर्थ अनेक, कमसे कम तीन, पत्नियां उसने की ऐसा होता है, पर कथाओंमें वैसा नहीं लिखा है। कथामें एक ही पत्नीका उल्लेख है। इससे यह सिद्ध हुआ कि उसमें अनेक स्त्रियोंके साथ विवाह करनेका सामर्थ्य उत्पन्न हुआ था, पर उसने एक ही कन्याके साथ विवाह किया था।

पुराणोंमें ऐसी कथा है कि एक राजाकी राजपुत्री सुकन्या नामक थी। उसके साथ च्यवन ऋषिका विवाह हुआ और वे दोनों सुखसे रहने लगे थे। अर्थात् अश्विदेवोंने च्यवनको तरुण बनानेके पश्चात् यह सब हुआ था। वृद्धको तरुण स्त्रीके साथ विवाह करने योग्य बनाना और अपनी औषधिचिकित्सासे यह सब करना एक बडी सिद्धिका आश्चर्य कारक कार्य है। इस विषयमें नीचे लिखे मंत्र यहां देखने योग्य हैं—

कक्षीवान् दैर्घतमस औशिज ऋषिः।

युवं च्यवानं अश्विना जरन्तं
पुनर्युवानं चक्रथुः शचीभिः। ऋ. १।११७।१३
पुनश्च्यवानं चक्रथुः युवानम्। ऋ. १।११८।६

अवस्युः आत्रेय ऋषिः।

विभिः च्यवान अश्विना नि याथः।
ऋ. ५।७५।५

पौर आत्रेय ऋषिः।

प्र च्यवानाज्जुजुरुषो वव्रिं अत्कं न मुञ्चथः।
युवा यदी कृथः पुनः आ कामं ऋण्वे वध्वः॥
ऋ. ५।७४।५

अपनी शक्तियोंसे अतिवृद्ध च्यवन ऋषिको तुमने पुनः तरुण बनाया। (विभिः) पक्षी सदृश वाहनोंसे तुम च्यवन ऋषिके पास पहुंचे। तुमने वृद्ध च्यवनको तरुण बनाया, उसके शरीरपरसे चमडी कुर्ता उतारनेके समान उतारी और वह तरुण बननेके पश्चात् (वध्वः कामं आ ऋण्वे) तरुणीकी कामनाको पूर्ण करने योग्य उसको सामर्थ्यवान् बनाया।

तरुण बनानेका यह फल है। च्यवनने तरुण बननेके पश्चात् तरुणियोंका मन अपने स्वरूपकी ओर आकर्षित किया। सच्चे तारुण्यका यही फल है। कायाकल्पकी यही सिद्धि है। तथा—

मैत्रावरुणिः वसिष्ठ ऋषिः।

उत त्यद् वां जुरते अश्विना भूत्
च्यवानाय प्रतीत्यं हविर्दे।
अधि यद् वर्प इत ऊती धत्थः॥ ऋ. ७।६८।६

हे अश्विदेवो! (हविर्दे जुरते च्यवानाय) हवन करनेवाले वृद्ध च्यवनके लिये (वां त्यत्) तुम्हारा उनके पास जाना (प्रतीत्यं भूत्) हित कारक सिद्ध हुआ, क्योंकि (यत् इत ऊती वर्पः) मृत्युसे संरक्षण देनेवाला स्वरूप आपने (अधि धत्थः) उनको दिया। तथा—

युवं च्यवानं जरसो अमुमुक्तम्। ऋ. ७।७१।५

'तुमने च्यवन ऋषिको जरासे मुक्त कर दिया अर्थात् उसे तरुण बना दिया।' तथा—

काक्षीवती घोष ऋषिका।

युवं च्यवानं सनयं यथा रथं।
पुनर्युवानं चरथाय तक्षथुः॥ ऋ. १०।३९।४

'तुमने (सनयं च्यवानं) वृद्ध च्यवनको (रथं यथा) जिस तरह रथको दुरुस्त करके नया जैसा बनाते हैं वैसा (चरथाय पुनः युवानं तक्षथुः) चलने फिरनेके लिये पुनः तरुण बना दिया।' इस मंत्रमें 'तक्षथुः' पद है। यह बता रहा है कि च्यवनके अंग और अवयव ठीक तरह दुरुस्त किये गये थे। एक अवयवमें भी जरा न रहे ऐसा औषधोपचार किया गया था, जिससे वह च्यवनऋषि तरुण जैसा चलने-फिरने और सब कार्य करनेके लिये योग्य बनाया था।

वेदमंत्रोंमें च्यवन ऋषिको तरुण बनानेका वर्णन इतना ही है। वह वृद्ध ऋषि कन्याओंका मन आकर्षित करने योग्य सुन्दर मोहक तरुण बन गया था। परंतु किस औषधि

प्रयोगसे वह तरुण बना, उस प्रयोगका नाम भी इन वेद-मंत्रोंमें नहीं है।

इन मंत्रोंको देखनेसे जिस विधिकी सूचना मिलती है वह विधि यह है। (च्यवानं नियाय:) अश्विदेव च्यवन ऋषिके पास गये, उस अतिवृद्ध ऋषिका कायाकल्प उन्होंने किया, (वव्रिं, अत्कं न, द्रापिं न, मुञ्चथ:) चोगा उतारनेके समान उस ऋषिके शरीरकी त्वचा उन्होंने उतार दी और उसको (पुनः युवानं चक्रथु:) फिर तरुण बना दिया। जिस तरह (रथं न) पुराने रथको दुरुस्त करके नया जैसा बनाते हैं, वैसा उन अश्विदेवोंने च्यवन ऋषिको तरुण बना दिया।

यह सब कार्य अश्विदेवोंने अपने (शचीभि:) पासकी औषधियोंकी शक्तियोंसे किया। जो च्यवन ऋषि चलने-फिरनेमें भी असमर्थ था उसको अच्छी तरहसे चलने-फिरने योग्य बना दिया तथा (वध्वः कामं) स्त्रियोंकी कामना पूर्ण हो जाय ऐसा सामर्थ्यवान् तरुण बना दिया। इतना ही इस कथाके मंत्रोंसे पता लगता है। यही कथा शतपथ ब्राह्मणमें लिखी है वह सब यहां देखिये—

च्यवन ऋषिकी कथा

च्यवनो वा भार्गवः, च्यवनो वाङ्गीरसः, तदेव जीर्णिः कृत्या रूपो जहे ॥ १ ॥ शार्यातो ह वा इदं मानवो ग्रामेण चचार। स तदेव प्रतिवेशो निविविशे। तस्य कुमाराः क्रीडन्त इमं जीर्णिं कृत्यारूपं अनर्थ्यं मन्यमाना लोष्टैर्विपिपिषुः ॥ २ ॥ स शार्यातेभ्यश्चुकोध। तेभ्योऽसंज्ञां चकार, पितैव पुत्रेण युयुधे, भ्राता भ्रात्रा ॥ ३ ॥ शार्यातो ह वा ईक्षां चक्रे। यत् किमकरं तस्मादिदं आपदीति। स गोपालांश्च अविपालांश्च संहयित्वा उवाच ॥ ४ ॥ स होवाच। को वो अद्येह किञ्चिदद्राक्षीदिति। ते होचुः, पुरुष एवायं जीर्णिः कृत्यारूपः शेते, तमनर्थं मन्यमानाः कुमारा लोष्टैः व्याक्षिपन्निति, स विदांचकार स वै च्यवन इति ॥ ५ ॥ स रथं युक्त्वा, सुकन्यां शार्यातीं उपाधाय प्रसिष्यन्द, स आजगाम, यत्र ऋषिरास तत्र ॥ ६ ॥ स होवाच। ऋषे नमस्ते, यन्नावेदिषं तेनाहिंसिषं, इयं सुकन्या, तया ते अपह्नवे, सं जानीतां मे ग्राम इति। तस्य ह तत एव ग्रामः संजज्ञे, स ह तत एव शार्यातो मानव उद्युयुजे, नेदपरं हिनसानीति ॥ ७ ॥ अश्विनौ ह वा इदं भिषज्यन्तौ चेरतुः। तौ सुकन्यां उपेयतुः, तस्यां मिथुनं ईषाते। तन्न जज्ञौ ॥ ८ ॥ तौ होचतुः। सुकन्ये कमिमं जीर्णिं कृत्यारूपं उपशेष, आवां अनुप्रेहीति, सा होवाच, यस्मै मां पिता अददात्, नैवाहं तं जीवन्तं हास्यामीति, तद्ध अयं ऋषि राजज्ञौ ॥ ९ ॥ स होवाच। सुकन्ये किं त्वैतदवोचतामिति, तस्मा एतद्व्याचचक्षे, स ह व्याख्यात उवाच, यदि त्वैतत्पुनर्ब्रुवतः सा त्वं ब्रूतान्न वै सुसर्वाविव स्थो, न सुसमृद्धाविव, अथ मे पतिं निन्दथ इति, तौ यदि त्वा ब्रवतः, केन वामसर्वौ स्थः, केनासमृद्धाविति, सा त्वं ब्रूतात्, पतिं नु मे पुनर्युवाणं कुरुतं, अथ वां वक्ष्यामीति, तां पुनरुपेयतुः तां हैतदवोचतुः ॥ १० ॥ तौ होचतुः। एतं ह्रदं अभ्यवहर, स येन वयसा कमिष्यते तेनैवोदेष्यतीति; तं ह्रदं अभ्यवजहार, स येन वयसा चकमे तेनोदेयायेति ॥ १२ ॥ श. प. ब्रा. ४।१।५।१-१२

च्यवन नामक एक ऋषि था, जो भृगुकुलका समझा जाता है, अथवा आंगिरस कुलका भी माना जाता है। वह अतिजीर्ण होकर मरियलसा होकर एक स्थान पर पड़ा था। उस स्थानपर मनुवंशका शार्याती नामक राजा गया। उस राजाके लडके वहां खेलने लगे। उन लडकोंने उस अतिजीर्ण ऋषिके मुर्दे जैसे शरीरपर पत्थर मारे। इससे ऋषिको क्रोध आया। इससे उस राजाके राज्यमें सब प्रजाजनोंकी बुद्धि भ्रष्ट हुई। वे आपसमें लडने लगे। पिता पुत्रसे, तथा भाई भाईसे लडाई शुरू होगयी। राजा शार्याती सोचने लगा कि, मैंने ऐसा कौनसा बुरा कर्म किया कि जिसके कारण यह आपत्ति मेरे राज्यपर आगयी। उसने गवालियोंको बुलाकर पूछा कि तुमने यहां कुछ देखा है? वे बोले कि, यह जो अतिजीर्ण मुर्दासा पडा है, वह मरा है ऐसा मानकर तुम्हारे कुमारोंने उसपर पत्थर मारे, वह च्यवन ऋषि है ऐसा उस राजाने जान लिया। पश्चात् राजाने अपना रथ

जोड़ा और अपनी कन्या सुकन्याको रथपर बिठला कर वह उस ऋषिके पास गया और उसे बोला कि 'हे ऋषे ! नमस्ते' मुझे तुम्हारा ज्ञान नहीं था, इसलिये तुमको बहुत कष्ट पहुंचे। क्षमा करो। यह मेरी पुत्री है, यह तुम्हारे लिये अर्पण करता हूं। इसको प्राप्त करके संतुष्ट हो जाओ। मेरे राज्यमें जो बलवा उठा है, वह शान्त हो जावे।'

'तब ऋषि सन्तुष्ट हुआ, इसके संतुष्ट हो जानेसे राजाके राज्यमें जो आपसी संघर्ष शुरू हुआ था, वह सब शान्त हुआ। यह देखकर शर्याती राजाने प्रतिज्ञा की, मैं अब इसके बाद किसीको कष्ट नहीं दूंगा। उस ऋषिके आश्रमके पास अश्विदेव किसीकी चिकित्सा करनेके लिये आये। थे उन्होंने सुकन्याको देखा और उस तरुणीकी इच्छा की। पर उस सुकन्याने उनके प्रस्तावका स्वीकार नहीं किया। तब वे उस सुकन्यासे पूछने लगे कि 'हे सुकन्ये ! तू इस मुर्दे जैसे जीर्णके पास क्यों रहती है ? तू हमारा स्वीकार कर।'

तब यह सुनकर वह सुकन्या बोली कि—'मेरे पिताने जिसको मेरा दान किया है, जबतक वह जीवित है, तबतक मैं उसे नहीं छोडूंगी।' सुकन्याका यह भाषण ऋषिने सुन लिया। तब वह ऋषि उस सुकन्यासे बोले कि क्या बात हो रही है। सुकन्याने जो हुआ वह सब निवेदन किया। तब ऋषिने उस सुकन्यासे कहा कि 'जिस समय वे अश्विनी कुमार फिरसे तुम्हें ऐसा भाषण करने लगेंगे, तब तुम उनसे कहना कि- 'तुम मेरे पतिकी निंदा करते हो, पर तुम तो अपूर्ण और सौभाग्य हीन हो। यदि तुम मेरे पतिको पुनः तरुण बना दोगे, तब तुमको सुपूर्ण और भाग्यसंपन्न बनानेका उपाय तुम्हें बताऊंगी।'

सुकन्याने ऐसा अश्विदेवोंसे कहा, तब वे बोले कि 'यदि तुम्हारा पति इस तालावमें गोता लगावेगा, तो जिस आयुकी इच्छा करके गोता लगावेगा, उसी आयुको ऊपर आनेके पूर्व प्राप्त करेगा।' च्यवनने वैसा किया। और वह जीर्ण ऋषि उस तालावमें गोता लगाते ही जिस आयुकी आकांक्षा उसने की उस आयुका बनकर वह ऊपर आया।

तब अश्विदेवोंने सौभाग्य संपन्न बननेका उपाय उस सुकन्यासे पूछा, तब च्यवनने यज्ञमें हविर्भाग प्राप्त करनेका उपाय उनको बताया। अश्विनी कुमार मानवोंमें जाते हैं, हरएककी चिकित्सा करते हैं, इसलिये देवोंकी पंक्तिमें बैठकर ये हविर्भाग सेवन नहीं कर सकते, ऐसा इन्द्रने निषेध किया था। पर च्यवन ऋषिके सामर्थ्यसे इस समयसे अश्विदेवोंको यज्ञमें हविर्भाग मिलने लगा।

शतपथ ब्राह्मणमें यह कथा इस तरह लिखी है। पुराणोंमें भी यह कथा करीब-करीब ऐसी ही है। इस शतपथकी या पुराणोंकी कथासे वेदके कथनका स्पष्टीकरण नहीं होरहा है। च्यवन ऋषि किस औषधि योजनासे तरुण हुआ यह इससे पता नहीं लगता।

आयुर्वेदके ग्रंथोंमें 'च्यवन प्राश' अवलेहका वर्णन है उसका प्रयोग करनेसे क्या फल मिलता है, यह वैद्योंका खोज करनेका विषय है। किसी उपायसे ही अश्विदेवोंने च्यवन ऋषिको तरुण बनाया था, इतनी बात वेद, ब्राह्मण तथा इतिहास पुराणके वर्णनोंसे सत्य प्रतीत होती है। आगे यह विषय वैद्योंकी खोजका है उस विषयमें वैद्य खोज करें।

इस रीतिसे अश्विदेवोंने (१) पंचजनोंका हित करनेके लिये यत्न करनेवाले अत्रिऋषिको राजकीय हलचल करनेके लिये कारावासमें पडनेके कारण कृश बननेकी अवस्थासे उत्तम हृष्टपुष्ट बनाया, (२) रुग्ण शुश्रुषाके वैमानिक पथक थे, विमान थे, इससे अन्य प्रकारके पथक भी होंगे, (३) विश्पलाको लोहेकी टांग लगाकर उसको चलने-फिरने योग्य बना दिया, (४) च्यवन ऋषिको तरुण बनाया।

इससे बडे आपरेशन भी होते थे, चिकित्साएं भी होती थी और अनेक प्रकारकी चिकित्सा तथा शस्त्र क्रियाके प्रकार भी थे यह स्पष्ट सिद्ध होता है।

इस लेखमें हमने चार उदाहरण दिये हैं जो अश्विदेवताओंके कार्यका स्वरूप बता रहे हैं। अत्रि ऋषिको पुनः पूर्ववत् कार्यक्षम बनाया, विश्पलाको लोहेकी टांग लगाकर उसको चलने-फिरने योग्य बनाया, अति वृद्ध च्यवनका कायाकल्प करके उसको तरुण बनाया और रुग्ण शुश्रूषाके वैमानिक पथकोंसे काम लिया। ये चार महत्वके उदाहरण हमने इस लेखमें दिये हैं।

अत्रिऋषि, कुमारी विश्पला और वृद्ध च्यवन ऋषि ये मनुष्य थे और वैमानिक पथकोंसे भुज्युको तथा उसके सैनिकोंको तीन अहोरात्र वैमानिक प्रवास करके अपने घर पहुंचाया वे भी सब मानव ही थे।

अश्विदेव देवोंके वैद्य हैं, पर यह चिकित्सा उनके द्वारा मानवोंकी ही हो रही है। इन चार उदाहरणोंमें ही मानवोंकी चिकित्सा होगई है ऐसी बात नहीं है, परंतु अश्विदेवोंने जितनी चिकित्साएं की हैं, अथवा इन चिकित्साओंका जो वर्णन वेदमें है वह बहुत करके मानवोंकी ही चिकित्सा है अर्थात् ये अश्विदेव यद्यपि देव थे तथापि ये मानवोंकी चिकित्सा करते हुए विचलन करते थे। इस चिकित्सा करनेके लिये इन्होंने धनके रूपमें मूल्य लिया ऐसा एक भी वचन नहीं है। इसलिये ये चिकित्सा विना कुछ लिये करते थे इसमें संदेह नहीं है।

वारंवार रोगियोंके घर जाना, उनके लिये औषधोपचार करना, चिकित्साएं तथा शस्त्रक्रियाएं करनी, रोगियोंको सुयोग्य पुष्टिकारक अन्न देना, उनको कार्यक्षम बनाना यह सब कार्य इनका था। इस कार्यपर ये देवराष्ट्रशासनद्वारा नियुक्त थे ऐसा दीखता है। इस कारण ही हमने इनको 'आरोग्य मंत्री कहा है। इनके आधीन अनेक कार्यकर्ता सहायक अवश्य होंगे ही, अर्थात् इनके कार्यालयसे ये सब कार्य होते थे। इन नाना कार्योंको करनेके लिये इनको मानवोंके घर जाना पडता था। इसलिये देवोंकी पंक्तिमें बैठकर हविर्भाग ये ले नहीं सकते थे। शतपथ इसका वर्णन इस तरह कर रहा है—

न वै सुसर्वाविव स्थः, न सुसमृद्धौ इव।

श. ब्रा. ४।१।५।१०

'तुम (अश्विदेव) अपूर्ण और असमृद्ध जैसे हो।' अर्थात् अन्य देवोंके समान इनको हविर्भाग मिलता नहीं था।

जिस समय च्यवन ऋषिको इन्होंने तरुण बनाया उस समयके पश्चात् च्यवन ऋषिने यज्ञ किया और इस यज्ञमें च्यवन ऋषिने अन्य देवोंके साथ अश्विदेवोंको हविर्भाग दिया। यह देखकर इन्द्रने कहा कि ऐसी प्रथा नहीं है। परंतु च्यवन ऋषिने कहा कि मैं तो अश्विदेवोंको हविष्यान्न अवश्य दूंगा। इतना नहीं परंतु इसके पश्चात् सब यज्ञोंमें अश्विनौको अन्य देवोंके साथ हविष्यान्नका भाग मिलता रहेगा ऐसी व्यवस्था मैं करूंगा और इस तरह च्यवनने किया। इसकी सूचना शतपथ ब्राह्मणके ऊपर दिये वचनमें स्पष्ट रीतिसे दीखती है। इस विषयका शतपथ ब्राह्मणका संवाद यहां पुनः देखने योग्य है—

सुकन्या च्यवन ऋषिकी पत्नी थी। उनके साथ अश्विनौका वार्तालाप इस तरह हुआ—

सुकन्या— (**न वै सुसर्वाविव स्थः, न सुसमृद्धौ इव**) हे अश्विदेवो! तुम अपूर्ण हो तथा तुम असमृद्ध हो।

अश्विनौ— (**केन असर्वौ स्वः, केन असमृद्धौ**) हे सुकन्ये! किस कारण हम अपूर्ण और असमृद्ध हैं?

सुकन्या— (**पतिं नु मे पुनर्युवानं कुरुतं, अथ वां वक्ष्यामीति**) हे अश्विनौ! मेरे पतिको तरुण बनवाइये, फिर मैं कहूंगी कि तुम अपूर्ण और असमृद्ध किस तरह हो।

यह संवाद बता रहा है कि अश्विनौ रोगियोंकी चिकित्सा करनेके लिये मानवोंमें जाते थे इसलिये देवोंकी पंक्तिमें बैठकर हविष्यान्न ले नहीं सकते थे। च्यवनको तरुण बनानेके पश्चात् च्यवन ऋषिके यज्ञसे अश्विनौको हविष्यान्नका भाग मिलने लगा।

चिकित्सकोंको रोगीका हरएक अवयव देखना पडता है, उसकी कार्य क्षमता देखनी पडती है, इस कारण प्राचीन समयमें वैद्य श्रोत्रियोंकी पंक्तिमें बैठ नहीं सकते थे। इस स्मार्त पद्धतिका उगम हम इस शतपथके वचनमें देखते हैं। अर्थात् इतने कष्ट सहन करके भी आरोग्य रक्षाका कार्य इनको करना पडता था। यह सब ये उत्तम रीतिसे करते थे।

च्यवन ऋषिके तरुण बननेका उल्लेख जिन मंत्रोंमें हैं वे मंत्र इन ऋषियोंके हैं—

१ कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः। ऋ. १।११६
२ अवस्युः आत्रेयः। ऋ. ५।७५
३ पौर आत्रेयः। ऋ. ५।७४
४ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। ऋ. ७।६८
५ काक्षीवती घोषा। ऋ. १०।३९

दीर्घतमाका पुत्र कक्षीवान्, अत्रिके पुत्र अवस्यु और पौर, मित्रावरुणोंका पुत्र वसिष्ठ और कक्षीवान्‌की पुत्री घोषा। इनके मंत्र यहां दिये हैं। वेद मंत्रोंके ये ऋषि हैं।

कक्षीवान्‌के मंत्र प्रथम मण्डलमें (ऋ. १।११६-११८) हैं। अत्रिपुत्र अवस्यु और पौरके मंत्र (ऋ. ५।७४-७५) में हैं। पञ्चम काण्डका नाम ही आत्रेय काण्ड है। वसिष्ठ ऋषिका सप्तम काण्ड है। ये ऋषि च्यवनको तरुण बनानेका कार्य अश्विदेवोंने किया ऐसा कहते हैं।

वृद्धको तरुण बनाया यह मुख्य बात यहां है। किस रीतिसे तरुण बनाया इसकी थोडीसी सूचना इन मंत्रोंमें है देखिये—

प्र च्यवानात् जुजुरुषो वव्रि अत्कं न मुञ्चथः। ऋ. ५।७४।५

'च्यवन ऋषिके शरीरसे कुर्ता उतारनेके समान चमडी उतार दी' और इससे वह तरुण बन गया। यहां तरुण बननेका उपाय मालूम होता है। वृद्धके शरीरपरकी चमडी उतरनेसे अन्दरसे जो दूसरी चमडी आती है वह तारुण्यके साथ आती है। सांप कंचुली निकालता है और पुनः तरुण बनता है। इस तरह यह है। अर्थात् वृद्ध मनुष्यको तरुण बनाना हो तो ऐसा उपाय करना चाहिये कि जिससे उनके शरीरकी चमडी उतरी जाय, पर वह जीवित रहे। आयुर्वेद शास्त्रमें कायाकल्पके अनेक प्रयोग हैं उनमें शत-भल्लातक और सहस्र भल्लातक ये प्रयोग हैं। शतभल्लातकका प्रयोग हमने स्वयं अपने शरीरपर किया था। प्रथम दिन एक, दूसरे दिन दो, इस तरह दसवे दिन १० भिलावे गौके दूधमें उबालकर उस दूधको ठंडा करके उसमें गायका घी और शहद मिलाकर सवेरे लेना। फिर एक-एक कम करके बीसवें दिन एक भिलावा लेना। पथ्य गौका दूध पीना और षाष्टिक चावलोंका भात खाना। बीस दिन हो जानेपर ३५ दिनोंके बाद हमें मालूम हुआ कि शरीरपरकी पतली त्वचा जा रही है। जैसा आयुर्वेदमें कहा वैसा पथ्य हमने नहीं किया था। परंतु त्वचा जानेका अनुभव अवश्य हुआ। भिलावे अधिक लेते और पूरा पथ्य पालन करते, पूर्ण विधान लेते तो अवश्य लाभ होता। अर्थात् चमडीका उतरना यह अंशतः हमारे अपने अनुभवमें आया है।

च्यवनप्राश खानेसे चमडी उतरनेका अनुभव नहीं आता। अन्य कायाकल्प करनेका अनुभव हमें नहीं है। यहां यह इसलिये लिखा कि वेदमंत्रने जो कहा कि "चमडी कुर्ता उतारनेके समान उतार दी" यह कथन सत्य है। च्यवनकी चमडी किस उपचारसे उतार दी इसका पता वेदमंत्रोंसे नहीं लगता। शतपथका कहना है कि तालावमें डुबकी लगा दी और च्यवन तरुण बन गया। यह कथन हमारे समझमें नहीं आता। वैद्य तथा दूसरे विचारक इसका विचार करें और वह क्या है इसका निश्चय करें।

च्यवनके तरुण बननेके विषयमें इतना पर्याप्त है। च्यवन ऋषि मंत्र द्रष्टा ऋषि है। च्यवन भार्गव ऋषि ऋ. १०।१९।१-८ का वैकल्पिक माना है। शतपथानुसार 'च्यवनो वा भार्गवः, च्यवनो वा आंगिरसः' अर्थात् यह च्यवन भृगुकुलका होगा अथवा अंगिरस कुलका होगा। शतपथ ब्राह्मण निश्चय पूर्वक कहता नहीं कि यह च्यवन दोनोंमेंसे कौनसा है। शतपथके लेखको इस विषयमें संदेह है इस कारण हम उसका निश्चय नहीं कर सकते। इतना निश्चित है कि किसी वृद्ध च्यवनको अश्विदेवोंने अपनी चिकित्सा द्वारा तरुण बनाया था।

दृश्या आदित् पतिं अकृणुतं कनीनाम्। ऋ. १।११६।१०

'अश्विनी देवोंने उसको अनेक कन्याओंका पति होने योग्य तरुण बनाया।' यह वर्णन उसके तरुण होनेका है। एक स्त्रीका नहीं परंतु अनेक स्त्रियोंका पति वह हो ऐसा युवा वह बन गया। यह निर्देश उसके जवानीके ओजका द्योतक है, बहुत स्त्रियां करनेका सूचक नहीं है।

अश्विदेवोंकी वृद्धोंको तरुण बनानेकी चिकित्साका वर्णन इस तरह यहां विचार करने योग्य है।

अत्रि ऋषिको सामर्थ्य प्राप्ति

वृद्धको तरुण बनाना यह कार्य जैसा औषध योजनासे होता है वैसा ही निर्बल अत्रिको पुनः पूर्ववत् बलवान् बनाना भी औषधिप्रयोगसे होनेवाला कार्य है। ऋषि लोग उन्मत्त राजाओंको राज्यगद्दीपरसे हटाते थे और प्रजाहित-कारी राजाओंको राज्यगद्दीपर स्थापन करते थे। ज्ञानियोंको ऐसा ही कर्तव्य करना चाहिये यह उपदेश अत्रि ऋषिके हलचलसे पाठकोंको मिल सकता है। अपना संबंध राज्यशासनसे नहीं है पर आरोग्य मंत्रीके कार्यसे है। राज्य-शासकोंने अत्रि ऋषिको कारावासमें रखा था। उनके साथ जो उनके (सर्वगणं अत्रि ऋषीसे अयनीतं) अनुयायी थे, उन सबको जेलमें रखा था। उनको अधिकसे अधिक कष्ट दिये जाते थे, इस कारण ऋषि कृश हुए थे। इसलिये—

पितुमतीं ऊर्जं अस्मा अधत्तम्। ऋ. १।११६।८

पुष्टिकारक और बलवर्धक अन्न उनको अश्विदेवोंने दिया। यह अश्विदेवोंका चातुर्य है। निर्बल बने और कृश हुए

ऋषियोंको उन्होंने ऐसा अन्न दिया कि जिसके सेवन करनेसे उनमें बल भी बढा और शरीर पुष्ट भी हुआ।

त्यं चिदत्रिं ऋतजुरं अर्थं अश्वं न यातवे कृणुथः— उस अत्रिको चलने-फिरने योग्य घोडेके समान बलवान् और हृष्टपुष्ट बना दिया। ऐसा ही उनके सब अनुयायियोंको बलवान् बना दिया था। यह अश्विदेवोंका कार्य था। लोगोंका हित करनेके लिये ऋषि यत्न करते थे और उनको कष्ट हुए तो उन कष्टोंको दूर करनेका कार्य अश्विदेव करते थे। अर्थात् अश्विदेव जनताके हित करनेवालोंके पक्षमें रहते थे।

इस मंत्रमें '**नवं रथं न पुनः कक्षीवन्तं इव कृणुथः**' — रथको नया बनाते हैं वैसा अत्रिको पुनः नवीनसा, तरुण जैसा बनाया। दूसरा उदाहरण '**कक्षीवन्तं इव**' कक्षीवान्‌के समान पुनः बलवान् और सामर्थ्यवान् बनाया। इससे यह भी स्पष्ट हुआ कि कक्षीवान्‌को भी इसी तरह अश्विदेवोंने बलवान् बनाया था। यहां अत्रिके साथ कक्षीवान्‌का भी उदाहरण विचारमें लेना योग्य है।

इसी मंत्रमें '**नवं रथं इव**' ये पद महत्त्वके है। पुराने रथको दुरुस्त करके बिलकुल नया जैसा बनाते हैं उस तरह अत्रि और कक्षीवान्‌को युवा जैसा बनाया यह भाव यहां देखने योग्य है।

अत्रिका यह वर्णन करनेवाले मंत्र किन-किन ऋषियोंके हैं यह भी देखिये—

१ कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः। ऋ. १।११६-११९
२ कुत्स आंगिरसः। ऋ. १।११२
३ अगस्त्यो मैत्रावरुणिः। ऋ. १।१८०
४ वसिष्ठो मैत्रावरुणिः ऋ. ७।६८
५ ब्रह्मातिथिः काण्वः। ऋ. ८।५
६ अत्रिः सांख्यः। ऋ. १०।१४३
७ गोपवन आत्रेयः। ऋ. ८।७३
८ सप्तवध्रिः आत्रेयः। ऋ. ५।७८
९ काक्षीवती घोषा। ऋ. १०।३९

इतने ऋषियोंके मंत्र यहां दिये हैं। सांख्य कुलोत्पन्न अत्रिऋषि एक है। पञ्चममण्डल '**आत्रेयमण्डल**' है उसमें—

अत्रिः भौमः
अत्रिः सांख्यः
अत्रिः

ये तीन ऋषि पृथक् हैं। इनमेंसे यह राष्ट्रीय हलचल करनेवाला अनुयायियोंके साथ कारावासमें जानेवाला एक है वा भिन्न है इसका पता नहीं लगता। सांख्य अत्रि कारावासमें पडे अत्रिका वर्णन ऐसा किया है—

त्यं चिदत्रिं ऋतजुरं अर्थं अश्वं न यातवे।
ऋ. १०।१४३।१

'उस जर्जर बने अत्रिऋषिको घोडेके समान चलने-फिरने योग्य सामर्थ्यवान् बनाया।' इस वर्णनसे स्पष्ट होता है सांख्य अत्रिसे यह अत्रि भिन्न है। क्योंकि '**तं अत्रिं**' (उस अत्रिको) ऐसे पद यहां हैं।

'**सप्तवध्रिःआत्रेयः**' और '**गोपवन आत्रेयः**' ये दो ऋषि अत्रिके कारावासका वर्णन करते हैं। ये इनके नामसे ही अत्रिकुलोत्पन्न हैं। इनके मंत्रोंमें भूतकालके प्रयोग हैं—

सप्तवध्रिः आत्रेयः।

अत्रिः अजोहवीत् नाधमानेव योषा। ऋ. ५।७८।४

गोपवन आत्रेयः—

अत्रये गृहं कृणुत यूयं अश्विना। ऋ. ८।७३।७

सप्तवध्री— अनाथ स्त्रीके समान अत्रिने आपकी प्रार्थना की।

गोपवन— हे अश्विनो! अत्रिके लिये आपने सुखदायक घर बनाया।

अत्रिवंशके विद्वान् कह सकते हैं वैसे ये वचन हैं। इस कारण इनसे प्राचीन अत्रि था इसमें संदेह नहीं है।

अत्रि ऋषि अनुयायियोंके साथ स्वराज्य स्थापनकी हलचल करते थे और उस कारण उनको कारावासका दुःख प्राप्त हुआ। उसमें वे बडे कृश और निर्बल हुए और अश्विदेवोंने उनको पुष्टिवर्धक अन्न देकर पुनः कार्यक्षम बनाया। इसमें अत्रि ऋषिकी हलचल स्वराज्य स्थापनार्थ थी ऐसा स्पष्ट होता है। ऋषि लोग स्वराज्य स्थापनार्थ कितने यत्न

करते थे, इसका पता यहां लगता है। इसका परिणाम स्वराज्यकी घोषणा करनेमें हुआ है। 'अत्रि कुलोत्पन्न रातहव्य' ऋषिकी यह घोषणा है—

रातहव्य आत्रेयः

आ यद् वां ईयचक्षसा मित्रं वयं च सूरयः।
व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये॥

ऋ. ५।६६।६

'हे विस्तृत दृष्टिवालो, हे मित्रो! तुम और हम विद्वान् मिलकर विस्तृत, बहुतोंकी संमति द्वारा जिसका पालन होता है, उस स्वराज्यमें जनहितार्थ प्रयत्न करेंगे।'

यह घोषणा अत्रि कुलोत्पन्न रातहव्य ऋषिकी है। इससे अत्रि ऋषिकी प्रचण्ड हलचलके स्वरूपका पता लग सकता है। ऐसी हलचलमें अश्विदेव कारावासमें कष्ट भोगनेवाले लोगोंको पुनः कार्यक्षम तथा सामर्थ्यवान् बनाते थे। इससे अश्विदेवोंके कार्यका महत्त्व जाना जा सकता है।

ऊपरके उदाहरणोंमें औषधिचिकित्साका वर्णन आया है। च्यवनको तरुण बनाया इसमें एक व्यक्तिके सुधारका वर्णन है, परंतु अत्रि ऋषिको तथा उनके अनुयायियोंको, जो कारावासके कष्टोंसे क्षीण हुए थे उनको, पुनः सामर्थ्यवान् बनाया, इसमें सामुदायिक औषधिचिकित्सा है। अश्विदेवोंकी आरोग्यसाधनामें इतना महान सामर्थ्य था।

लोहेकी टांग लगाना

अब हम शस्त्रक्रिया करनेका कार्य अश्विदेव करते थे इसका विचार करेंगे। खेल राजाकी पुत्री विश्पला थी। वह युद्धमें गयी। युद्ध करते समय उसकी टांग टूट गयी, उस पर शस्त्रक्रिया करके वहां अश्विदेवोंने लोहेकी टांग लगाकर उस विश्पलाको चलने फिरने योग्य बनाया। यह शस्त्रक्रियाका कार्य है। इसका वर्णन करनेवाले ये ऋषि हैं—

१ कुत्स आंगिरस। ऋ. १।११२
२ कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः। ऋ. १।११६
३ काक्षीवती घोषा। ऋ. १०।३९

विश्पलाकी टांग काट कर उस स्थानपर लोहेकी टांग बिठलायी और उसको (एतवे कृथः) चलने-फिरने योग्य बनाया। युद्धमें जाने योग्य उसको बनाया। यह बडी कुशलताकी बात है इसमें संदेह नहीं है।

जो शस्त्रक्रिया करनेवाले लोहेकी टांग बिठलाते हैं और मनुष्यको चलने-फिरने योग्य बनाते हैं वे मनुष्यके अन्य अवयवोंको भी कृत्रिम या बनावटी बनाकर लगा सकते हैं इसमें संदेह नहीं हो सकता। हाथ बनावटी बनाकर लगाना, अंगुलियां लगाना, इस तरह बनावटी अवयव बनाकर मनुष्यको कार्य करनेमें समर्थ बनाया जाता था, यह यहां सिद्ध होता है। प्रथमतः टांग काटकर फेंकना यह बडी शस्त्रक्रियाका कार्य है। उस जखमको ठीक करके वहां लोहेकी टांग लगाना, इसी तरह अन्यान्य अवयव लगाना यह विद्या इस तरह वैदिक विद्याओंमें है इसमें संदेह नहीं है।

वैमानिक पथक

भुज्युके रुग्ण सैनिकोंको अश्विदेवोंके तीन या चार वैमानिकोंने बचाया, इसका वर्णन पूर्व स्थानमें दिया है। वे विमान थे, आकाशमेंसे पक्षीके समान वे जाते थे, वे आकाशमें स्थिर भी रह सकते थे और उनमें भूमिपर नीचे रहे जखमी सैनिकों को ऊपर उठाकर लेनेके कला यंत्र थे। इतना वर्णन पूर्व भागमें दिया है। विमान चलानेके योग्य विशेष गति उत्पन्न करनेवाले यंत्र उनमें होंगे ही। ये इंजिन तैयार करनेके कारखाने होंगे, इतनी यंत्र विद्या होगी। यह सब मानना पडता है।

और एक विचार

यहां इस लेखमें (१) अत्रि ऋषिका कारावास, (२) विश्पलाको लोहेकी टांग लगाना, (३) वृद्ध च्यवन ऋषिको तरुण बनाना और (४) वैमानिक शुश्रूषा पथककी सैनिकीय शुश्रूषा ये चार विषय हैं। ये इतिहास जैसे दीखते हैं। एक पक्ष ऐसा है कि वेदमें इतिहास नहीं है ऐसा मानता है। दूसरा पक्ष वेदमें प्राचीन कल्पका इतिहास आ सकता है ऐसा मानता है। सृष्टिके आदिमें वेद प्रकट हुए अतः पूर्व सृष्टिकी कुछ बातें वेदमें आ गई हैं ऐसा इस पक्षका मत है। 'धाता यथा पूर्वमकल्पयत्' विधाताने पूर्व कल्पके समान इस कल्पमें रचना की है। इस कारण इतिहासकी कुछ बातें आ गई हैं। ऐसा ये लोग कहते हैं।

च्यवन ऋषिकी कथाका विचार शतपथने किया है और च्यवनका कुल भृगुका है अथवा अंगिरा ऋषिका है ऐसा

कहा है। च्यवन ऋषिके कुलके विषयमें शतपथकारको ठीक पता नहीं, पर दोनोंमेंसे किसी एक कुलका वह है इतना तो शतपथकार कहता है। अर्थात् च्यवन ऋषि ऐतिहासिक व्यक्ति है ऐसा शतपथका कहना है। इस ऋषिको अश्वि-देवोंने तरुण बनाया, स्त्रियोंका उपभोग लेनेके योग्य सामर्थ्यवान् बनाया। शतपथकारके मतसे च्यवन वृद्ध था, उसको उपचार करके तरुण बनाया यह सिद्ध है। शतपथके इस मतका खण्डन करना असम्भव है।

यदि च्यवन ऋषि ऐतिहासिक व्यक्ति था तो अत्रि, विश्पला और भुज्यु आदिको ऐतिहासिक व्यक्ति माननेमें कोई आपत्ति नहीं हो सकती। ऋग्वेदका पंचम मण्डल अत्रिका ही मण्डल है जिसमें अत्रिकुलोत्पन्न रातहव्य ऋषि-की 'बहुपाय्य स्वराज्य' की घोषणा है। इस घोषणासे भी प्रतीत होता है कि रातहव्य ऋषिके पूर्वजने स्वराज्य स्थापनाकी हलचल की होगी। और शत्रुराष्ट्रके दुःशासनको दूर किया ही होगा।

अपने अनुयायियोंके साथ अत्रिऋषि हलचल करता था। इन सब हलचल करनेवालोंको कारावासमें डाला गया था। ऐसा होना स्वाभाविक ही था। दुष्ट राज्यशासन ऐसा ही करते हैं और प्रजाजनोंकी आकांक्षाएं ऐसी ही मारना चाहते हैं।

रातहव्य ऋषिकी स्वराज्यकी घोषणा स्पष्ट है। उसमें 'बहुपाय्य स्वराज्य' ये पद हैं। बहुसंमतिसे जिस स्वराज्यका पालन किया जाता है उस स्वराज्यमें हम प्रजाकी उन्नतिके लिये यत्न करेंगे। यह रातहव्य ऋषिका कथन उसके पूर्वज अत्रि ऋषिकी हलचलका संबंध बताता है। अर्थात् ये दोनों कथन एक दूसरेके साथ जोडकर देखनेसे दोनों कथनोंका ठीक भाव ध्यानमें आसकता है।

इस तरह च्यवनकी कथा और अत्रिकी कथाका ऐतिहा-सिक स्वरूप स्पष्ट होता है। विश्पला और वैमानिक पथकका भी इसी तरह विचार हो सकता है।

निरुक्तकार 'इति ऐतिहासिकाः' 'इति नैरुक्ताः' इस तरह ऐतिहासिकोंका पक्ष स्वतंत्र ऋषिसे देता है। वह ऐतिहासिक पक्षको छिपाता नहीं। और निरुक्त पक्षसे वह भिन्न पक्ष है ऐसा कहता है इससे यह स्पष्ट होता है कि निरुक्तकारके पक्षसे भिन्न ऐतिहासिक पक्ष था, परंतु वह उसके समय भी था और कई लोग उस पक्षको माननेवाले भी थे। शतपथकार भी इस इतिहासपक्षको देता है, इतना प्रबल यह पक्ष था।

विश्पलाकी टांग और वैमानिक शुश्रूषा पथकके विषयमें भी उसी तरह ऐतिहासिक पक्षवाले अपने पक्षका समर्थन कर सकते हैं।

जो इस इतिहास पक्षको नहीं मानते वे इन शब्दोंके यौगिक अर्थ करते हैं और ये पद गुणबोधक हैं, व्यक्ति बोधक नहीं है ऐसा प्रतिपादन करते हैं।

अश्विनौ देवोंने क्या क्या कार्य किये वे हमने बताये हैं। इतिहास पक्षका आश्रय लेकर ही हमने वह बताया है। पाठक इसको विचार करके जान सकते हैं। दूसरा पक्ष क्या है यह पाठकोंके सामने आजाय इस कारण यहां इस दूसरे पक्षका केवल निर्देश ही किया है। इससे वेदके अर्थका विचार ठीक तरह पाठक कर सकते हैं।

अश्विनौ ये स्वास्थ्यमंत्री थे, उनके कार्य देखनेसे अन्या-न्य बातोंका भी पता लगता है और वैदिक सभ्यताका विशाल स्वरूप ऐतिहासिक पक्षसे ध्यानमें आ जाता है।

पाठक इसका विचार करें। आगे अश्विदेवोंके अन्य कार्योंका स्वरूप और अधिक बताया जायगा।

वेदके व्याख्यान

वेदोंमें नाना प्रकारके विषय हैं, उनको प्रकट करनेके लिये एक एक व्याख्यान दिया जा रहा है। ऐसे व्याख्यान २०० से अधिक होंगे और इनमें वेदोंके नाना विषयोंका स्पष्ट बोध हो जायगा।

मानवी व्यवहारके दिव्य संदेश वेद दे रहा है, उनको लेनेके लिये मनुष्योंको तैयार रहना चाहिये। वेदके उपदेश आचरणमें लानेसे ही मानवोंका कल्याण होना संभव है। इसलिये ये व्याख्यान हैं। इस समय तक ये व्याख्यान प्रकट हुए हैं।

१ मधुच्छन्दा ऋषिका अग्निमें आदर्श पुरुषका दर्शन।
२ वैदिक अर्थव्यवस्था और स्वामित्वका सिद्धान्त।
३ अपना स्वराज्य।
४ श्रेष्ठतम कर्म करनेकी शक्ति और सौ वर्षोंकी पूर्ण दीर्घायु।
५ व्यक्तिवाद और समाजवाद।
६ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।
७ वैयक्तिक जीवन और राष्ट्रीय उन्नति।
८ सप्त व्याहृतियाँ।
९ वैदिक राष्ट्रगीत।
१० वैदिक राष्ट्रशासन।
११ वेदोंका अध्ययन और अध्यापन।
१२ वेदका श्रीमद्भागवतमें दर्शन।
१३ प्रजापति संस्थाद्वारा राज्यशासन।
१४ त्रैत, द्वैत, अद्वैत और एकत्वके सिद्धान्त।
१५ क्या यह संपूर्ण विश्व मिथ्या है?
१६ ऋषियोंने वेदोंका संरक्षण किस तरह किया?
१७ वेदके संरक्षण और प्रचारके लिये आपने क्या किया है?
१८ देवत्व प्राप्त करनेका अनुष्ठान।
१९ जनताका हित करनेका कर्तव्य।
२० मानवके दिव्य देहकी सार्थकता।
२१ ऋषियोंके तपसे राष्ट्रका निर्माण।
२२ मानवके अन्दरकी श्रेष्ठ शक्ति।
२३ वेदमें दर्शाये विविध प्रकारके राज्यशासन।
२४ ऋषियोंके राज्यशासनका आदर्श।
२५ वैदिक समयकी राज्यशासन व्यवस्था।
२६ रक्षकोंके राक्षस।
२७ अपना मन शिवसंकल्प करनेवाला हो।
२८ मनका प्रचण्ड वेग।
२९ वेदकी दैवत संहिता और वैदिक सुभाषितोंका विषयवार संग्रह।
३० वैदिक समयकी सेनाव्यवस्था।
३१ वैदिक समयके सैन्यकी शिक्षा और रचना।
३२ वैदिक देवताओंकी व्यवस्था।
३३ वेदमें नगरोंकी और वनोंकी संरक्षण व्यवस्था।
३४ अपने शरीरमें देवताओंका निवास।
३५, ३६, ३७ वैदिक राज्यशासनमें आरोग्य-मन्त्रीके कार्य और व्यवहार।

आगे व्याख्यान प्रकाशित होते जांयगे। प्रत्येक व्याख्यानका मूल्य ।≈) छः आने रहेगा। प्रत्येकका डा. व्य. ≈) दो आना रहेगा। दस व्याख्यानोंका एक पुस्तक सजिल्द लेना हो तो उस सजिल्द पुस्तकका मूल्य ५) होगा और डा. व्य. ।॥) होगा।

मंत्री — स्वाध्यायमण्डल, पोस्ट- 'स्वाध्यायमण्डल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]

मुद्रक और प्रकाशक- व. श्री. सातवलेकर, भारत-मुद्रणालय, पो.- 'स्वाध्याय मण्डल (पारडी)', 'पारडी' [जि. सूरत]



वैदिक व्याख्यान माला — ३७ वाँ व्याख्यान

[अश्विनौ देवताके मन्त्रोंका निरीक्षण]

वैदिक राज्यशासनमें आरोग्यमन्त्रीके कार्य और व्यवहार

[२]

[यह व्याख्यान नागपूर विश्वविद्यालयमें ता. २१-१२-५७ के दिन हुआ था]

लेखक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

साहित्य-वाचस्पति, वेदाचार्य, गीतालङ्कार

अध्यक्ष- स्वाध्याय मण्डल

स्वाध्यायमण्डल, पारडी

मूल्य छः आने

स्वाध्यायमण्डलके प्रकाशन

'वेद' मानवधर्मके आदि और पवित्र ग्रंथ हैं। हरएक आर्य-धर्मीको अपने संग्रहमें इन पवित्र ग्रंथोंको अवश्य रखना चाहिये।

वेदोंकी संहिताएं

		मूल्य	डा.व्य.
१	ऋग्वेद संहिता	१०)	२)
२	यजुर्वेद (वाजसनेयि) संहिता	३	॥)
३	सामवेद	४)	१)
४	अथर्ववेद (समाप्त होनेसे पुनः छप रहा है।)		
५	यजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता	६)	१)
६	यजुर्वेद काण्व संहिता	४)	॥।)
७	यजुर्वेद मैत्रायणी संहिता	६)	१।)
८	यजुर्वेद काठक संहिता	६)	१।)
९	यजुर्वेद सर्वानुक्रम सूत्रम्	१॥)	॥)
१०	यजुर्वेद वा० सं० पादसूची	१॥)	॥)
११	यजुर्वेदीय मैत्रायणीयमारण्यकम्	॥)	≈)
१२	ऋग्वेद मंत्रसूची	२)	॥)

दैवत-संहिता

१	अग्नि देवता मंत्रसंग्रह	४)	१)
२	इंद्र देवता मंत्रसंग्रह	३)	॥)
३	सोम देवता मंत्रसंग्रह	२)	॥)
४	उषा देवता (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	३)	१)
५	पवमान सूक्तम् (मूल मात्र)	॥)	≈)
६	दैवत संहिता भाग २ [छप रही है]	६)	१)
७	दैवत संहिता भाग ३	६)	१)

ये सब ग्रंथ मूल मात्र हैं।

८ अग्नि देवता— [मुंबई विश्वविद्यालयने बी. ए. ऑनर्सके लिये नियत किये मंत्रोंका अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ संग्रह] ॥) ≈)

सामवेद (कौथुम शाखीयः)

१ ग्रामगेय (वेय, प्रकृति) गानात्मकः-आरण्यक गानात्मकः प्रथमः तथा द्वितीयो भागः ६) १)

२ ऊहगान— (दशरात्र पर्व) १) ।)
(ऋग्वेदके तथा सामवेदके मंत्रपाठोंके साथ ६७२ से ११५२ गानपर्यंत)

३ ऊहगान— (दशरात्र पर्व) ॥) ≈)
(केवल गानमात्र ६७२ से १०१६)

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(अर्थात् ऋग्वेदमें आये हुए ऋषियोंके दर्शन।)

१ से १८ ऋषीयोंका दर्शन (एक जिल्दमें) १६) २)

(पृथक् पृथक् ऋषिदर्शन)

१	मधुच्छन्दा ऋषिका दर्शन	१)	।)
२	मेधातिथि ,, ,,	२)	।
३	शुनःशेप ऋषिका दर्शन	१)	।)
४	हिरण्यस्तूप ,, ,,	१)	।)
५	कण्व ,, ,,	२)	।)
६	सव्य ,, ,,	१)	।)
७	नोधा ,, ,,	१)	।)
८	पराशर ,, ,,	१)	।)
९	गोतम ,, ,,	२)	।≈)
१०	कुत्स ,, ,,	२)	।≈)
११	त्रित ,, ,,	१॥)	।≈)
१२	संवनन ,, ,,	॥)	≈)
१३	हिरण्यगर्भ ,, ,,	॥)	≈)
१४	नारायण ,, ,,	१)	।)
१५	बृहस्पति ,, ,,	१)	।)
१६	वागाम्भृणी ,, ,,	१)	।)
१७	विश्वकर्मा ,, ,,	१)	।)
१८	सप्त ,, ,,	॥)	≈)
१९	वसिष्ठ ,, ,,	७)	१॥)

यजुर्वेदका सुबोधभाष्य

अध्याय १—	श्रेष्ठतम कर्मका आदेश	१॥)	≈)
अध्याय ३०—	मनुष्योंकी सच्ची उन्नतिका सच्चा साधन	२)	≡)
अध्याय ३२—	एक ईश्वरकी उपासना	१॥)	≈)
अध्याय ३६—	सच्ची शांतिका सच्चा उपाय	१॥)	≈)
अध्याय ४०—	आत्मज्ञान-ईशोपनिषद्	२)	।≈)

अथर्ववेदका सुबोध भाष्य

(१ से १८ काण्ड तीन जिल्दोंमें)

१ से ५ काण्ड	८)	२)
६ से १० काण्ड	८)	२)
११ से १८ काण्ड	१०)	२।)

मन्त्री— स्वाध्याय मण्डल, पोस्ट- 'स्वाध्याय मण्डल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]

ॐ

[अश्विनौ देवताके मन्त्रोंका निरीक्षण]

वैदिक राज्यशासनमें आरोग्यमन्त्रीके कार्य और व्यवहार

[तीसरा व्याख्यान]

अश्विदेवोंके कार्य

१ कविको दृष्टि दी

'कवि' नामका एक ऋषि था। वह अन्धा था। उसको अश्विदेवोंने दृष्टि दी। इस विषयमें नीचे दिया मंत्र देखने योग्य है—

कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः।

उतो कविं पुरुभुजा युवं ह
कृपमाणं अकृणुतं विचक्षे ॥ ऋ. १।११६।१४

'बडे हाथवाले अश्विदेवो! तुम्हारी कृपाकी इच्छा करनेवाले (कविं) कवि नामक ऋषिको (वि-चक्षे अकृणुतं) विशेष देखनेके लिये उत्तम दृष्टि युक्त किया।' इसमें कवि ऋषि अन्धा था, या उसको दीखता नहीं था, उसको देखने योग्य बनाया। अश्विदेवोंने उसकी आंखें ठीक कीं, जिससे वह विशेष रीतिसे देखने योग्य हो गया।

२ ऋज्राश्वको दृष्टि रखी

ऋज्राश्व अन्धा हुआ था, पहिले इसके आंख ठीक थे, पर पीछेसे उनके आंख पिताने बिगाडे, वे अश्विदेवोंने ठीक किये। देखिये-

कक्षीवान् दैर्घतम औशिजः।

शतं मेषान् वृक्ये चक्षदानं
ऋज्राश्वं तं पिताऽन्धं चकार।
तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष
आधत्तं दस्रा भिषजौ अनर्वन् ॥
ऋ. १।११६।१६

'(वृक्ये शतं मेषान् चक्षदानं) वृकीको सौ भेडोंको खानेके लिये देनेके अपराधसे (तं ऋज्राश्वं) उस ऋज्राश्वको (पिता अन्धं चकार) पिताने अन्धा बना दिया। हे (नासत्या दस्रा भिषजा) सत्य मार्ग बतानेवाले, शत्रुनिवारक वैद्यो! (तस्मै अनर्वन् अक्षी) उस ऋज्राश्वके लिये प्रतिबंध रहित दोनों आंखें (विचक्षे आ अधत्तं) विशेष रीतिसे देखनेके लिये तुमने लगा दीं।'

यहां 'भिषजौ' पद है, औषधोंसे चिकित्सा करनेवालोंका वाचक यह पद है। यहां औषधचिकित्सा करके अश्विदेवोंने उसकी आंखें ठीक कीं ऐसा इससे प्रतीत होता है। ऋज्राश्व मेषोंका रक्षण कर रहा था। भेडियेने सौ मेष खाये तो भी उसने पर्वाह नहीं की, इससे उसके पिताको बहुत क्रोध आया और उसने उसके मुखपर कुछ मारा होगा, जिससे ऋज्राश्वकी आंखें फूट गयीं। अश्वीदेवोंनें औषधोपचारसे उसकी आंखें ठीक कीं, सब आंखोंके दोष दूर किये और उत्तम दृष्टि उनकी आंखोंमें रहे ऐसा किया। 'अधत्तं' पद मंत्रमें है, यह विशेष महत्वका पद है। बाहरसे वस्तु लाकर उसको नेत्रके स्थानमें आधान करनेका भाव यहां दीखता है।

'नासत्यौ' पद (न+असत्यौ) है। जो कभी असत्य नहीं होते, जिनका इलाज यशस्वी होता है। 'दस्रा' पद भी दोषोंका नाश करनेके अर्थमें है। शत्रुको दूर करनेवाले, आंखमें जो विषमता हो गयी थी, उसको दूर करनेवाले ये चिकित्सक हैं।

'अनर्वन् अक्षी' प्रतिबंध रहित आंख, जिनमें बिगाड या दोषकी संभावना नहीं है, ऐसे दो आंख (वि-चक्षे) विशेष रीतिसे देखनेकी क्रिया करनेके लिये (आ धत्त) स्थापन किये। पिताने ऋज्राश्वको क्रोधसे अन्धा बनाया था, क्योंकि ऋज्राश्व मेषोंको वृकी खाती थी इसको रोकता नहीं था। सौ मेष वृकीने खाये, यह ऋज्राश्व देख रहा था, पर वृकीको प्रतिबंध करता नहीं था। इससे पिता क्रोधित हुआ और उसने अपने पुत्रको अन्धा बना दिया। अर्थात् पिताने पुत्रकी आंखें फोड दी। इस कारण दोनों आंखोंसे ऋज्राश्व अन्धा बन गया।

वह ऋज्राश्व अश्विदेवोंके पास चला गया। अश्विदेवोंने उसके दोनों आंखोंमें (अक्षी आ अधत्त) दो नेत्र बिठला दिये। 'आ धा' धातुका अर्थ 'स्थापन करना, आधान करना, लगा देना' है। अर्थात् 'ये आंख बाहरसे लाकर लगा दिये, यह भाव यहां है। 'तस्मै अक्षी आधत्तं' उस ऋज्राश्वके लिये दो आंख लाकर लगा दिये और औषधोपचारसे उस स्थानके सब दोष दूर कर दिये।

यह कार्य शस्त्रक्रिया तथा औषधोपचारका है ऐसा प्रतीत हो रहा है। आजकल एकके आंख अथवा कृत्रिम आंख दूसरेको लगा देते हैं, वैसा ही यह कार्य दीख रहा है। मरे हुएके आंख निकालकर दूसरेके आंखमें लगा देते हैं। वैसा किया होगा अथवा बनावटी आंख लगा दिये होंगे। 'आ अधत्तं' यह क्रिया आधान कर्म बता रही है। यही बात नीचे दिये मंत्र बता रहा है—

कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः।

शतं मेषान् वृक्ये मामहानं
तमः प्रणीतं अशिवेन पित्रा।
आक्षी ऋज्राश्वे अश्विनौ अधत्तं
ज्योतिः अन्धाय चक्रथुः विचक्षे।

ऋ. १।११७।१७

'सौ मेषोंको वृकीको खानेके लिये प्रदान करनेवाले ऋज्राश्व नामक पुत्रको अहितकारी पिताने अन्धा बना दिया। हे अश्विदेवो! उस ऋज्राश्वके लिये तुमने दोनों आंखें बिठला दी और उस अन्धेको देखनेके लिये ज्योति बना दी।'

इस मंत्रमें 'तस्मै ऋज्राश्वे अक्षी आधत्तं, अन्धाय विचक्षे ज्योतीः चक्रथुः' इस ऋज्राश्वके लिये दोनों आंखोंका आधान किया, और उस अन्धेके लिये देखनेके हेतुसे ज्योती दान की। यहां भी 'अक्षी आधत्तं' अर्थात् आंख लाकर लगा दिये ऐसा कहा है यह शस्त्रक्रियासे होनेवाला कार्य है। तथा 'अन्धाय विचक्षे ज्योतीः चक्रथुः।' अन्धेके आंखोंमें ज्योती निर्माण की यह औषध प्रयोगसे भी होगा।

कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः।

चित् ही रिरेभ अश्विना वां
अक्षी शुभस्पती दन्॥

ऋ. १।१२०।६

'हे अश्विदेवो! हे शुभकर्म करनेवालो! (अक्षी आदन्) दोनों आंखें प्राप्त करके (वां रिरेभ) मैं तुम्हारी प्रशंसा करता हूं।' जिसने दोनों आंखें पुनः प्राप्त की वह अश्विदेवोंकी प्रशंसा करता है। जिस वैद्यने नयीं आंखें लगा दीं उसकी प्रशंसा रोगी अवश्य ही करता रहेगा।

इस तरह आंखोंको ठीक करने, नयीं आंखें लगाने और नयी ज्योती आंखमें उत्पन्न करनेके विषयमें वेदमंत्रमें वर्णन है।

३ अंधे और लूलेको ठीक करना

एक ऋषि अन्धा और लूला था। अश्विदेवोंने उसका आन्धापन दूर किया और लूलापन भी दूर करके उसको चलने फिरने योग्य बना दिया। इस विषयमें यह मंत्र देखने योग्य है—

कुत्स आंगिरस ऋषिः।

याभिः शचीभिः वृषणा परावृजं
प्रान्धं श्रोणं चक्षसे एतवे कृथः॥

ऋ. १।११२।८

'(हे वृषणा अश्विना!) हे बलवान् अश्विदेवो! (याभिः शचीभिः) जिन शक्तियोंसे तुमने (अन्धं परावृजं) अन्धे

परावृजको (चक्षसे प्रकृथः) दृष्टिसे संपन्न किया और (श्रोणं प्लवसे कृथः)लंगडे-लूलेको चलने फिरने योग्य बना दिया।'

यह भी शस्त्रक्रियाका कार्य दीखता है। लंगडे-लूलेके पांव ठीक किये यह शस्त्रकर्म है। शस्त्रकर्मके पश्चात् उसमें भरनेके लिये औषधीप्रयोग किये होंगे। परावृज ऋषि अन्धा भी था और लूला भी था। इसका अन्धापन दूर किया और इसके पांव भी दुरुस्त किये।

ऋज्राश्वको केवल आंखें ठीक करनेका कार्य था। उसको नई आंखें लगा दी। परंतु परावृजकी आंखें दुरुस्त की (अन्धं चक्षसे कृथः) अंधेको देखनेके लिये योग्य बना दिया और (श्रोणं प्लवसे कृथः) लूले-लंगडेको चलने फिरने योग्य बना दिया।

यहां नयी आंख लगानेका उल्लेख नहीं, परंतु जो आंख थी वही ठीक करनेका वर्णन है। इसलिये यद्यपि ये दोनों आंख ठीक करनेके वर्णन हैं, तथापि उपचारपद्धति पृथक् पृथक् है। यह यहां विशेष रीतिसे और सूक्ष्म रीतिसे देखना योग्य है।

४ कण्वको दृष्टि दी

कण्वको दृष्टि देनेका वर्णन वेदमें है वह यहां देखिये—

हिरण्यस्तूप आंगिरस ऋषिः।

याभिः कण्वं अभिष्टिभिः प्रावतं युवं अश्विना।
ताभिः ष्वस्मां अवतं शुभस्पती पातं सोमं
ऋतावृधा॥ ऋ. १।४७।५

' जिन शक्तियोंसे तुमने, हे अश्विदेवो ! कण्वकी रक्षा की उन शक्तियोंसे तुम हमारी रक्षा करो। और सोमपान करो।'

तथा— कुत्स आंगिरसः।

याभिः कण्वं प्र सिषासन्तं आवतं
ताभिः ऊ षु ऊतिभिः अश्विना गतम्॥
ऋ. १।११२।५

' जिन साधनोंसे स्तुति करनेवाले कण्वकी तुमने सुरक्षा की, उन रक्षा साधनोंसे तुम हमारे पास आओ।' तथा—

कक्षीवान् दैर्घतमस आंगिरसः।

महः क्षोणस्य अश्विना कण्वाय
प्रवाच्यं तत् वृषणा कृतं वां
यत् नार्षदाय श्रवो अध्यधत्तम्॥ ऋ. १।११७।८

' हे अश्विदेवो ! तुमने अन्धे कण्वको दृष्टि दी और नार्षदको श्रवणकी शक्ति दी, यह वर्णनके योग्य कर्म तुमने किया।' कण्वको चक्षु दिये इस विषयमें नीचे लिखा मंत्र अधिक स्पष्ट है—

युवं कण्वाय अपिरिप्ताय चक्षुः प्रत्यधत्तम्।
ऋ. १।११८।७

तुमने अन्धे कण्वको चक्षु दिये। तथा यही बात और भी कही है—

ब्रह्मातिथिः काण्व।

युवं कण्वाय नासत्या अपिरिप्ताय हर्म्ये।
शश्वदूतीर्दशस्यथः॥ ऋ. ८।५।२३

हे अश्विदेवो। तुमने (अपिरिप्ताय कण्वाय) दुःखी कण्वको (हर्म्ये) महलमें रखकर शाश्वत संरक्षण दिया।'

तथा और—

यथा चित् कण्वं आवतं॥ ऋ. ८।५।२५

जैसी तुमने कण्वकी रक्षा की। इसमें कण्व (हर्म्ये) महलमें था, दृष्टि न होनेसे दुःखी था, उसको दृष्टि दी और उसकी सुरक्षा की।

कण्व ऋषि था। बडे गृहमें रहता था। ' महाशाला, महाश्रोत्रियाः ' ऐसा ऋषियोंका वर्णन आता है। ऋषि झोंपडीमें नहीं रहते थे, विशाल मकानमें ही रहते थे। क्योंकि उनके पास सैकडों युवक विद्या सीखनेके लिये आते थे। वे सब झोंपडीयोंमें कैसे रहेंगे ? ' हर्म्ये ' पदसे विशाल मकानका बोध होता है और वह योग्य है।

५ कलिको तरुण बनाया

कुत्स आंगिरसः।

कलिं याभिः वित्तजानिं दुवस्यथः॥
ऋ. १।११२।१५

(वित्त-जानिं कलिं) जिसको स्त्री प्राप्त है अर्थात् जो विवाहित हुआ है उस कलिकी सुरक्षा की। यह कलि वृद्ध हुआ था उसको तरुण बनाकर अश्विदेवोंने उसकी रक्षा की। इस विषयमें देखिये—

जमदग्नि भार्गवः।

युवं विप्रस्य जरणां उपेयुषः
पुनः कलेः अकृणुतं युवद्वयः॥ ऋ. ८।१०।१८

'(जरणां उपेयुषः) वृद्धावस्था प्राप्त हुए (कलेः)

कलिको (पुनः युवद् वयः अकृणुतं) पुनः यौवनकी आयु प्रदान की।'

जिस तरह च्यवनके विषयमें विस्तारसे तरुण बननेका वृत्त कथन किया है वैसा कलिके विषयमें नहीं किया, परंतु 'वृद्धको तरुण बनाया' इतनी बात तो अत्यंत स्पष्ट है। यह च्यवनके तरुण बनानेके समान ही है।

६ साहदेव्यको दीर्घायु किया

वामदेवो गौतमः।

एषा वां देवावश्विना कुमारः साहदेव्यः।
दीर्घायुः अस्तु सोमकः ॥ ९ ॥
तं युवं देवावश्विना कुमारं साहदेव्यम्।
दीर्घायुषं कृणोतन ॥ १० ॥ ऋ. ४।१५।९-१०

'हे अश्विदेवो! तुमने सहदेव कुमार सोमकको दीर्घायु किया।' अर्थात् यह कुमार बीमार या मरियल-सा था इसको हृष्टपुष्ट बनाकर दीर्घायु किया।

यह औषधिप्रयोगका कार्य है। कुमारको दीर्घायु बनानेका अर्थ कुमार अति कृश और मरणोन्मुख था उसको बलवान् बनाकर दीर्घायु किया ऐसा स्पष्ट है।

७ श्यावको दीर्घायु किया और पत्नी दी

युवं श्यावाय रुशतीं अदत्तं। ऋ. १।११७।८

'तुमने श्यावको तेजस्विनी पत्नी दी।' अर्थात् उसके लिये सुंदर पत्नी दी। यह श्याव शरीरमें तीन स्थानपर खंडित था। देखिये—

त्रिधा ह श्यावं अश्विना विकस्तम्।
उज्जीवसे ऐरयतं सुदानू ॥ ऋ. १।११७।२४

'हे अश्विदेवो! (त्रिधा विकस्तं श्यावं) तीन स्थानोंपर जखमी हुए श्यावको (जीवसे उद् ऐरयतं) दीर्घ जीवनके लिये तुमने ऊपर उठाया।' और ऐसे पुरुषको ठीक करके उसका विवाह सुन्दर स्त्रीके साथ कर दिया और उसको दीर्घ आयु भी दी।

यह श्याव शरीरमें तीन स्थानोंपर टूटा हुआ था। बडी जखमें हुई थी। इनको ठीक किया, घाव ठीक किये, उसका शरीर अच्छा किया, सामर्थ्यवान् किया, दीर्घ आयुवाला किया और उसका विवाह भी सुन्दर तरुणीके साथ किया।

इसमें शरीरपरके घाव दुरुस्त करना, उससे शरीरमें जो दोष हुए हों वे दूर करने, शरीर सामर्थ्यवान् करना और विवाह करके गृहस्थ धर्ममें सुखसे रहने योग्य बनाना ये सब कार्य हैं।

८ वंदनका रक्षण और दीर्घायुकी प्राप्ति

वन्दनका बचाव अश्विदेवोंने किया था। इसका निर्देश नीचे लिखे मंत्रोंमें देखिये—

उत वन्दनं ऐरयतं स्वर्दृशे ॥ ऋ. १।११२।५

'अपनी दृष्टि प्राप्त करनेके लिये वन्दनको ऊपर उठाया।' अर्थात् वन्दन गिर गया था उसको ऊपर उठाया और उसको अपनी (स्वर्दृशे) दृष्टि-अपने आंखोंसे प्रकाश देखनेकी स्थिति प्राप्त होनेके लिये जो करना आवश्यक था, वह अश्विदेवोंने किया। इसी विषयमें और देखिये—

तद् वां नरा शंस्यं राध्यं च
अभिष्टिमद् नासत्या वरूथम्।
यद् विद्वांसा निधिमिव अपगूळ्हं
उद् दर्शतात् ऊपथुः वन्दनाय ॥
ऋ. १।११६।११

(हे नरा नासत्या) हे नेता अश्विदेवो! (वां तद् अभिष्टिमद् वरूथं) वह तुम्हारा स्पृहणीय और आदरणीय (शंस्यं राध्यं) प्रशंसनीय तथा पूज्य कार्य है। हे विद्वानो! (यद्) जो (अपगूळ्हं निधिं इव) गुप्त खजानेके समान (दर्शतात्) देखने योग्य बडे गहरे गढेसे (वन्दनाय उद् ऊपथुः) वन्दनको ऊपर उठाया।'

वन्दन गहरे गढेमें पडा था, आंखें टूट गयीं थीं, अपघातसे निर्बल हुआ था, इसको गढेसे ऊपर उठाया, बाहर निकाला, बलवान् बना दिया और उसकी दृष्टि भी ठीक कर दी।

इस मंत्रमें 'अप गूळ्हं निधिं इव' ये पद हैं। खजानेको गुप्त स्थानमें भूमिमें गाडकर रखते थे। यह बात रेभके वर्णनमें भी आ चुकी है। इनकी यहां तुलना करना योग्य है। दोनों ऋषि गढेमें गिरे थे। उनकी तुलना 'गढेमें रखे धनके समान ये ऋषि गढेमें थे' ऐसी की है। अर्थात् अपने धनको भूमिमें गाडकर रखनेकी बात यहां स्पष्ट दीखती है। अब वंदनका वर्णन और देखिये—

सुषुप्वांसं न निर्ऋतेः उपस्थे
सूर्यं न दस्रा तमसि क्षियन्तम्।
शुभे रुक्मं न दर्शतं निखातम्
उद् ऊपथुः अश्विना वन्दनाय ॥ ऋ. १।११७।५

'हे (दस्रा अश्विना) शत्रुनिवारक अश्विदेवो! (तमसि क्षियन्तं सूर्यं न) अन्धेरे छिपे सूर्यके समान (निर्ऋतेः उपस्थे सुषुप्वांसं) विनाशके समीप सोये हुएके समान विनाशको करीब करीब प्राप्त हुए (शुभे दर्शतं रुक्मं न) शोभाके योग्य दर्शनीय सुवर्णके समान (निखातं) गाडे हुए (वन्दनाय उत् ऊपथुः) वन्दनके हित करनेके लिये तुमने उसको ऊपर उठाया।'

इस मंत्रमें कहा है कि वन्दन गढेमें पडा था, विनाश होनेकी अवस्थातक (निर्ऋतेः उपस्थे) उसकी शोचनीय अवस्था बनी थी, (शुभे रुक्मं दर्शतं निखातं न) सुन्दर दर्शनीय आभूषण गढेमें रखनेके समान वन्दनको गढेमें डाल दिया था, अथवा वन्दन गढेमें गिर गया था, उसको तुमने ऊपर उठाया और ठीक किया।

इस मंत्रमें भी "सुन्दर आभूषण गढेमें रखते हैं।" (दर्शतं रुक्मं निखातं न) ऐसा कहा है। उदयके पूर्व सूर्य जैसा अन्धेरेमें रहता है (सूर्यं न तमसि क्षियन्तं) इस उपमामें यह वन्दन ऋषि सूर्यके समान तेजस्वी है, परंतु सूर्य सवेरे शामको अन्धेरेसे छिपा रहता है, वैसा यह वन्दन ऋषि अत्यन्त ज्ञानी है, परंतु गढेमें गिरनेसे विपत्तिमें पडा है। वह ज्ञानी होनेपर भी गढेमें गिरनेके कारण विनाश होनेकी अवस्थातक पहुंचा था। इस मरनेकी अवस्थातक पहुंचे हुए वन्दनको अश्विदेवोंने ऊपर उठाया और सुदृढ बनाया। और देखिये—

उत वन्दनं ऐरयतं दंसनाभिः ॥ ऋ. १।११८।६
प्र दीर्घेण वन्दनः तारि आयुषा ॥
ऋ. १।११९।६

'तुमने वन्दनको (दंसनाभिः) अपनी अनेक शक्तियोंसे बाहर निकालकर ठीक किया। तथा (दीर्घेण आयुषा प्र तारि) उसको दीर्घ आयु देकर उसका तारण किया।'

उसको दीर्घायु बनाया ऐसा यहां कहा है। इस वन्दनके शरीरपर बहुत प्रयोग करनेकी आवश्यकता थी ऐसा अनुमान 'दंसनाभिः' पदसे हो सकता है। इस पदसे तीन या अधिक उपाय किये गये थे ऐसा स्पष्ट दीखता है। वन्दनकी अवस्था कैसी थी इसका विचार करनेके लिये नीचे लिखे मंत्रका विचार करना योग्य है—

युवं वन्दनं निर्ऋतं जरण्यया
रथं न दस्रा करणा सं इन्वथः।
क्षेत्राद् आ विप्रं जनथो विपन्यया
प्र वां अत्र विधते दंसना भुवत् ॥
ऋ. १।११९।७

'हे (दस्रा करणा) दोष दूर करनेवाले कुशल अश्विदेवो! (जरण्यया निर्ऋतं वंदनं) बुढापेसे पूर्णतया कष्टदायी अवस्थाको पहुंचे वंदनको (रथं इव समिन्वथ) रथको जिस तरह दुरुस्त करते हैं उस तरह उसको नयासा-तरुणसा-बनाया और (विपन्यया) अपनी बुद्धिसे (विप्रं क्षेत्रात् आजनथः) उस ब्राह्मणको क्षेत्रके गढेसे ऊपर लाकर नया तरुण जैसा बनाया। इस तरह तुम्हारे प्रशंसनीय कार्य हुए हैं।'

युवं वंदनं ऋश्यदात् उदूपथुः ॥ ऋ. १०।३९।८

'तुमने वंदनको गहरे कूवेसे ऊपर उठाया।' इत्यादि मंत्र वन्दनको सुदृढ, दीर्घायु, तरुण बनाया, उसकी दृष्टि सुधारी और सुखदायी जीवनसे युक्त बनाया ऐसा भाव बता रहे हैं।

वन्दन ऋषि विद्वान् तथा तेजस्वी था। वह गहरे गढेमें गिर गया था, उसकी दृष्टि दूर होकर वह अन्धा बना था, कृश तथा शरीरसे निर्बल बना था, मरनेतक अवस्था उसकी पहुंची थी। ऐसी अवस्थामें उसको गढेसे ऊपर उठाया, उसकी दृष्टि ठीक की, उसका शरीर सबल किया और उसको दीर्घायु बनाया रथको दुरुस्त करनेके समान उसके हरएक अवयव ठीक करने पडे। अर्थात् अनेक उपाय करके उसको तरुण तथा दीर्घायु बनाया गया।

९ रेभकी सहायता

रेभकी सहायता अश्विदेवोंने की थी, इस विषयके मंत्र अब देखिये—

कुत्स आंगिरसः।

याभी रेभं निवृतं सितं अद्भ्यः
उत् वंदनं ऐरयतं स्वर्दृशे ॥ ऋ. १।११२।५

'(निवृतं सितं रेभं) डुबाये और बंधे रेभको तुमने (याभिः) जिन साधनों तथा उपायोंसे (स्वर्दृशे उदैरयतं) प्रकाशको देखनेके लिये ऊपर उठाया। इसी तरह वन्दनको

भी तुमने ऊपर उठाया। वन्दनका सब वर्णन इससे पूर्व आ चुका ही है।' रेभका वर्णन यहां देखना है–

कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः।

दश रात्रीः अशिवेना नव द्यून्
अवनद्धं श्नथितं अप्सु अन्तः।
विप्रुतं रेभं उदनि प्रवृक्तं
उन्निन्यथुः सोममिव स्रुवेण॥ ऋ. १।११६।२४

'(अप्सु अन्तः) जलके अन्दर (दश रात्रीः) दस रात्री और (नव द्यून्) नौ दिनतक (अशिवेन अवनद्धं) अमंगलकारी शत्रुने बांधकर रखे हुए (उदनि विप्रुतं) जलमें भीगे (प्रवृक्तं रेभं) ऐसे व्यथित रेभको (उन्निन्यथुः) ऊपर लाया, जिस तरह स्रुवासे सोमको ऊपर लाते हैं।'

इस मंत्रमें कहा है कि अशुभकारी दुष्ट शत्रुओंने रेभको बांधकर नौ दिन और दस रात्रीतक जलमें डुबाकर रखा था। इस कारण उसको बडी पीडा हुई थी। अश्विदेवोंने उसको ऊपर निकाला और उसके सब कष्ट दूर किये। जलमें डूबे रहनेके कारण शरीरको शीतकी बाधा हुई थी, उस बाधाको दूर करके उसका शरीर ठीक किया। और देखिये—

कक्षीवान्।

अश्वं न गूळ्हं अश्विना दुरेवैः
ऋषिं नरा वृषणा रेभं अप्सु।
सं तं रिणीथो विप्रुतं दंसोभिः
न वां जूर्यन्ति पूर्व्या कृतानि॥ १।११७।४

हे (वृषणा नरा अश्विना) बलवान् नेता अश्विदेवो! (दुरेवैः अप्सु गूळ्हं) दुष्टों द्वारा जलमें डुबाये (तं रेभं ऋषिं) उस रेभ ऋषिको (दंसोभिः) अपने अनेक भैषज्य कर्मोंसे (अश्वं न) घोडे जैसा बलवान् (संरिणीथः) बना दिया। ये (वां पूर्व्या कृतानि न जूर्यन्ति) आपके पूर्व समयमें किये कर्म क्षीण नहीं होते अर्थात् इनका स्मरण हमें है। ये कर्म आपने किये थे यह प्रसिद्ध बात है।

रेभ ऋषि था ऐसा यहां कहा है। दुष्टोंने उस ऋषिको बांधकर जलमें फेंक दिया था। क्योंकि वह ऋषि रेभ उनके दुष्ट कृत्योंमें बाधा डालता था। इस रेभको अश्विदेवोंने जलसे ऊपर लाया और अनेक उपचारोंसे उसको घोडेके समान हृष्टपुष्ट और बलवान् बना दिया। और देखिये—

हिरण्यस्य इव कलशं निखातं
उद् ऊपथुः दशमे अश्विना अहन्॥
ऋ. १।११७।१२

'सोनेका कलश जैसा जमीनमें गाडकर रखते हैं, उस तरह रेभ ऋषिको जलमें डुबा दिया था, हे अश्विदेवो! तुमने दसवें दिन उसको (उद् ऊपथुः) ऊपर निकाला।

यहां भी रेभ ऋषि दस दिन जलमें डुबाया गया था ऐसा कहा है। दस दिन जलमें पडा रहनेसे वह बडा निर्बल हो गया था। उसको औषधोपचारसे अश्विदेवोंने ठीक किया था।

इस मंत्रमें 'हिरण्यस्य कलशं निखातं' ये पद हैं। सोनेके आभूषणोंसे भरा कलश भूमिमें गाड देते हैं। अर्थात् सुरक्षित रखनेके लिये भूमिमें रखते हैं। यह कथन विचारणीय है। आभूषणोंको सुरक्षित रखनेके लिये ऐसा करते हैं। ऐसे कथन इससे पूर्व भी दो तीन बार आये हैं। रेभ जलमें डुबाया था, इसको समझानेके लिये यह उपमा है। सोनेके आभूषण कलशमें बंद करके जैसे जमीनमें गाड देते हैं, उस तरह रेभको जलमें बांधकर डुबाया था। और भी देखिये—

उत् रेभं दस्रा वृषणा शचीभिः।
ऋ. १।११८।६

'हे (दस्रा वृषणा) शत्रुके नाशकर्ता बलवान् अश्विदेवो, तुमने अपनी (शचीभिः रेभं उत् ऐरयतं) शक्तियोंसे रेभ ऋषिको ऊपर निकाला।' तथा–

युवं रेभं परिषूतेः उरुष्यथः। ऋ. १।११९।६

'आपने रेभको (परिषूतेः उरुष्यथः) संकटसे बचाया।' और देखिये–

काक्षीवती घोषा।

युवं ह रेभं वृषणा गुहाहितं।
उदैरयतं ममृवांसं अश्विना॥ ऋ. १०।३९।९

'हे (वृषणा अश्विना) बलवान् अश्विदेवो! तुमने गुहामें पडे रेभ ऋषिको (ममृवांसं रेभं) मरनेकी अवस्थासे ऊपर लाकर बचा दिया।'

इससे स्पष्ट होता है कि रेभ ऋषि मरनेकी अवस्थातक पहुंचा हुआ था। अश्विदेवोंने ऐसी अवस्थासे उसको गढेसे बाहर निकाला और उसको हृष्टपुष्ट, स्फूर्तिला तथा घोडेके समान कार्यक्षम बना दिया। यह औषधि प्रयोगोंका सामर्थ्य है।

१० दधीची ऋषिको अश्वका सिरका भाग लगाना

दधीची ऋषि था। उसके पास मधुविद्या थी। उसको अश्विदेव सीखना चाहते थे। अश्विदेवोंने दधीची ऋषिके सिरपर शस्त्रक्रिया की और उस स्थानपर घोडेके सिरका भाग लगाया। उसके पश्चात् दधीचीने मधुविद्या अश्वि-देवोंको सिखाई। यह कथा नीचे लिखे मंत्रोंमें दीखती है—

दध्यङ् ह यत् मधु आथर्वणो वां।
अश्वस्य शीर्ष्णा प्र यदीं उवाच ॥ ऋ. १।११६।१२
आथर्वणाय अश्विना दधीचेऽश्व्यं शिरः प्रत्यै-
रयतम्। स वां मधु प्रवोचत् ऋतायन् त्वाष्ट्रं
तत् दस्रौ अपि कक्ष्यं वा ॥ ऋ. १।११७।२२
युवं दधीचो मन आ विवासथः।
अथ शिरः प्रति वां अश्व्यं वदत् ॥ ऋ. १।११९।९

'(आथर्वणः दध्यङ्) अथर्वकुलमें उत्पन्न दधीची ऋषिने (अश्वस्य शीर्ष्णा ह) घोडेके सिरसे ही (वां) तुम दोनोंको (यत् ईं मधु प्र उवाच) मधुविद्याका उपदेश किया था।'

हे (दस्रौ) शत्रुका विनाश करनेवाले अश्विदेवो! (आथर्वणाय दधीचे) अथर्वकुलोत्पन्न दधीची ऋषिके लिये (अश्व्यं शिरः) घोडेका सिर (प्रति ऐरयतं) तुमने लगा दिया। (सः ऋतायन्) वह सत्यका प्रचार करता था, (वां मधु प्रवोचत्) तुम दोनोंको उसने मधुविद्याका उपदेश किया था। (यत् वां) वैसी ही तुम दोनोंकी (अपि कक्ष्यं त्वाष्ट्रं) अवयवोंको जोडनेकी विद्या जो त्वष्टासे प्राप्त थी वह भी यहां प्रसिद्ध हुई।

'(युवं दधीचः मनः) तुम दोनों दधीची ऋषिका मन (आ विवासथः) अपनी ओर आकर्षित कर चुके और (अश्व्यं शिरः वां प्रति अवदत्) घोडेके सिरने तुमको वह उपदेश दिया।

इन मंत्रोंमें दधीची ऋषिको घोडेका सिरका भाग लगाया, और उसने अश्विदेवोंको मधुविद्या सिखाई यह वृत्त है। यहां प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या घोडेका सिरका भाग मनुष्यके सिरपर बिठलाया जा सकता है? आजके शस्त्र-विद्याके वज्ञ कहते हैं कि ऐसा नहीं होता। पर यही बात उपनिषद्में भी कही है। बृहदारण्यक उपनिषद्में कहा है—

इदं वै तत् मधु दध्यङ्ङाथर्वणोऽश्विभ्यां उवाच।
तदेतदृषिः पश्यन्नवोचत्। "तद्वां नरा सनये
दंस उग्रं आविष्कृणोमि तन्यतुः न वृष्टिम्।
दध्यङ् ह यत् मधु आथर्वणो वां अश्वस्य
शीर्ष्णा प्र यदीं उवाच" इति ॥ १६ ॥

बृ. उ. २।५।१६

'यह मधुविद्या अथर्ववेदी दधीची ऋषिने अश्विदेवोंको कही। इस विद्याको जाननेवाले ऋषिने कहा है। 'अथर्व-वेदी दधीची ऋषिने घोडेके मुखसे तुम दोनोंको मधु-विद्याका उपदेश किया। (हे नरा) नेता अश्विदेवो! (तत् वां इदं उग्रं दंसः) वह यह आपका शस्त्रक्रियाका उग्र कर्म है, जो लोकहितकारी वृष्टिके समान लोकहितके लिये मैं प्रसिद्ध करता हूं।' यह मंत्र ऋ. १।११६।१२ वां है। और देखिये—

इदं वै तत् मधु दध्यङ्ङाथर्वणोऽश्विभ्यां उवाच।
तदेतदृषिः पश्यन्नवोचत्।
"आथर्वणाय अश्विनौ दधीचेऽश्व्यं शिरः
प्रत्यैरयतम्। स वां मधु प्रवोचत् ऋतायन्
त्वाष्ट्रं यद्दस्रावपि कक्ष्यं वां" इति ॥

बृ. उ. २।५।१७

'यह वह मधुविद्याका ज्ञान अथर्वकुलोत्पन्न दधीचीने अश्विदेवोंको कहा। वह यह ऋषि देखकर बोला। 'हे अश्विदेवो! तुमने दधीचीको घोडेका सिर बिठलाया। सत्य-निष्ठ उस ऋषिने उस मधुविद्याको तुम्हें उपदेश द्वारा कहा। हे (दस्रा) शत्रुनाशकर्ता अश्विदेवो! (त्वाष्ट्रं कक्ष्यं) त्वष्टृ संबंधी गूढ ज्ञान तुम्हें उसने कहा।' यहांका मंत्र वही है जो पूर्वस्थानमें दिया है। ऋ. १।११७।२२

इदं वै तत् मधु दध्यङ्ङाथर्वणो अश्विभ्यां
उवाच। तदेतदृषिः पश्यन्नवोचत्। "पुरश्चक्रे
द्विपदः पुरश्चक्रे चतुष्पदः। पुरः स पक्षी

भूत्वा पुरः पुरुष आविशादिति ।" स वा अयं पुरुषः सर्वासु पूर्षु पुरिशयो नैनेन किंचनं अनावृतं नैनेन किंचनासंवृतम् ॥ बृ. २।५।१८

इस ज्ञानको अथर्ववेदी दधीची ऋषिने अश्विदेवोंसे कहा था। वह ज्ञान जाननेवाले ऋषिने ऐसा कहा। 'उस ईश्वरने दो पांवके शरीर बनाये, उसीने चार पांवके शरीर बनाये। वह पुरुष पक्षी होकर, अर्थात् अन्तरिक्षगामी होकर, शरीरमें प्रविष्ट हुआ।' शरीरमें प्रवेश करनेवाला, शरीरमें शयन करनेवाला पुरुष ही यह आत्मा है। इसने कुछ व्यापा नहीं ऐसा यहां कुछ भी नहीं है, इसके द्वारा कुछ प्रविष्ट हुआ नहीं ऐसा भी कुछ नहीं। अर्थात् यह अन्दर और बाहर सबको घेरकर रहा है। 'पुरश्चक्रे' यह मंत्र शतपथ १४।५।५।१८ में है।

इदं वै तन्मधु दध्यङ्ङाथर्वणोऽश्विभ्यामुवाच। तदेतदृषिः पश्यन्नवोचत्। "रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय। इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शता दशेति।" अयं वै हरयोऽयं वै दश च सहस्राणि बहूनि चानन्तानि च तदेतद्ब्रह्म पूर्वमनपरमनन्तरमबाह्यमयमात्मा ब्रह्म सर्वानुभूरित्यनुशासनम् ॥ बृ. २।५।१९

'यह मधुविद्या अथर्ववेदी दधीची ऋषिने अश्विदेवोंसे कही। इसको जाननेवाले ऋषिने ऐसा कहा था। "वह आत्मा प्रत्येक रूपके लिये प्रतिरूप बना है। वह उसका रूप देखनेके लिये है। परमात्मा इन्द्र अपनी अनंत शक्तियोंसे अनंत रूप बना है। विश्वरूप बनकर वह कार्य कर रहा है। दस सौ अर्थात् अनेक किरण ये उसकी अनंत शक्तियां ही हैं।" दश सहस्र अनंत जो शक्तियां हैं वे सब मिलकर वह एक ब्रह्म ही है। यह सब ब्रह्म ही है। यह अपूर्व है, इससे भिन्न दूसरा ऐसा वहां कुछ भी नहीं है। जिसके अन्दर या बाहर दुसरा कुछ भी नहीं है। यह आत्मा ही ब्रह्म है। सबका अनुभव लेनेवाला यही है। यही उपदेश है।'

यह सब ब्रह्म है, यही ज्ञान मधुविद्या है। यह अथर्ववेदीय दधीची ऋषिके पास थी। दधीची ऋषि इस विद्याको जानता था। अश्विदेवोंने दधीची ऋषिका मस्तक घोडेका सिरका भाग लगाकर दुरुस्त किया। इसलिये यह विद्या दधीचीने अश्विदेवोंको सिखाई।

यहां अश्विदेवोंने शस्त्रक्रियाका बडा कुशलताका कर्म किया। मनुष्यके सिरपर घोडेके सिरका भाग जोडना और मनुष्यका सिर ठीक करना यह साधारण कार्य नहीं है। जो अश्विदेवोंने किया था।

११ इन्द्रको मेषके वृषण लगाये

इन्द्रने अहल्याके साथ अयोग्य व्यवहार किया, इससे गौतम ऋषिको क्रोध आया और—

इन्द्रस्यापि च धर्मज्ञ छिन्नं तु वृषणं पुरा।
ऋषिणा गौतमेनोर्व्यां क्रुद्धेन विनिपातितम् ॥

लिंगपुराण २९।२७

'गौतम क्रुद्ध हुआ और उसने इन्द्रके वृषण काटकर भूमिपर गिराये।' (गौतमेन क्रुद्धेन इन्द्रस्य वृषणं छिन्नं, उर्व्यां विनिपातितं) स्वपत्नीके साथ बुरा व्यवहार करनेवालेके साथ उसका पति ऐसा ही करेगा। इन्द्रने देवोंकी प्रार्थना की—

अफलस्तु ततः शक्रो देवानग्निपुरोगमान्।
अब्रवीत् त्रस्तनयनः सिद्धगंधर्वचारणान् ॥ १ ॥
तस्मात् सुरवराः सर्वे सर्षिसंघाः सचारणाः।
सुरकार्यकरं यूयं सफलं कर्तुमर्हथ ॥ ४ ॥

वा. रामायण बाल ४९

'अण्ड विहीन हुआ इन्द्र देवोंसे बोला, कि मैंने सुरकार्य किया है इसलिये मुझे आप सफल कीजिये।' अर्थात मेरे अण्ड गिर गये वे आप मुझे लगाईये। यह प्रार्थना सुनकर देवोंने मेषवृषण उसको लगाये—

अग्नेस्तु वचनं श्रुत्वा पितृदेवाः समागताः।
उत्पाट्य मेषवृषणौ सहस्राक्षे न्यवेशयन् ॥

वा. रामा. बा. ४९।८

'अग्निका भाषण सुनकर पितृदेवोंने मेषके वृषण उखाड कर इन्द्रको लगा दिये।' इससे इन्द्र पुनः पूर्ववत् पुरुष बना। अर्थात् यह कार्य उस समयके शस्त्रक्रिया करनेवालोंने ही किया होगा।

आज बंदरकी ग्रंथियां मनुष्यको लगाते हैं, पर मेंढेके वृषण मनुष्यको लग सकते हैं या नहीं, इस विषयमें संदेह है। पर प्राचीन समयमें यह कार्य होता था।

इस विषयमें वेदमंत्रोंमें या अश्विनौंके मंत्रोंमें कुछ भी वर्णन नहीं है। यह रामायणमें है परन्तु यहां यह देखने योग्य है इसलिये यहां दिया है। यदि यह इस तरह हुआ होगा, तो अश्विदेवोंके कार्यालयसे ही हुआ होगा, क्योंकि अश्विदेवोंने ऐसे बहुत ही कार्य किये ऐसे वर्णन बहुत ही हैं।

१२ पठर्वाके पेटका सुधार

याभिः पठर्वा जठरस्य मज्मना।
अग्निर्नादीदेच्चित इद्धो अज्मन्ना ॥

ऋ. १।११२।१७

(इद्धः चितः अग्निः न) प्रदीप्त और प्रज्वलित अग्निके समान (पठर्वा) पठर्वा नरेश (याभिः अज्मन्) जिन शक्तियोंसे संगत होकर (जठरस्य मज्मना) पेटके बलसे (आ अदीदेत्) पूर्णतया प्रदीप्त हो उठा, प्रसिद्ध हुआ।

पेटकी शक्ति, पेटकी पाचन शक्ति, तथा पेटमें जो अन्य शक्तियां हैं उनके सुधार होनेसे शरीरकी शक्ति बढती है और मनुष्य महान् कर्म करनेमें समर्थ होता है और सुप्रसिद्ध होता है। इस तरह अश्विदेवोंके चिकित्सा कर्म करनेसे पठर्वाका सामर्थ्य बढ गया। उसका पेट सुधरा और शरीरकी शक्ति बढ गई।

१३ नार्षदको श्रवण शक्ति दी

इस समयतक आंख, पेट, शरीर ठीक करनेके कार्य जो अश्विदेवोंने किये थे, उनका वर्णन किया। अब कानोंका सुधार करनेके विषयमें देखिये—

कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः।

प्रवाच्यं तत् वृषणा कृतं वां।
यत् नार्षदाय श्रवो अध्यधत्तम् ॥ ऋ. १।११७।८

' जो आपने नार्षदको श्रवणशक्ति दी वह आपका कृत्य वर्णन करने योग्य हुआ। '

नार्षद बहिरा था। सुननेमें उसके कान असमर्थ थे। अश्विदेवोंने उसके कान ठीक किये और वह अपने कानोंसे सुननेमें समर्थ हुआ। यह कार्य वर्णन करने योग्य हुआ ऐसा भी ऊपरके मंत्रमें लिखा है। लोग इस कार्यकी प्रशंसा करने लगे इतना आश्चर्यकारक यह कार्य हुआ था।

१४ विमना और विश्वकका बुद्धिका सुधार

मनुष्यका मन तथा बुद्धि बिगड गयी, तो मनुष्य निकम्मा होता है, इसलिये उपचारोंसे मन, बुद्धिका सुधार वैद्य करते हैं। इस विषयमें देखिये—

कथा नूनं वां विमना उपस्तवत्
युवं धियं ददथुः वस्यइष्टये।
ता वां विश्वको हवते तनूकृथे।
मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ॥

ऋ. ८।८६।२

(विमना नूनं वां कथा उपस्तवत्) विमनाने आपकी किस तरह प्रशंसा की थी ? (वस्य-इष्टये) इष्ट धन प्राप्त करनेके लिये (युवं धियं ददथुः) आपने उसको बुद्धि दी। (विश्वकः तनूकृथे वां हवते) विश्वक अपने शरीरके सुधारके लिये आपकी प्रार्थना कर रहा है। (नः सख्या मा वि यौष्टं) हमारी मित्रताका विरोध न कर और हमें दुःखसे (मुमोचतं) मुक्त कर दो।

इस मंत्रमें ' विमना ' का नाम आया है। ' विमना ' वह है जिसका मन बिगडा है, जिसका मन ठीक कार्य नहीं कर रहा। इसको अश्विदेवोंने (धियं ददथुः) बुद्धि प्रदान की, मनका सुधार किया जिससे (वस्य-इष्टये) इष्ट धनको प्राप्त करनेमें वह समर्थ हुआ। उपचारोंसे मनका सुधार करने और बुद्धिकी कार्यक्षमता बढानेका यहां उल्लेख है।

इसी मंत्रमें कहा है कि ' विश्वकः तनूकृथे हवते। ' विश्वक शरीरके सुधारके लिये तुम्हारी प्रार्थना कर रहा है। इसका शरीर रोगी, कृश और असमर्थ था। उसके शरीरका सुधार अश्विदेवोंके औषध उपचारोंसे हुआ और विश्वक सामर्थ्यसंपन्न हुआ। ' विश्व-क ' का अर्थ सब कार्य करनेमें जो समर्थ है यह है। विविध कार्य करनेकी क्षमता शरीरमें आ जाय, इसलिये विश्वकके शरीरपर उपचार किये गये और उसमें ये यशस्वी हुए। ऐसा कार्यक्षम शरीर उसको प्राप्त हुआ।

अश्विदेवोंने किनका संरक्षण किया ?

१५ दिवोदास

अश्विदेवोंने अनेकोंका रक्षण किया था। प्रायः इस रक्षणके लिये ' अव् ' धातुका प्रयोग वेदमें होता है। इस धातुके अर्थ अनेक हैं जिनका विचार हम अन्तमें करेंगे।

प्रथम हम जिनका रक्षण किया उनका वर्णन करनेवाले मंत्र यहां देखेंगे—

याभिष्ठं वर्तिः वृषणा विजेन्यं
दिवोदासाय महि चेति वां अवः ॥

ऋ. १।११९।४

(विजेन्यं वर्तिः आयासिष्ठं) सुदूरवर्ति उसके घर आप गये (वां अवः) और आपका संरक्षणका कार्य (दिवोदासाय महि चेति) दिवोदासके लिये बडा ही महत्त्वपूर्ण हो चुका।

अश्विदेव दिवोदासके दूरस्थित घरपर गये, उन्होंने उसके सुधारके लिये उपचार किया, उस उपचारने उसको बडा लाभ हुआ।

१६ पृश्निगु और पुरुकुत्स

याभिः पृश्निगुं पुरुकुत्सं आवतं । ऋ. १।११२।७

' अनेक शक्तियोंद्वारा पृश्निगु और पुरुकुत्सकी रक्षा की। '

१७ दशव्रजादिका रक्षण

याभिः दशव्रजं आवतं । ऋ. ८।८।२०

याभिः कुत्सं आर्जुनेयं शतक्रतू
प्र तुर्वीतिं प्र च दभीतिं आवतं ।
याभिः ध्वसन्तिं पुरुषन्तिं आवतं ।

ऋ. १।११२।२३

याभिः सिन्धुं मधुमन्तमसश्चतं
वसिष्ठं याभिः अजरौ अजिन्वतम् ।
याभिः कुत्सं श्रुतर्यं नर्यं आवतम् ।

ऋ. १।९२।९

युवं ह कृशं युवं अश्विना शयुं
युवं विधन्तं विधवां उरुष्यथ ।
युवं सनिभ्यः स्तनयन्तं अश्विना
अप व्रजं ऊर्णुथाः सप्तास्यम् ॥ ऋ. १०।४०।८

आपने दशव्रज, कुत्स, आर्जुनेय, तुर्वीति, दभीति, ध्वसन्ति, पुरुषन्ति, सिन्धु, वसिष्ठ, श्रुतर्य, नर्य, कृश, शयु, विधन्त आदिकी रक्षा की और गौओंके वाडेको खोल दिया था। तथा—

याभिः अन्तकं जसमानं आरणे
याभिः कर्कन्धुं वय्यं च जिन्वथः ।

ऋ. १।११२।६

' जिन साधनोंसे अन्तक, कर्कन्धु और वय्यकी रक्षा की। '

१८ कक्षीवान्‌का रक्षण

उशिक् पुत्र कक्षीवानके रक्षणके विषयमें नीचे लिखे मंत्र देखने योग्य हैं—

याभिः सुदानू औशिजाय वणिजे
दीर्घश्रवसे मधुकोशो अक्षरत् ।
कक्षीवन्तं स्तोतारं याभिः आवतं ।

ऋ. १।११२।११

युवं नरा स्तुवते पज्रियाय
कक्षीवते अरदतं पुरंधिम् । ऋ. १।११६।७
तद् वां नरा शंस्यं पज्रियेण
कक्षीवता नासत्या परिज्मन् ।
शफादश्वस्य वाजिनो जनाय
शतं कुंभानसिंचतं मधूनाम् ॥ ऋ. १।११७।६

' जिन शक्तियोंसे उशिक् पुत्र दीर्घश्रवाके लिये मधुका खजाना दिया और कक्षीवान्‌की रक्षा की। पज्रपुत्र कक्षीवान्‌को उत्तम बुद्धि दी। हे अश्विदेवो ! वह तुम्हारा अति प्रशंसनीय कार्य है जिसकी कक्षीवान्‌ने प्रशंसा की। आपने शहदके सौ घडे लोगोंके लिये भरकर दिये।

१९ ऋतस्तुभ

ओम्यावती सुभरां ऋतस्तुभं । ऋ. १।११२।२०

' ऋतस्तुभको सुरक्षित तथा भरपूर सामग्री देकर तुमने उसका रक्षण किया। '

२० औचथ्य

दस्रा ह यद् रेक्णः औचथ्यः वां
प्र यद् सस्राथे अकवाभिः ऊती ।

ऋ. १।१८०।१

उपस्तुतिः औचथ्यं उरुष्येन् मा
मां इमे पतत्रिणी वि दुग्धाम् ।
मा मां एधो दशतयः चितो धाक्
प्र यद् वां बद्धः त्मनि खादति क्षाम् ॥

ऋ. १।१८०।४

' हे (दस्रा) अश्विदेवो ! (औचथ्यः) उचथ्यका पुत्र (रेक्णः) धनके लिये (वां) आपकी प्रार्थना करता है,

उसको तुम (अरुवाभिः ऊती) निर्दोष रक्षणोंसे (प्र सत्रापे) रक्षण करते हैं।'

(मां औचथ्यं उपस्तुतिः उरुष्येत्) मुझ औचथ्यको तुम्हारी स्तुति सुरक्षित रखे। (इमे पतत्रिणी मां मा वि दुग्धां) ये सूर्यसे बने दिनरात मुझे निःसार न बना डालें। (दशतयः चितः एधः) दस गुना प्रदीप्त हुआ अग्नि (मां मा धाक्) मुझे मत जला देवे। (यत् वां बद्धः) जो आपका भक्त बांधकर फेंका गया था वही फेंकनेवाला (त्मनि क्षां खादति) वही स्वयं भूमीको खाता हुआ वहां पडा है।

अर्थात् मुझ औचथ्यका उत्तम संरक्षण हो। और जो सज्जनोंको कष्ट देता है वह दुःख भोगे।

याभिर्वव्रं विपिपानं उपस्तुतं
कलिं याभिः वित्तजानिं दुवस्यथः।
याभिः व्यश्वं उत पृथिं आवतं। ऋ. १।११२।१५

'वव्र, उपस्तुत, कलि, व्यश्व और पृथिकी रक्षा तुमने की थी।'

यथा चित् कण्वं आवतं
प्रियमेधं उपस्तुतं
अत्रिं सिंजारं अश्विना॥ ऋ. ८।५।२५

'हे अश्विदेवो! तुमने कण्व, प्रियमेध, उपस्तुत, अत्रि, सिंजारका संरक्षण किया था।'

२१ सप्तवध्रि

सप्तवध्रिं च मुञ्चतम्। ऋ. ५।७८।५
भीताय नाधमानाय ऋषये सप्तवध्रये।
मायाभिः अश्विना युवं वृक्षं सं च विचाचथः॥ ऋ. ५।७८।६

प्र सप्तवध्रिः आशसा धारां अग्नेः अशायत।
अन्ति षद् भूतु वां अवः॥ ऋ. ८।७३।९
युवं चक्रथुः सप्तवध्रये। ऋ. १०।३९।९

सप्तवध्रिकी तुमने मुक्तता की। सप्तवध्रि ऋषि भयभीत हुआ था, प्रार्थना कर रहा था। तुमने अनेक युक्तियोंसे वृक्षसे बने रथको तोड-जोडकर ठीक करते हैं उस रीतिसे ठीक किया था। सप्तवध्री अग्निकी धारामें पडा था, उसको तुमने बचाया था। वह आपका संरक्षण हमें प्राप्त हो। तुमने सप्तवध्रीको सहायता करके ऐसा ही उनको संरक्षण दिया था।

यथोत कृत्व्ये धने अंशुं गोष्वगस्त्यम्।
यथा वाजेषु सोभरिम्॥ ऋ. ८।५।२६

'तुमने युद्धोंमें अंशु, अगस्त्य और सोभरीका रक्षण किया था।'

यातं वर्तिः तनयाय त्मने च
आगस्त्ये नासत्या मदन्ता। ऋ. १।१८४।५

'आप आनन्दसे अगस्त्यके घर गये और उसका तथा उसके बालबच्चोंका रक्षण किया।'

याभिः पक्थं अवथो याभिः अध्रिगुं
याभिः बभ्रुं विजोषसम्।
ताभिः नो मक्षू तूयं अश्विना गतं
भिषज्यतं यदातुरम्। ऋ. ८।२२।१०

'जिन साधनोंके साथ तुम पक्थ, अध्रिगु, बभ्रुकी रक्षा करनेके लिये जाते हैं, उन साधनोंके साथ हे अश्विदेवो! हमारे पास आओ और रोगीकी चिकित्सा करो।'

यत् अद्य अश्विनौ अपाक्
यत् प्राक् स्थो वाजिनीवसू।
यद् द्रुह्यवि अनवि तुर्वशे यदौ
हुवे वां अथ माऽऽगतम्॥ ऋ. ८।१०।५

'हे अश्विदेवो! तुम जो पश्चिममें पूर्वमें तथा द्रुह्यु, अनु, तुर्वश, यदुके पास जाते हैं, वैसे ही मेरे पास भी आओ।'

युवं वरो सुषाम्णे महे तने नासत्या।
अवोभिः याथः वृषणा वृषण्वसू॥ ऋ. ८।२६।२

हे (वरो नासत्या वृषणा वृषण्वसू) श्रेष्ठ, सत्य प्रेरक, बलवान् और धनवान् अश्विदेवो! आप सुषामन्के लिये (महे तने) बहुत धन मिले इसलिये (अवोभिः याथः) संरक्षणोंके साथ जाते हैं।

याभिः शारीः आजतं स्यूमरश्मये। ऋ. १।११२।१६

'स्यूमरश्मीके संरक्षणके लिये जिन शक्तियोंसे बाणोंको तुमने शत्रुपर फेंका था।'

याभिः शर्यातं अवथः महाधने ।

ऋ. १।११२।१७

'जिन शक्तियोंसे तुमने शर्यातका रक्षण युद्धमें किया था।'

याभिः व्यश्वं० आवतं । ऋ. १।११२।१५

'जिन शक्तियोंसे व्यश्वकी तुमने रक्षा की।'

२२ शंयु

त्रिः नो अश्विना दिव्यानि भेषजा
त्रिः पार्थिवानि त्रिः उ दत्तं अद्भ्यः ।
ओमानं शयोः ममकाय सूनवे
त्रिधातु शर्म वहतं शुभस्पती ॥ ऋ. १।३४।६

हे (शुभः पती अश्विना) शुभ कर्म करनेवाले अश्विदेवो! (नः दिव्यानि भेषजा त्रिः) हमें द्युलोककी तीन औषधें, (पार्थिवानि त्रिः) पृथिवीपरकी तीन और (अद्भ्यः त्रिः दत्तं) जलोंके तीन दे दो। (ममकाय सूनवे शयोः) मेरे पुत्रको सुख प्राप्त हो इसलिये (ओमानं त्रिधातु शर्म वहतं) संरक्षक और तीन धातुओंसे सुस्थिति देनेवाला सुख हमें दे दो।

२३ वत्स ऋषि

वत्स ऋषिकी सहायता अश्विदेवोंने की थी। इस विषयमें नीचे लिखे मंत्र देखने योग्य हैं—

यो वां नासत्यौ ऋषिः गीर्भिः वत्सो अवीवृधत्।
तस्मै सहस्रनिर्णिजं इषं धत्तं घृतश्चुतम् ॥ १५ ॥

ऋ. ८।८।१५

आ नूनं अश्विना युवं वत्सस्य गन्तं अवसे ।
प्रास्मै यच्छतं अवृतं पृथु छर्दिः युयुतं या अरातयः ॥ १ ॥
यन्नासत्या भुरण्यथः यद्वा देव भिषज्यथः ।
अयं वां वत्सो मतिभिः न विन्दते हविष्मन्तं हि गच्छथः ॥ ६ ॥
यन्नासत्या पराके अर्वाके अस्ति भेषजम् ।
तेन नूनं विमदाय प्रचेतसा छर्दिः वत्साय यच्छतम् ॥ १५ ॥ ऋ. ८।९।१;६;१५

हे (नासत्यौ) सत्यनिष्ठ अश्विदेवो। (यः वत्सः ऋषिः) जो वत्स ऋषि (वां गीर्भिः अवीवृधत्) आपकी स्तुति अपनी वाणीसे करता रहा था, (तस्मै) इस वत्स ऋषिको (घृतश्चुतं) घी टपकानेवाला (सहस्र-निर्णिजं) सहस्र प्रकारका (इषं धत्तं) अन्न या इष्ट धन दे दो ॥ १५ ॥

हे अश्विदेवो! (युवं नूनं) तुम निश्चयसे (वत्सस्य अवसे आगतं) वत्सकी रक्षाके लिये आओ, (अस्मै) इसे (पृथु अ-वृकं छर्दिः) विस्तीर्ण भेडिये जैसे क्रोधी शत्रुओंसे रहित घर (प्रयच्छतं) दे दो। तथा (याः अरातयः) जो दुष्ट शत्रु है उनको (युयुतं) दूर करो ॥ १ ॥

हे (देवा नासत्या) देवो सत्यपालको! (यत् भुरण्यथः) जो तुम भरणपोषणका कार्य करते हो, (यत् वा भिषज्यथः) अथवा जो चिकित्सा करते हो (अयं वत्सः) यह वत्स ऋषि (वां मतिभिः न विन्दते) आपको अपनी बुद्धियोंसे जान नहीं सकता, इतना आपका कार्य महान् है आप (हविष्मन्तं हि गच्छथः) यज्ञकर्ताके पास जाते हैं ॥ ६ ॥

हे (नासत्या) अश्विदेवो! (प्रचेतसा) हे बडे चित्तवालो! (यत् पराके) जो दूर देशमें (अर्वाके) जो समीप (भेषजं अस्ति) औषध है, (तेन) इससे (विमदाय वत्साय) मदसे रहित वत्सके लिये (नूनं छर्दिः यच्छतं) निश्चयसे अच्छा घर दो ॥ १५ ॥

वत्सकी सहायता किस तरह की थी यह बात इन मंत्रोंमें स्पष्ट होती है। उसका घर रोग रहित किया, उसको औषध दिये, दूरसे या समीपसे वे कार्य और उसका पोषण भी किया।

२४ मनुकी सहायता

याभिः पुरा मनवे गातुं ईषथुः ॥ १६ ॥
याभिः मनुं शूरं इषा समावतं ॥ १८ ॥

ऋ. १।११२

यद् वा यज्ञं मनवे सं मिमिक्षथुः ॥ ऋ. ८।१०।२
दशस्यन्ता मनवे पूर्व्यं दिवि यवं वृकेण कर्षथः ॥ ऋ. ८।२२।६

'जिन शक्तियोंसे तुमने मनुको अच्छा मार्ग बताया था।' 'जिन शक्तियोंसे शूर मनुको अन्न देकर तुमने योग्य रीतिसे रक्षण किया।' 'मनुके लिये यज्ञको सम्यक् रीतिसे सिद्ध किया।' 'पहिले मनुको द्युलोकमें धन दिया और हलसे जौकी भूमिका कर्षण किया।'

इससे मनुको योग्य मार्ग बताया, योग्य अन्न दिया, जिससे वह शूर हुआ आदि वर्णन है।

२५ मान्धाता

मान्धातारं क्षेत्रपत्येषु आवतं। ऋ. १।११२।१३

'क्षेत्रपतिके कर्तव्योंमें मान्धाताकी रक्षा की।' जिससे वह उत्तम क्षेत्र पति हुआ।

२६ पौरकी सहायता

पौरं चिद् ध्युदप्रुतं पौरं पौराय जिन्वथः।
यदीं गृभीततातये सिंहं इव द्रुहस्पदे॥

हे पौर! ऐसी हांक (पौराय) नगर निवासी जनके लिये (उदप्रुतं पौरं चित् हि) जलमें डूबनेवाले नागरिक जनकी सहायतार्थ (जिन्वथः) तुमने मारी थी, (यत् गृभीतता-तये) जब शत्रु द्वारा घेरे हुएको छुडवानेके लिये (ईं) इसको (द्रुहः पदे सिंहं इव) वनमें सिंहके समान तुमने वीरतासे सहायता दी।

२७ भरद्वाजकी सहायता

याभिः विप्रं प्र भरद्वाजं आवतं।

ऋ. १।११२।१३

सं वां शता नासत्या सहस्रा
ऽश्वानां पुरुपन्था गिरे दात्।
भरद्वाजाय वीर नू गिरे दात्
हता रक्षांसि पुरुदंससा स्युः॥ ऋ. ६।६३।१०

हे अश्विदेवो! (वां गिरे) आपके कहनेसे (पुरुपन्था) पुरुपन्था नरेशने (अश्वानां शता सहस्रा) सैकडों या हजारों घोडे मुझे (संदात्) दिये। हे (पुरुदंससा) अनेक कार्य करनेवाले अश्विदेवो! (गिरे भरद्वाजाय दात्) स्तुति करनेवाले भरद्वाजको यह दान दिया है। अब (रक्षांसि हताः स्युः) राक्षस मारे ही जायंगे।

भरद्वाजको यह सहायता प्राप्त हुई थी।

२८ पृथुश्रवाकी सहायता

निहतं दुच्छुना इन्द्रवन्ता
पृथुश्रवसो वृषणौ अरातीः॥ ऋ. १।११६।२१

'पृथुश्रवाके शत्रुओंको तुमने (निहतं) मारा।'

२९ त्रसदस्युकी सुरक्षा

याभिः पूर्भिद्ये त्रसदस्युं आवतम्।

ऋ. १।११२।१४

याभिः नरा त्रसदस्युं आवतम्।
कृत्व्ये धने॥ ऋ. ८।८।२१

'युद्धमें त्रसदस्युकी अनेक शक्तियोंसे रक्षा की।'

३० शयुकी सहायता

याभिः नरा शयवे। ऋ. १।११२।१६
शयवे चिन्नासत्या शचीभिः
जसुरये स्तर्यं पिप्यथुः गाम्॥ ऋ. १।११६।२१
शयुत्रा। ऋ. १।११७।१२
अपिन्वतं शयवे अश्विना गाम्।

ऋ. १।११७।२०

युवं धेनुं शयवे नाधिताय
अपिन्वतं अश्विना पूर्व्याय॥ ऋ. १।११८।८
युवं शयोः अवसं पिप्यथुः गवि।

ऋ. १।११९।६

दशस्यन्ता शयवे पिप्यथुः गाम्। ऋ. ६।६२।७
पिन्वतं शयवे धेनुमश्विना। ऋ. १०।३९।१३
युवं अश्विना शयुं। १०।४०।८

शयु अत्यंत कृश था। उसके पास वंध्या गौ थी। उसको गर्भधारण समर्थ बनाया और दुधारू भी बनाया। इसका दूध पीकर शयु हृष्टपुष्ट हो गया।

वंध्या गौको प्रसूत होने योग्य बनाकर दुधारू बनाना यह औषधि प्रयोगसे हो सकता है।

३१ वध्रिमतीको पुत्र देना

वध्रिमत्या हिरण्यहस्तं अश्विनौ अदत्तम्।

ऋ. १।११६।१३

हिरण्यहस्तमश्विना रराणा पुत्रं नरा
वध्रिमत्या अदत्तम्। ऋ. १।११७।२४
श्रुतं हवं वृषणा वध्रिमत्याः॥ ऋ. ६।६२।७
युवं हवं वध्रिमत्या अगच्छतं
युवं सुषुतिं चक्रथुः पुरंधये॥ ऋ. १०।३९।७

वध्रिमतीको पुत्र होने योग्य बनाया। उसको पुत्र होता नहीं था। उससे गर्भाशयमें पुत्रका गर्भ रहे ऐसा सुधार

किया जिससे वह गर्भवती हुई और उसको पुत्र हुआ ।

स्त्रीको पुत्रियां होती हैं, उसको औषधोपचारसे पुत्र हो ऐसा करना वैद्यका कार्य है। यह कार्य अश्विदेवोंने किया ऐसा यहां बताया है।

३२ विमदको पत्नी देना

याभिः पत्नीं विमदाय न्यूहथुः। ऋ. १।११२।१९
यां अर्भगाय विमदाय जायां
सेनाजुवा न्यूहत् रथेन ॥ ऋ. १।११६।१
युवं शचीभिः विमदाय जायां न्यूहथुः।
ऋ. १।११७।२०

विमद निर्बल था। उसको औषधोपचारसे स्त्रीके लिये योग्य बनाया और उसको पत्नी भी दी। पत्नी देनेका अर्थ पत्नीके साथ संबंध करने योग्य पौरुष सामर्थ्यसे युक्त उसको बनाया यह है।

यहां 'अव्' धातुका प्रयोग प्रायः किया है। 'अव्'= रक्षण-गति-कान्ति-प्रीति-तृप्ति-अवगम-प्रवेश-श्रवण-स्वाम्यर्थ-याचनक्रिया-इच्छा-दीप्ति-अवाप्ति-आलिंगन-हिंसा-दान-भाग-वृद्धिषु' अव्के इतने अर्थ हैं। 'अवन' में ये अर्थ हैं। इनमें कौनसा अर्थ कहां लेना चाहिये यह खोजका विषय है। तात्पर्य यह है कि वैद्यकीय उपचार नाना प्रकारके होते हैं। उन उपायोंसे ये कार्य अश्विदेवोंने किये थे। इनसे उनके कार्योंका राष्ट्रव्यापित्व सिद्ध हो सकता है।

इस लेखमें (१) अन्धोंको दृष्टि दी, (२) लूलेको ठीक किया, (३) वृद्धको तरुण बनाया, (४) मरियलको दीर्घायु किया, (५) निर्बलको सबल बनाकर पत्नीके साथ उसका संबंध विवाह करके किया, (६) पानीमें डुबायेका सुधार किया, (७) अश्वका सिरका भाग सिरपर लगाया, (८) मेषके वृषण लगाकर फिरसे पुरुष बनाया, (९) पेटका सुधार किया, (१०) कानका सुधार करके श्रवणशक्ति दी, (११) मन और बुद्धिका सुधार किया, (१२) अनेकोंका संरक्षण किया, (१३) वंध्या गौको दुधारु बनाया, (१४) स्त्रीको पुत्र हो ऐसा सुधार किया।

इस तरहके कार्य किये। इससे सिद्ध होता है कि अश्विदेवराष्ट्रके आरोग्यमंत्री थे। राष्ट्रभरमें आरोग्य रक्षण करनेका कार्य उनका था। वे घर घर जाते थे, उपचार, शस्त्र कर्म तथा अन्य कर्म करते थे। जनताका आरोग्य रक्षण वे करते थे जिनके कार्यसे जनता नीरोग, दीर्घायु तथा हृष्टपुष्ट रहती थी। राष्ट्रमें कोई रोगी न रहे ऐसी यह व्यवस्था है। यद्यपि 'अश्विनौ' दो ही थे तथापि उनके कार्यालयमें अनेक उपचारक होंगे क्योंकि राष्ट्रभरमें जाकर स्थान-स्थानपर उपचार करना यह केवल दो ही कर नहीं सकेंगे। कार्यालयके प्रबंधसे ये कार्य होते थे इसलिये ये सब 'अश्विनौ' ने किये ऐसा ही बोला जाता है और वह योग्य ही है।

इस लेखमें अश्विदेवोंने जिनकी चिकित्सा की उनका परिचय अब कराते हैं, इससे उनकी योग्यता विदित होगी और चिकित्साका स्वरूप भी विदित होगा—

१ कविको दृष्टि दी

ऋग्वेदमें 'कविर्भार्गवः' यह ऋषि नवम काण्डके ४७; ४८; ४९ इन तीन सूक्तोंका और ७५-७९ इन पांच सूक्तोंका अर्थात् कुल ४० मंत्रोंका है। इसको ही दृष्टि दी ऐसा हमारा कहना नहीं है। कक्षीवान् ऋषिने वर्णन किया है उसमें—

कविं कृपमाणं अकृणुत विचक्षे।
ऋ. १।११६।१४

'तुम्हारी कृपाकी इच्छा करनेवाले कविको तुमने विशेष देखनेके लिये दृष्टि दी' ऐसा कहा है। 'विचक्षे' विशेष देखनेके लिये अश्विदेवोंने चिकित्सा की। थोडी दृष्टि तो थी, उसका विशेषीकरण किया। दृष्टिका विशेष सुधार किया यह भाव यहां है।

२ ऋज्राश्वको दृष्टि

'ऋज्राश्वो वार्षागिरः' यह ऋषि प्रथम मण्डलके सौवें सूक्तका है। इसमें १९ मंत्र हैं। यह ऋषिपुत्र बकरियां चराता था। भेडियेने सौ बकरियां खायीं तो भी यह चुप रहा इसलिये इसका पिता क्रोधित हुआ और उसने इसकी आंखें फोड दी। 'अशिवेन पित्रा' ऐसे शब्द मंत्र ऋ. १।११७।१७ में प्रयुक्त किये हैं। ऋज्राश्वके पिताने अपने पुत्रके आंख फोडनेका कार्य किया यह अयोग्य है। यह पिता अशुभ कर्म करनेवाला करके कहा है। १०० बकरे

भेडियेने खाये तो भी पिताको शान्त रहना चाहिये या यह भाव यहां दीखता है।

पिताने आंख तोड दिये, अर्थात् नेत्रके स्थान पर आंख नहीं रहे।

तस्मा अक्षी आ धत्तं। ऋ. १।११६।१६
अक्षी ऋज्राश्वे अश्विनौ आधत्तं।
ऋ. १।११७।१७

अश्विदेवोंने ऋज्राश्वमें आंखें स्थापन की। यहां बाहरसे आंखें लाकर स्थापन की यह भाव है। 'आ+धा' धातुका यह भाव है। ये बनावटी आंखें होंगी अथवा किसी अन्य प्रकारसे प्राप्त आंखें होंगी। आजकल मरे हुए मनुष्यकी आंखें निकालकर दूसरेके आंखमें लगाते हैं, इसका नाम 'आधान' है। यह अश्विदेवोंने किया था ऐसा प्रतीत होता है।

३ अंधे-लूलेको ठीक किया

'परावृज' अन्धा था (अन्धं श्रोणं चक्षसे एतवे कृथः। ऋ. १।११२।८) अंधेको देखने योग्य किया और लूलेको चलने-फिरने योग्य बनाया। यहां लूलेको चलने-फिरने योग्य बनाया यह विशेष विचारने योग्य है। लूलेके पांव वगैरा ठीक करनेके लिये बडे आपरेशन भी करने पडते हैं। यह सब अश्विदेवोंने किया था।

४ कण्वको दृष्टि

कण्व प्रसिद्ध पुरुष है। उसको (हर्म्ये) राजमहलमें रखकर (चक्षुः प्रत्यधत्तं) नेत्रोंका आधान किया। यहां 'हर्म्य' पद राजमहलका जैसा वाचक है। अश्विदेवोंका रुग्णालय राजमहल जैसा होगा। अथवा कण्वका आश्रम वैसा होगा। कण्व राजमहल जैसे स्थानमें था जिसको अश्विदेवोंने दृष्टि दी।

ऋग्वेदमें 'कण्वो घौरः' ऋषि प्रथम मण्डल १।३६-४३ और नवम मण्डल ९४ वें सूक्तका है। ऋग्वेदमें कण्व ऋषिके १०१ मंत्र हैं।

५ श्रवणशक्तिका प्रदान

नार्षदाय श्रवो अध्यधत्तं। ऋ. १।११७।८

नार्षदको श्रवणशक्ति दी। इसके कान बिगड गये थे, सुनाई नहीं देता था। इसके कान ठीक करके सुनने योग्य बनाये।

६ कलिको तरुण बनाया

पुनः कलेः युवद्वयः अकृणुतं। ऋ. ८।१०।८

कलि वृद्ध था (जरणां उपेयुषः) जरासे ग्रस्त था। उसको तरुण बनाया। (कलिं वित्तजानिं) कलिने स्त्री भी की थी। च्यवनके समान ही कलिका तरुण बनना है। 'कलिः प्रागाथः' ऋ. ८।६६ के १५ मंत्रोंका ऋषि है।

७ सोमकको दीर्घायु

कुमारः साहदेव्यः दीर्घायुः अस्तु सोमकः ॥ ९ ॥
कुमारं साहदेव्यं दीर्घायुषं कृणोतन ॥ १० ॥
ऋ. ४।१५

सहदेवका कुमार सोमक नामका था। वह कृश, दुर्बल और रोगी था। उसको चिकित्सा करके दीर्घ आयुवाला बनाया।

८ श्यावको दीर्घायु करके पत्नी दी

त्रिधा विकस्तं श्यावं जीवसे ऐरयतं।
ऋ. १।११७।२४

यह श्याव तीन स्थानोंपर जखमी था उसको ठीक करके उत्तम पत्नीके साथ विवाह करके आनंदसे रहने योग्य बनाया। यह शस्त्रकर्म तथा चिकित्साका कार्य था।

९ वंदनको दीर्घायु

वंदन गढेमें पडा था, वृद्ध था, शरीर टूट गया था। उसका शरीर ठीक किया और उसको दीर्घायु दी। यहां वृद्ध कूवेमें पडनेके कारण (निर्ऋतेः उपस्थे सुषुप्वांसं। ऋ. १।११७।५) विनाशके समीप पहुंचेको अच्छा करके दीर्घायु बनाया।

१० रेभकी सहायता

रेभ भी दस दिनतक कूवेमें गिरा था। किसी (अशिवेन) दुष्टने इसको कूवेमें (दश रात्रीः नव द्यून) दस रात्री और नौ दिन फेंका था। उसको वहांसे ऊपर लाकर अच्छा बलवान् बना दिया।

यह रेभ ऋषि था ऐसा ऋ. १।११७।४ में कहा है। (ऋषिं रेभं अप्सु गूळ्हं) रेभ ऋषि जलोंमें डूबा था।

'रेभः काश्यपः' अर्थात् कश्यपपुत्र रेभ है। यह ऋषि ऋ. ८।९७ के सूक्तका ऋषि है। ऋग्वेदमें इस सूक्तके १५ मंत्र हैं।

११ दधीची ऋषिको अश्वशिर

दधीची ऋषिके अश्वका सिर लगाया। ऋ. १।११६।१२ इस मंत्रमें यह है। दधीची ऋषिके सिरपर अश्विदेवोंने शस्त्र क्रिया की और वहां घोडेके सिरका भाग लगाया। वेदमें अंशके लिये संपूर्णका उल्लेख आता है। उस तरह घोडेके सिरका भाग उनके सिरपर लगाया ऐसा मालूम होता है। इससे दधीची ऋषि उपदेश करनेमें समर्थ हुए।

आज कोई शस्त्रक्रिया करनेवाला ऐसा कर नहीं सकता। या तो इस कथाका कोई आलंकारिक अर्थ होगा अथवा इसमें कुछ गुप्त बात होगी। जो मंत्रोंके पदोंसे व्यक्त होता है वह कार्य आजके प्रसिद्ध वैद्य कर नहीं सकते। इस कारण इसका संशोधन विशेष होना चाहिये।

१२ इन्द्रको मेषवृषण लगाये

यह वृत्त वाल्मीकि रामायणमें है। वेदमें नहीं है।

१३ पठर्वाके पेटका सुधार

पठर्वाके पेटका सुधार करनेका वर्णन ऋ. १।११२।१७ में है। (पठर्वा जठरस्य) पठर्वाके पेटका अग्नि प्रदीप्त किया, यह बात औषधोपचारकी है।

१४ नार्षदके कानोंका सुधार

'नार्षदाय श्रवो अध्यधत्तं' (ऋ. १।११७।८) वह कानसे सुनता नहीं था, उसके कानोंका सुधार करके उसकी श्रवणशक्ति ठीक की।

१५ विमना और विश्वका बुद्धिका सुधार

(विमना उपस्तवन्, धियं ददथुः। ऋ. ८।८६।२) विमनाने स्तुति की और उसको बुद्धि दी। (विश्वको तनुकृथे हवते) विश्वकके शरीरके सुधारके लिये प्रार्थना की, उसके शरीरका सुधार किया गया।

इसमें बुद्धिका और शरीरका संवर्धन करनेका उल्लेख है। 'वि-मना' का अर्थ ही जिसका मन बिगडा ऐसा है। इसके मनका सुधार किया गया।

१६ दिवोदासका रक्षण

दिवोदासाय अवः। ऋ. १।११९।४

दिवोदासका संरक्षण किया।

१७ पृश्निगु और पुरुकुत्सका रक्षण

पृश्निगुं पुरुकुत्सं आवतं। ऋ. १।११२।७

इनका रक्षण किया। किससे रक्षण किया यह यहां नहीं है।

दशव्रज (ऋ. ८।८।२०), कुत्सं आर्जुनेयं (ऋ १।११२। २३) तुर्वीति, दभीति, ध्वसन्ती, पुरुषन्ति, सिन्धु, वसिष्ठ, श्रुतर्य, नर्य, कृश, शयु, विधन्तकी रक्षा की। इनमेंसे कई ऋषि हैं—

१ वसिष्ठ ऋग्वेदके सप्तम मंडलका द्रष्टा है,

२ कुत्स आंगिरस ऋ. १।९४-९८; १।१०१-११५ तथा ९।९७ के द्रष्टा है,

३ कृशः काण्वः ऋ. ८।५५

ये ऋषि ऋग्वेदमें हैं। और वसिष्ठ तो मुख्य श्रेष्ठ ऋषि हैं। इनकी भी रक्षा अश्विदेवोंने की थी।

१८ कक्षीवानूका रक्षण

कक्षीवन्तं आवतं। ऋ. १।११२।११

कक्षीवानूका रक्षण।

कक्षीवान् दीर्घतमाका पुत्र ऋ. १।११६-१२६ तथा ९।७४ का ऋषि है। ये १६० मंत्र इनके देखें हैं।

१९ ऋतस्तुभ और औचथ्य

दीर्घतमा औचथ्य ऋ. १।१४०-१६४ इन २४२ मंत्रोंका द्रष्टा है। इसकी सुरक्षा अश्विदेवोंने की।

२० सप्तवध्रिकी मुक्तता

भीताय सप्तवध्रये। ऋ. ५।७८।६

भयभीत हुए सप्तवध्रीकी भयसे मुक्तता की और रथको ठीक करनेके समान (सं च वि वाचथः) तोड-जोड करके ठीक किया।

सप्तवध्रि ऋषि ऋ. ८।७३; और सप्तवध्रिः आत्रेय ऋषि ऋ. ५।७८ सूक्तका है।

२१ अगस्त्य और सोभरी

(अगस्त्यं, अंशुं, सोभरिं) ऋ. ८।५।२६ इनका रक्षण किया तथा ऋ. ८।२२।१० में पक्थ, अध्रिगु, बभ्रुके रक्षणका उल्लेख है।

अध्रिगुः श्यावाश्विः ऋषिः ऋ. ९।१०१ का है।

बभ्रुः आत्रेयः ऋ. ५।३० का है।

अगस्त्य ऋषि ऋ. १।१६५ से १९० मंत्रोंका हैं।

सोभरिः काण्वः ऋ. ८।१९-२२; १०३ मिलकर ११३ मंत्रोंका द्रष्टा है।

इनका रक्षण अश्विदेवोंने किया।

२२ शंयुका औषधि प्रयोगसे रक्षण

'ओमानं शंयोः' शंयुका रक्षण दिव्य औषधियां और पृथिवीपरकी औषधियां लाकर किया।

शंयु ऋषि बार्हस्पत्य है। ऋ. ६।४४-४८ तक ९३ मंत्रोंका द्रष्टा है।

२३ वत्स ऋषि

वत्स आग्नेयः ऋ. १०।१८७; वत्सः काण्वः ऋ. ८।६ का है। (घृतश्चुतं सहस्रनिर्णिजं इषं धत्तं। ऋ. ८।८।१५) घी जिससे टपकता है, सहस्र प्रकारके बलवाला अन्न देकर इसका सुधार किया। (पृथु छर्दिः) बड़ा घर रहनेके लिये दिया।

२४ मनुकी सहायता

तीन मनु ऋषि वेदमें हैं। मनुः आप्सवः ऋ. ९।१०६; मनुः वैवस्वतः ऋ. ८।२७-३१; मनुः सांवरणः ऋ. ९।१०१ इनमेंसे कौनसा यह मनु है, इसका पता नहीं। इसकी सहायता अश्विदेवोंने की।

२५ मांधाता

'क्षेत्रपत्येषु मान्धातारं आवतं' ऋ. १।११२।१३ क्षेत्रके पालन करनेके कार्यमें मान्धाताकी सहायताकी। मान्धाता यौवनाश्व ऋषि ऋ. १०।१३४ का द्रष्टा है।

२६ पौरकी सहायता

पौर ऋषि आत्रेय है और यह ऋ. ५।७३-७४ का द्रष्टा है।

२७ भरद्वाजकी सहायता

भरद्वाज ऋषि षष्ठ मंडलका द्रष्टा है। इसको (अश्वानां शता दात्-ऋ. ६।६३।१०) सैकडों घोडे दिये और इससे (रक्षांसि हताः) राक्षस मारे गये और भरद्वाज ऋषिका आश्रम निर्भय हुआ।

अश्विनौ घोडे पालते थे, घोडोंको सुशिक्षित करते थे। इस कारण भरद्वाजको उन्होंने घोडे दिये और उनकी सहायता की।

२८ पृथुश्रवाकी सहायता

पृथुश्रवाकी सहायता करनेके लिये उनके शत्रुओंको दूर किया। 'पृथु-श्रवाः' का अर्थ 'विशेष-ज्ञानी' है।

२९ त्रसदस्युकी रक्षा

युद्धमें त्रसदस्युकी रक्षा की ऋ. ८।८।२१; त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः ऋषि ऋ. ४।४२; ५।२७; ९।११० इन सूक्तोंका द्रष्टा है।

३० शयुकी सहायता

शयु ऋषिकी गायको दुधारु बनाया। इस समयतक मानवोंकी चिकित्सा करनेका वृत्त आया है। यहां गौको दुधारू बनानेका उल्लेख है। बहुत करके यह औषध प्रयोगसे ही किया होगा। यद्यपि मंत्रमें इस विषयका पता नहीं लगता।

३१ वध्रिमतिको पुत्र

वध्रिमतिको संतान नहीं होती थी। इसको औषधोपचार करके पुत्र उत्पन्न हुआ। यह औषध प्रयोगका विशेष चमत्कार है। जो गर्भवती हो नहीं सकती थी, उसको गर्भधारण समर्थ बनाना और पुत्र उत्पन्न हो ऐसा करना यह आज भी करनेवाला कोई वैद्य नहीं है। यह कार्य अश्विदेवोंने किया था।

३२ विमदको विवाहयोग्य बनाना

विमद निर्बल था, उसको बलवान् बनाया और विवाहयोग्य बनाकर उसका विवाह कराया।

विमद ऐन्द्रः। ऋ. १०।२०-२६

विमदः प्राजापत्यः। ऋ. १०।२०-२६

यह इन मंत्रोंका द्रष्टा है। अश्विदेवोंने दृष्टि दी, नेत्र कृत्रिम रखे, या दूसरे नेत्र लगाये, वृद्धोंको तरुण बनाया, टूटे हुए शरीरोंको नया जैसा बनाया, कान दुरुस्त किये, निर्बलोंको बलवान् बनाया, शस्त्रक्रिया करके शरीरका सुधार किया ऐसे अनेक कार्य करके ऋषियोंकी तथा अन्य लोगोंकी सहायता की।

इनमें जिन ऋषियोंके मंत्र हैं उनके स्थान दिये हैं। हमारा यह विश्वास नहीं है कि मंत्रद्रष्टा ऋषियोंकी ही सहायता अश्विदेवोंने की है। जिनका सहायता की ऐसा वेदमंत्र कहते हैं, उनमें कई मंत्रद्रष्टा हैं इतना ही यहां कहना है।

वैदिक समयके आरोग्यमंत्री क्या क्या कार्य करते थे इसका पता इन तीन लेखोंसे लग सकता है। आजके राज्यमंत्री इससे बोध प्राप्त करें।

वेदके व्याख्यान

वेदोंमें नाना प्रकारके विषय हैं, उनको प्रकट करनेके लिये एक एक व्याख्यान दिया जा रहा है। ऐसे व्याख्यान २०० से अधिक होंगे और इनमें वेदोंके नाना विषयोंका स्पष्ट बोध हो जायगा।

मानवी व्यवहारके दिव्य संदेश वेद दे रहा है, उनको लेनेके लिये मनुष्योंको तैयार रहना चाहिये। वेदके उपदेश आचरणमें लानेसे ही मानवोंका कल्याण होना संभव है। इसलिये ये व्याख्यान हैं। इस समय तक ये व्याख्यान प्रकट हुए हैं।

१ मधुच्छन्दा ऋषिका अग्निमें आदर्श पुरुषका दर्शन।
२ वैदिक अर्थव्यवस्था और स्वामित्वका सिद्धान्त।
३ अपना स्वराज्य।
४ श्रेष्ठतम कर्म करनेकी शक्ति और सौ वर्षोंकी पूर्ण दीर्घायु।
५ व्यक्तिवाद और समाजवाद।
६ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।
७ वैयक्तिक जीवन और राष्ट्रीय उन्नति।
८ सप्त व्याहृतियाँ।
९ वैदिक राष्ट्रगीत।
१० वैदिक राष्ट्रशासन।
११ वेदोंका अध्ययन और अध्यापन।
१२ वेदका श्रीमद्भागवतमें दर्शन।
१३ प्रजापति संस्थाद्वारा राज्यशासन।
१४ त्रैत, द्वैत, अद्वैत और एकत्वके सिद्धान्त।
१५ क्या यह संपूर्ण विश्व मिथ्या है?
१६ ऋषियोंने वेदोंका संरक्षण किस तरह किया?
१७ वेदके संरक्षण और प्रचारके लिये आपने क्या किया है?
१८ देवत्व प्राप्त करनेका अनुष्ठान।
१९ जनताका हित करनेका कर्तव्य।
२० मानवके दिव्य देहकी सार्थकता।
२१ ऋषियोंके तपसे राष्ट्रका निर्माण।
२२ मानवके अन्दरकी श्रेष्ठ शक्ति।
२३ वेदमें दर्शाये विविध प्रकारके राज्यशासन।
२४ ऋषियोंके राज्यशासनका आदर्श।
२५ वैदिक समयकी राज्यशासन व्यवस्था।
२६ रक्षकोंके राक्षस।
२७ अपना मन शिवसंकल्प करनेवाला हो।
२८ मनका प्रचण्ड वेग।
२९ वेदकी दैवत संहिता और वैदिक सुभाषितोंका विषयवार संग्रह।
३० वैदिक समयकी सेनाव्यवस्था।
३१ वैदिक समयके सैन्यकी शिक्षा और रचना।
३२ वैदिक देवताओंकी व्यवस्था।
३३ वेदमें नगरोंकी और वनोंकी संरक्षण व्यवस्था।
३४ अपने शरीरमें देवताओंका निवास।
३५, ३६, ३७ वैदिक राज्यशासनमें आरोग्य-मन्त्रीके कार्य और व्यवहार।

आगे व्याख्यान प्रकाशित होते जांयगे। प्रत्येक व्याख्यानका मूल्य ।≈) छः आने रहेगा। प्रत्येकका डा. व्य. ≈) दो आना रहेगा। दस व्याख्यानोंका एक पुस्तक सजिल्द लेना हो तो उस सजिल्द पुस्तकका मूल्य ५) होगा और डा. व्य. १॥) होगा।

मंत्री — स्वाध्यायमण्डल, पोस्ट- 'स्वाध्यायमण्डल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]

मुद्रक और प्रकाशक- व. श्री. सातवळेकर, भारत-मुद्रणालय, पो.- 'स्वाध्याय मण्डल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]



वैदिक व्याख्यान माला — २८ वाँ व्याख्यान

वेदोंके ऋषियोंके नाम

और

उनका महत्त्व

लेखक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

साहित्यवाचस्पति, वेदाचार्य, गीतालंकार

अध्यक्ष- स्वाध्याय मण्डल

स्वाध्याय मण्डल, पारडी

मूल्य छः आने

ॐ

वेदोंके ऋषियोंके नाम

और

उनका महत्त्व

अथर्ववेदमें अनेक ऋषियोंके मंत्र हैं। अध्ययन करनेवालोंको इनका मनन करना आवश्यक है। यहां हम काण्डके अनुसार ऋषियोंके मंत्र कितने हैं, यह बताते हैं—

प्रथम काण्ड

१ अथर्वा	१/४ २/४ ३/९ ५/४ १०/४ ११/६ १५/४ २०/४ २१/४ २३/४ २५/४ ३०/४ ३४/५ ३५/४	६४	
२ ब्रह्मा	१७/४ १९/४ २२/४ २४/४ २६/४ ३१/४ ३२/४	२८	
३ चातनः	७/७ ८/४ १६/४ २८/४	१९	
४ भृग्वंगिराः	१२/४ १३/४ १४/४ २७/४	१६	
५ सिंधुद्वीपः	४/४ ५/४ ६/४	१२	
६ वासिष्ठः	२९/६	६	
७ द्रविणोदाः	१८/४	४	
८ शन्तातिः	३३/४	४	१५३

द्वितीय काण्ड

१ अथर्वा	४/६ ७/५ १३/५ १९/५ २०/५ २१/५ २२/५ २३/५ २९/७ ३४/५	५३	
२ ब्रह्मा	१५/६ १६/५ १७/७ २४/८ ३३/७	३१	
३ भृग्वंगिराः	८/५ ९/५ १०/८	१८	
४ चातनः	१४/६ १८/५ २५/५	१६	
५ अंगिराः	३/६ ३५/५	११	
६ काण्वः	३१/५ ३२/६	११	
७ भरद्वाजः	१२/८	८	
८ पतिवेदनः	३६/८	८	
९ भृगुराथर्वणः	५/७	७	
१० कपिञ्जलः	२७/७	७	
११ वेनः	१/५	५	
१२ मातृनामा	२/५	५	
१३ शौनकः	६/५	५	
१४ शुक्रः	११/५	५	
१५ सविता	२६/५	५	
१६ शंभुः	२८/५	५	
१७ प्रजापतिः	३०/५	५	२०७

तृतीय काण्ड

१ अथर्वा	१/६ २/६ ३/६ ४/७ ५/८ ८/६ १०/१३ १५/८ १६/७ १८/६ २६/६ २७/६ ३०/७	९२	
२ ब्रह्मा	११/८ १२/९ १४/६ २३/६ २८/६ ३१/११	४६	
३ वसिष्ठः	१९/८ २०/१० २१/१० २२/६	३४	
४ भृगुः	१३/७ २४/७ २५/६	२०	
५ विश्वामित्रः	१७/९	९	
६ जगद्बीजं पुरुषः	६/८	८	
७ उद्दालकः	२९/८	८	
८ भृग्वंगिराः	७/७	७	
९ वामदेवः	९/६	६	२३०

चतुर्थ काण्ड

१ अथर्वा	३/७ ४/८ १०/७ १५/१६ ३०/८ ३४/८	५८	
२ मृगारः	२३/७ २४/७ २५/७ २६/७ २७/७ २९/७	४२	
३ शुक्रः	१७/८ १८/८ १९/८ ४०/८	३२	
४ ब्रह्मा	१/७ १६/९ ३५/७ ३३/८	३१	
५ भृगुः	९/१० १४/९	१९	
६ बादरायणिः	३७/१२ ३८/७	१९	
७ गरुत्मान्	६/८ ७/७	१५	
८ वेनः	१/७ २/८	१५	
९ ब्रह्मास्कंदः	३१/७ ३२/७	१४	
१० भृग्वंगिराः	११/१२	१२	
११ चातनः	३६/१०	१०	
१२ अंगिराः	३९/१०	१०	
१३ मातृनामा	२०/९	९	
१४ अथर्वांगिराः	८/७	७	
१५ ऋभुः	१२/७	७	
१६ शंतातिः	१३/७	७	
१७ वसिष्ठः	२२/७	७	
१८ मृगारोऽथर्वा	२८/७	७	
१९ प्रजापतिः	२५/७	७	३१४

पंचम काण्ड

१ अथर्वा	५/९ ६/१४ ७/१० ८/९ ११/११ १४/१३ १८/१४	८४	
२ ब्रह्मा	२/८ १०/८ २०/१२ २१/१२ २५/१३ २६/१२ २७/१२	७७	
३ मयोभूः	१७/१८ १८/१५ १९/१५	४८	
४ बृहद्दिवोऽथर्वा	१/९ २/९ ३/११	२९	
५ भृग्वंगिराः	४/१० २२/१४	२४	
६ विश्वामित्रः	१५/११ १६/११	२२	
७ उन्मोचनः	३०/१७	१७	
८ चातनः	२९/१५	१५	
९ शुक्रः	१४/१३	१३	
१० कण्वः	२३/१३	१३	
११ शक्रः	३१/१२	१२	
१२ अंगिराः	१२/११	११	
१३ गरुत्मान्	१३/११	११	३७६

षष्ठ काण्ड

१ अथर्वा	१/३ २/३ ३/३ ४/३ ५/३ ६/३ ७/३ १३/३ १७/४ १८/३ ३२/३ ३६/३ ३७/३ ३८/४ ३९/३ ४०/३ ५०/३ ५८/३ ५९/३ ६०/३ ६१/३ ६२/३ ६४/३ ६५/३ ६६/३ ६७/३ ६८/३ ६९/३ ७३/३ ७४/३ ७८/३ ७९/३ ८०/३ ८१/३ ८५/३ ८६/३ ८७/३ ८८/३ ८९/३ ९०/३ ९२/३ ९७/३ ९८/३ ९९/३ १०९/३ ११०/३ १११/४ ११२/३ ११३/३ १२४/३ १२५/३ १२६/३ १३८/५ १३९/५ १४०/३	१७०
२ शन्तातिः	१०/३ १९/४ २१/३ २२/३ २३/३ २४/३ ५१/३ ५६/३ ५७/३ ९३/३ १०७/४	३४
३ अथर्वाङ्गिराः	७२/३ ९४/३ १०१/३ १२८/४ १२९/३ १३०/४ १३१/३ १३२/५	२८
४ ब्रह्मा	२६/३ ४१/३ ५४/३ ५५/३ ७१/३ ११४/३ ११५/३	२१
५ भृगुः	२७/३ २८/३ २९/३ १२२/५ १२३/५	१९
६ कौशिकः	३५/३ ११७/३ ११८/३ ११९/३ १२०/३ १२१/४	१९
७ भृग्वङ्गिराः	२०/३ ४२/३ ४३/३ ९१/३ ९५/३ ९६/३ १२७/३	२१
८ अंगिराः	४५/३ ४६/३ ४७/३ ४८/३	१२
९ भगः	८२/३ ८३/४ ८४/४	११
१० कबन्धः	७५/३ ७६/४ ७७/३	१०
११ विश्वामित्रः	४४/३ १४१/३ १४२/३	९
१२ शौनकः	१६/४ १०८/५	९
१३ जमदग्निः	८/३ ९/३ १०२/३	९
१४ चातनः	३२/२ ३४/५	७
१५ जाटिकायनः	३३/३ ११६/३	६
१६ उपरिबभ्रवः	३०/३ ३१/३	६
१७ गरुत्मान्	१२/३ १००/३	६
१८ वीतहव्यः	१३६/३ १३७/३	६
१९ शुक्रः	१३४/३ १३५/३	६
२० अगस्त्यः	१३३/५	५
२१ द्रुह्वणः	६३/४	४
२२ प्रजापतिः	११/३	३

२३ बभ्रुपिंजलः १८/३ — २
२४ उद्दालकः १५/३ — २
२५ शुनःशेपः २५/३ — २
२६ गार्ग्यः ४९/३ — २
२७ भागलिः ५२/३ — २
२८ बृहच्छुक्रः ५३/३ — २
२९ काङ्कायनः ७०/३ — २
३० उच्छोचनः १०३/३ — २
३१ प्रशोचनः १०४/३ — २
३२ उन्मोचनः १०५/३ — २
३३ प्रमोचनः १०६/३ — २ — ४५४

सप्तम काण्ड

१ अथर्वा १/२ २/१ ३/१ ४/१ ५/५ ६/४ ७/१ १३/२
१४/४ १८/२ २०/६ ३४/१ ३५/३ ३६/१
३७/१ ३८/५ ४६/३ ४७/२ ४८/२ ४९/२
५२/२ ५६/८ ६१/२ ७०/५ ७१/१ ७२/३
७३/११ ७६/६ ७८/२ ७९/४ ८०/४ ८१/६
८५/१ ८६/१ ८७/१ ९१/१ ९२/१ ९४/१
९७/८ ९८/१ ९९/१ १०५/१ १०६/१ — १२१
२ ब्रह्मा १९/१ २१/१ २२/२ २४/१ ३२/१ ३३/१ ५३/७
५४/२ ६०/७ ६६/१ ६७/१ १०३/१ १०४/१
१११/१ — २८
३ भृगुः १५/१ १६/१ १७/४ ५५/१ ८४/३ १०७/१
१०८/२ ११०/३ — १६
४ अंगिराः ५०/२ ५१/१ ७७/३ ९०/३ — १६
५ मेधातिथिः २५/२ २६/८ २७/१ २८/१ २९/२ — १४
६ अथर्वांगिराः ६५/४ ११५/४ ११६/२ ११७/१
११८/१ — १२
७ शौनकः १०/१ ११/१ १२/४ ८२/६ — १२
८ प्रस्कण्वः ३९/१ ४०/२ ४१/२ ४२/२ ४३/१
४४/१ ४५/२ — ११
९ बादरायणिः ५९/१ १०९/७ — ८
१० उपरिबभ्रवः ८/१ ९/४ ७५/२ — [illegible]
११ यमः २३/१ ६४/२ १००/१ १०१/१ — ५
१२ शंतातिः ६८/३ ६९/१ — ४
१३ शुनःशेपः ८३/४ — ४
१४ सिन्धुद्वीपः ८९/४ — ४
१५ भार्गवः ११३/२ ११४/२ — ४
१६ कपिञ्जलः ९५/३ ९६/१ — ४
१७ भृग्वंगिराः ३०/१ ३१/१ ९३/१ — ३
१८ शुक्रः ६५/३ — ३
१९ मरीचिः ६२/१ ६३/१ — २
२० कौरुपथिः ५८/२ — २
२१ वामदेवः ५७/२ — २
२२ वरुणः ११२/२ — २
२३ प्रजापतिः १०२/१ — १
२४ गरुत्मान् ८८/१ — १ — १८६

अष्टम काण्ड

१ अथर्वाचार्यः १०/१३ १०,८,१६,१६,४, — ६७
२ अथर्वा ७/२८ ९/२६ — ५४
३ चातनः ३/२६ ४/२५ — ५१
४ ब्रह्मा १/२३ २/२८ — ४९
५ मातृनामा ६/२६ — २६
६ भृग्वंगिराः ८/२४ — २४
७ शुक्रः ५/२२ — २२ — २९३

नवम काण्ड

१ भृगुः ५/३८ — ३८
२ ब्रह्मा ४/२४ ६/१७ १३, ९, १०, १०,
१४ ९/२२ ७/२६ १०/२८ — १७३
३ भृग्वंगिराः ३/३१ ८/२२ — ५३
४ अथर्वा १/२४ २/२५ — ४९ — ३१३

दशम काण्ड

१ अथर्वा ३/२५ ७/४४ ९/२३ — ९६
२ कुत्सः ८/४४ — ४४
३ बृहस्पतिः ६/३५ — ३५
४ कश्यपः १०/३४ — ३४
५ नारायणः २/३३ — ३३
६ प्रत्यंगिराः १/३२ — ३२
७ गरुत्मान् ४/२६ — २६
८ सिन्धुद्वीपः ५/२४ — २४
९ कौशिकः ५/११ — ११
१० विहव्यः ५/९ — ९
११ ब्रह्मा ५/६ — ६ — ३५०

एकादश काण्ड

१ अथर्वा २/३१ ३/५६ ७/२७ — ११४
२ ब्रह्मा १/३७ ५/२६ — ६३
३ कौरुपथिः ८/३४ — ३४
४ भृग्वंगिराः १०/२७ — २७
५ भार्गवः ४/२६ — २६
६ कांकायनः ९/२६ — २६
७ शंतातिः ६/२३ — २३ — ३१३

द्वादश काण्ड

१ कश्यपः ४/५३ ५/७३ — १२६
२ अथर्वा १/६३ — ६३
३ यमः ३/६० — ६०
४ भृगुः २/५५ — ५५ — ३०४

त्रयोदश काण्ड

१ ब्रह्मा १/६० २/२६ ३/२६ ४/५६ — १८८

चतुर्दश काण्ड

१ सूर्या सावित्री १/६४ २/७५ — १३९

पंचदश काण्ड

१ अथर्वा १/८ २/२८ ३/११ ४/१८ ५/१६ ६/२६ ७/५ ८/३ ९/३ १०/११ ११/११ १२/११ १३/१४ १४/२४ १५/९ १६/७ १७/१० १८/५ — २२०

षोडश काण्ड

१ यमः ५/१० ६/११ ७/१३ ८/३३ ९/४ — ७१
२ अथर्वा १/१३ २/६ — १९
३ ब्रह्मा ३/६ ४/७ — १३ — १०३

सप्तदश काण्ड

१ ब्रह्मा १/३० — ३०

अष्टादश काण्ड

१ अथर्वा १/६१ २/६० ३/७३ ४/८९ — २८३

एकोनविंश काण्ड

१ ब्रह्मा १/३ ६/१४ २१/१ २८/१० २९/९ ३०/५ ३६/६ ४०/४ ४१/१ ४२/४ ४३/८ ५१/२ ५२/५ ५८/६ ५९/३ ६०/२ ६१/१ ६२/१ ६३/१ ६४/४ ६५/१ ६६/१ ६७/८ ६८/१ ६९/४ ७०/१ ७१/१ — १०७
२ अथर्वा १४/१ १५/६ १६/२ १७/१० १८/१० १९/११ २०/४ २३/३० २४/८ २६/४ २७/४ २८/३ — ९३
३ भृगुः ३२/१० ३३/५ ४४/१० ४५/१० ५३/१० ५४/५ ५५/६ — ५६
४ अंगिराः २२/२१ ३४/१० ३५/५ — ३६
५ गोपथः २५/१ ४७/९ ४८/६ ४९/१० ५०/७ — ३३
६ भृग्वंगिराः २७/१५ ३९/१० ७२/१ — २६
७ वसिष्ठः १०/१० ११/६ १२/१ — १७
८ नारायणः ६/१६ — १६
९ सविता ३१/१४ — १४
१० गार्ग्यः ७/५ ८/७ — १२
११ यमः ५६/६ ५७/५ — ११
१२ अप्रतिरथः १३/११ — ११
१३ अथर्वांगिराः ३/४ ४/४ ५/१ — ९
१४ प्रजापतिः ४६/७ — ७
१५ सिन्धुद्वीपः २/५ — ५ — ४५३

विंश काण्ड

१ खिलानि ४८/६ ४९/७ १२७/१४ १२८/१६ १२९/२० १३०/२० १३१/२० १३२/१६ १३३/६ १३४/६ १३५/१३ १३६/१६ — १६०
२ मधुच्छन्दाः ३१/५ ४०/३ ५७/१६ ६८/१२ ६९/१२ ७०/२० ७१/१६ ८४/३ — ८७
३ विश्वामित्रः १/३ २/४ ६/९ ११/११ १९/७ २०/७ २३/९ २४/९ ८६/१ १०२/३ — ६३
४ वसिष्ठः १२/७ ३७/११ ७३/६ ७५/२ ८२/२ ८७/७ ११७/३ १२१/२ — ४०
५ सुकक्षः ७/४ ४७/२१ ६०/६ ११२/३ — ३४
६ कृष्णः १७/१२ ९१/११ ९४/११ — ३४
७ मेध्यातिथिः १०/२ ५१/२ ५२/३ ५३/३ ५४/४ ९५/२ १०१/३ १०४/४ ११६/२ — २५
८ इरिम्बिठिः ३/३ ४/३ ५/७ ३८/६ ४४/३ ४६/३ — २५
९ गोतमः १५/६ २५/७ ४३/३ ५६/६ १०९/३ — २५
१० गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ १७/६ २८/४ २९/५ ६३/६ १०६/३ — २४
११ वामदेवः १३/४ ७६/८ ८८/६ १२४/६ — २४
१२ अयास्यः १६/१२ ९१/१२ — २४

१३ पूरणः	९६/२४	२४
१४ वृषाकपिरिन्द्राणी	१२६/२३	२३
१५ गृत्समदः	३५/१८ ९४/४	२२
१६ नृमेधः	५८/४ ६४/६ १००/३ १०५/५ १०८/३	२१
१७ शशकर्णः	१३९/५ १४०/५ १४१/५ १४२/६	२१
१८ वत्सः	१०९/१५ ११५/३ १३८/३	२१
१९ प्रियमेधः	०२/२१	२१
२० नोधाः	९/४ ३५/१६	२०
२१ शुनःशेपः	२६/६ ४५/३ ६७/७ १२२/३	१९
२२ भरद्वाजः	८/३ ३६/११ २०/३	१७
२३ सौभरिः	१४/४ ६२/१० ११४/२	१६
२४ शिरिम्बिठिः	१३७/१४	१४
२५ वरुः सर्वहरिर्वा	३०/५ ३१/५ ३२/३	१३
२६ परुच्छेपः	६७/७ ७२/३ ७५/३	१३
२७ प्रगाथः	८५/४ ९३/८	१२
२८ सव्यः	२१/११	११
२९ शंयुः	७८/३ ८०/२ ८३/२ ९८/२	९
३० त्रिशोकः	२२/६ ८३/३	९
३१ भुवनः साधनो वा	६३/९	९
३२ पुरुमीढाजमीढौ	१४३/९	९
३३ वसुक्रः	७६/८	८
३४ सुकीर्तिः	१२५/७	७
३५ रेभः	५४/३ ५५/३	६
३६ विश्वमनाः	६५/३ ६६/३	६
३७ भर्गः	११३/२ ११८/४	६
३८ मेधातिथिः	१६/६	६
३९ प्रस्कण्वः	५१/४	४
४० अष्टकः	३३/३	३
४१ कुरुस्तुतिः	४२/३	३
४२ सुदीतिपुरुमीढौ	१०३/३	३
४३ श्रुतकक्षः सुकक्षो वा	११०/३	३
४४ कलिः	५७/३	३
४५ पर्वतः	११२/३	३
४६ पुरुहन्मा	८१/२	२
४७ आयुः	१३९/२	२
४८ देवातिथिः	१२०/२	२
४९ कुत्सः	१२३/२	२ ९५८

काण्डोंकी मंत्रसंख्या

१	काण्डकी	मंत्रसंख्या	१५३
२	"	"	२०७
३	"	"	२३०
४	"	"	३२४
५	"	"	३०६
६	"	"	४५४
७	"	"	२८६
८	"	"	२९३
९	"	"	३१३
१०	"	"	३५०
११	"	"	३१३
१२	"	"	३०४
१३	"	"	१८८
१४	"	"	१३९
१५	"	"	२२०
१६	"	"	१०३
१७	"	"	३०
१८	"	"	२८३
१९	"	"	४५३
२०	"	"	९५८
			५९७७ अथर्ववेदकी कुल मंत्रसंख्या

यहांतक हमने काण्डोंमें ऋषियोंकी मंत्रसंख्या कितनी है यह देखी। अब एक एक ऋषिकी कुल मंत्रसंख्या कितनी है वह देखेंगे—

काण्ड	मंत्रसंख्या	काण्ड	मंत्रसंख्या	काण्ड	मंत्रसंख्या
१ अथर्वा		६	१००	१२	६३
१	६४	७	१२१	१५	२२०
२	५३	८	५४	१६	१९
३	९२	९	४९	१८	२८३
४	५४	१०	९६	१९	९३
५	८४	११	११४		१५५९

काण्ड	मंत्रसंख्या
२ ब्रह्मा	
१	२८
२	३३
३	४६
४	३१
५	७७
६	२१
७	२८
८	४९
९	१७३
१०	६
११	६३
१३	१८८
१६	१३
१७	३०
१९	१०७
	८९३
३ भृग्वंगिराः	
१	१६
२	१८
३	७
४	१२
५	२४
६	२१
७	३
८	२४
९	५३
११	२७
१९	२६
	२३१
४ भृगुः	
३	२०
४	१९
६	१९
७	१६
९	३८
१२	५५
१९	५६
	२२३

काण्ड	मंत्रसंख्या
५ कश्यपः	
१०	३४
१२	१२६
	१६०
६ यमः	
७	५
१२	६०
१६	७१
१९	११
	१४७
७ सूर्या सावित्री	
१४	१३९
८ चातनः	
१	१९
२	१६
४	१०
५	१५
६	७
८	५१
	११८
९ वसिष्ठः	
१	६
३	३४
४	७
१९	१७
२०	४०
	१०४
१० विश्वामित्रः	
३	९
५	२२
६	९
२०	६३
	१०३
११ अंगिराः	
२	११
४	१०
५	११
६	१२
७	१६
१९	३६
	९६

काण्ड	मंत्रसंख्या
१२ मधुच्छन्दाः	
२०	८७
१३ शुक्रः	
२	५
४	३२
५	१३
६	६
७	३
८	२२
	८१
१४ शंतातिः	
१	४
४	७
६	३४
७	४
११	२३
	७२
१५ अथर्वाचार्यः	
८	६७
१६ अथर्वांगिराः	
४	७
६	२८
७	१२
१९	९
	५६
१७ गरुत्मान्	
४	१५
५	११
६	६
७	१
१०	२६
	५९
१८ नारायणः	
१०	३३
१९	१६
	४९
१९ मयोभूः	
५	४८

काण्ड	मंत्रसंख्या
२० कुत्सः	
१०	४४
२०	२
	४६
२१ सिन्धुद्वीपः	
१	१२
७	४
१०	२४
१९	५
	४५
२२ मातृनामा	
२	५
४	९
८	२६
	४०
२३ कौरुपथिः	
७	२
११	३४
	३६
२४ बृहस्पतिः	
१०	३५
२५ सुकक्षः	
२०	३४
२६ कृष्णः	
२०	३४
२७ गोपथः	
१९	३२
२८ वामदेवः	
३	६
७	२
२०	२४
	३२
२९ प्रत्यंगिराः	
१०	३२
३० भार्गवः	
७	४
११	२६
	३०

काण्ड	मंत्रसंख्या
३१ कौशिकः	
६	१९
१०	११
	३०
३२ बृहद्दिवोऽथर्वा	
५	२९
३३ कांकायनः	
६	३
११	२६
	२९
३४ बादरायणिः	
४	१९
७	८
	२७
३५ शुनःशेपः	
६	३
७	४
१०	१९
	२६
३६ शौनकः	
२	५
६	९
७	१२
	२६
३७ मेध्यातिथिः	
२०	२५
३८ इरिम्बिठिः	
२०	२५
३९ गोतमः	
२०	२५
४० भरद्वाजः	
२	८
२०	१७
	२५
४१ काण्वः	
२	११
५	१३
	२४
४२ गोपूक्त्यश्वसूक्तिनौ	
२०	२४

काण्ड	मंत्रसंख्या
४३ अयास्यः	
२०	२४
४४ पूरणः	
२०	२४
४५ प्रजापतिः	
२	५
४	७
६	३
७	१
१९	७
	२३
४६ वृषाकपिरिन्द्राणी	
२०	२३
४७ गृत्समदः	
२०	२२
४८ नृमेधः	
२०	२१
४९ शशकर्णः	
२०	२१
५० वत्सः	
२०	२१
५१ प्रियमेधः	
२०	२१
५२ नोधाः	
२०	२१
५३ वेनः	
२	५
४	१५
	२०
५४ मेधातिथिः	
७	१४
२०	६
	२०
५५ उन्मोचनः	
५	१७
६	३
	२०
५६ सविता	
२	५
१९	१४
	१९

काण्ड	मंत्रसंख्या
५७ सौभरिः	
२०	१६
५८ गार्ग्यः	
६	३
१९	१२
	१५
५९ प्रस्कण्वः	
७	११
२०	४
	१५
६० ब्रह्मास्कंदः	
४	१४
६१ शिरिंविठिः	
२०	१४
६२ उपरिबभ्रवः	
६	६
७	७
	१३
६३ वरुः सर्वहरिर्वा	
२०	१३
६४ परुच्छेपः	
२०	१३
६५ खिलं	
२०	१३
६६ शक्रः	
५	१२
६७ प्रगाथः	
२०	१२
६८ कपिंजलः	
२	७
७	४
	११
६९ उद्दालकः	
३	८
६	३
	११
७० भगः	
६	११
७१ अप्रतिरथः	
१९	११

काण्ड	मंत्रसंख्या
७२ सव्यः	
२०	११
७३ कबन्धः	
६	१०
७४ जमदग्निः	
६	९
७५ शंयुः	
२०	९
७६ त्रिशोकः	
२०	९
७७ भुवनसाधनः	
२०	९
७८ पुरुमीढाजमीढौ	
२०	९
७९ पतिवेदनः	
२	८
८० जगद्बीजं पुरुषः	
३	८
८१ वसुक्रः	
२०	८
८२ भृगुराथर्वणः	
२	७
८३ ऋभुः	
४	७
८४ मृगारोऽथर्वा	
४	७
८५ सुकीर्तिः	
२०	७
८६ जाटिकायनः	
६	६
८७ वीतहव्यः	
६	६
८८ रेभः	
२०	६
८९ विश्वमनाः	
२०	६
९० भर्गः	
२०	६
९१ शम्भुः	
२	५

काण्ड	मंत्रसंख्या
९२ अगस्त्यः	
६	५
९३ द्रविणोदाः	
१	४
९४ द्रुह्वणः	
६	४
९५ श्रुतकक्षः सुकक्षो वा	
२०	३
९६ अष्टकः	
२०	३
९७ कुरुस्तुतिः	
२०	३
९८ कालिः	
२०	३
९९ सुदीतिपुरुमीढौ	
२०	३
१०० पर्वतः	
२०	३
१०१ बभ्रुपिंगलः	
६	३
१०२ भागलिः	
६	३
१०३ बृहच्छुक्रः	
६	३
१०४ उच्छोचनः	
६	३
१०५ प्रशोचनः	
६	३
१०६ प्रमोचनः	
६	३
१०७ मरीचिः	
७	२
१०८ वरुणः	
७	२
१०९ पुरुहन्मा	
२०	२
११० आयुः	
२०	२
१११ देवातिथिः	
२०	२

इस तरह अथर्ववेदमें ऋषियोंके अनुसार मंत्रसंख्या है इसका ब्यौरा यह है—

१	अथर्वा	१६२९
२	ब्रह्मा	८९३
३	भृग्वंगिराः	२३१
४	भृगुः	२२३
५	कश्यपः	१६०
६	यमः	१४७
७	सूर्यासावित्री	१३९
८	चातनः	११८
९	विश्वामित्रः	१०३
१०	अंगिराः	९६
११	मधुच्छन्दाः	८७
१२	शुक्रः	८१
१३	शंतातिः	७२
१४	अथर्वाचार्यः	६७
१५	अथर्वाङ्गिराः	५६
१६	बृहद्दिवोऽथर्वा	२९

शेष ऋषि थोडे मंत्रोंके हैं इसलिये यहां लेनेकी आवश्यकता नहीं है। इनमें भी—

१	अथर्वा	१६२९
२	अथर्वाचार्यः	६७
३	अथर्वाङ्गिराः	५६
४	बृहद्दिवोऽथर्वा	२९
		१७८१

अथर्ववेदमें कुल मंत्र अथर्वा ऋषिके १७८१ हैं। इसलिये इस वेदका नाम 'अथर्ववेद' हुआ है क्योंकि सब ऋषियोंकी मंत्रसंख्यासे अथर्वा ऋषिकी मंत्रसंख्या इसमें अधिक है। इस वेदका दूसरा नाम 'ब्रह्मवेद' है। इसका कारण इसमें ब्रह्मा ऋषिके मंत्र अथर्वाके मंत्रोंसे कम हैं। ब्रह्मा ऋषिके मंत्र ८९३ हैं। अथर्ववेदके नामोंके विषयमें नीचे लिखे प्रमाणवचन देखने योग्य हैं—

१ अथर्ववेद इति गोपथे 'अथर्ववेदमधीयते' गोपथ ब्रा० (१।२९)

२ ब्रह्मवेद 'तं ऋचः सामानि यजूंषि ब्रह्म चानुव्यचलन्।' अथर्व. १५।६।८

३ अंगिरोवेदः। 'ता उपदिशति अंगिरसां वेदः'। श० ब्रा० १३।४।३।८

४ अथर्वांगिरसां वेदः। 'सामानि यस्य लोमानि अथर्वांगिरसो मुखम्।' अथर्व. १०।७।२०

५ भृग्वंगिरसां वेदः। 'एतद्वै भूयिष्ठं ब्रह्म यद् भृग्वंगिरसः।' गो० ब्रा० ३।४

६ क्षत्रवेदः।'उक्थं…यजु…साम…क्षत्रं…वेद।' शत० ब्रा० १४।८।१४।२-४

७ भैषज्यवेदः। 'ऋचः सामानि भेषजा। यजूंषि होत्रा ब्रूम। अथर्व. १०।६।१४

ये सात नाम अथर्ववेदके लिये वैदिक वाङ्मयमें आगये हैं। इनमें 'अथर्ववेद' यह नाम विशेष महत्त्वका है क्योंकि इस वेदमें अथर्वा ऋषिके मंत्र करीब करीब १७८१ हैं अथवा केवल अथर्वाके ही गिने जांय तो १६२९ हैं। अथर्ववेदके कुल मंत्र ५९७७ हैं इनमें चौथे विभागसे ये मंत्र अधिक हैं।

अथर्ववेदका दूसरा नाम 'ब्रह्मवेद' है। इस 'ब्रह्मा' ऋषिके अथर्ववेदमें मंत्र ८९३ हैं। यह संख्या कुल अथर्ववेदके मंत्रोंमें आठवें हिस्सेके बराबर है।

तीसरा नाम 'अंगिरोवेद' और चौथा नाम 'अथर्वांगिरसां वेद', पांचवां नाम 'भृग्वंगिरसां वेद' है। इन तीनों नामोंमें 'अंगिरसां वेद' यह नाम सामान्य है। इनकी मंत्रसंख्या यह है—

१	भृगुः	२२३
२	भृग्वंगिराः	२३१
३	अंगिराः	९६
४	अथर्वांगिराः	५६
		६०६

यह क्रमसंख्या तीसरे स्थानपर आती है। इस कारण 'अंगिरो वेद' यह इसका तीसरा नाम है।

'क्षत्र वेद' यह इसका नाम इसलिये है कि इसमें क्षात्रगुणके परिपोषणके मंत्र अधिक हैं। देखिये—

यातुधाननाशनं	१।७	७	
यातुधाननाशनं	१।८	४	
विजयः	१।९	४	
शत्रुबाधनं	१।१६	४	
शत्रु-निवारणं	१।१९	४	
शत्रु-निवारणं	१।२०-२१	८	
रक्षोघ्नं	१।२८	४	
राष्ट्राभिवर्धनं	१।२९	६	४१

इन्द्रवीर्याणि	२।५	७	
सपत्नहा	२।६	५	
शत्रुनाशनं	२।१२	८	
दस्युनाशनं	२।१४	६	
शत्रुनाशनं	२।१५-२४	५६	
शत्रुपराजयः	२।२७	७	८९
शत्रुसेनासंमोहनं	३।१-६	४१	
राष्ट्रधारणं	३।८	६	
अजरं क्षत्रं	३।१९	८	
वीरः	३।२२	६	
शत्रुनिवारणं	३।२७	६	६७
शत्रुनाशनं	४।३	७	
राज्याभिषेकः	४।८	७	
अमित्रक्षयणं	४।२२	७	
राष्ट्रीदेवी	४।३०	८	
सेनानिरीक्षणं	४।३१	७	
सेनासंयोजनं	४।३२	७	
शत्रुनाशनं	४।४०	८	५१
विजयः	५।३	११	
शत्रुनाशनं	५।७-८	१९	
शत्रुसेनात्रासनं	५।२०-२१	२४	
रक्षोघ्नं	५।२९	१५	६९
शत्रुनाशः	६।२-७	१८	
शत्रुनिवारणं	६।१५	३	
यातुधानक्षयणं	६।३२	३	
शत्रुनाशनं	६।३४	५	
अभयं	६।४०	३	
अभयं	६।५०	३	
अभयं	६।५३-५४	६	
शत्रुनाशनं	६।६५-६७	९	
शत्रुनाशनं	६।७५	३	
शत्रुनाशनं	६।८०	३	
राजा	६।८७-८८	६	
वीरः	६।९७-९९	९	
शत्रुनाशः	६।१०३-१०४	६	
वीरः	६।१२५,१२८	७	
शत्रुनाशः	६।१३४	३	८७

शत्रुनाशः	७।८	१	
राष्ट्रसभा	७।१२	४	
शत्रुनाशः	७।१३	२	
शत्रुनाशः	७।३१	१	
शत्रुनाशः	७।३४	१	
विजयः	७।५०	९	
शत्रुनाशनं	७।६२	१	
शत्रुनाशनं	७।७०	५	
शत्रुनाशनं	७।७७	३	
शत्रुनाशनं	७।९०	३	
शत्रुनाशनं	७।९३	१	
शत्रुनाशनं	७।९५-९६	४	
शत्रुनाशनं	७।१०८	२	
शत्रुनाशनं	७।११०	३	
शत्रुनाशनं	७।११३-११४	४	
शत्रुनाशनं	७।११७	१	४५
शत्रुनाशनं	८।३-४	५१	
शत्रुनाशनं	८।८	२४	७५
विजयः	१०।५	५०	
शत्रुनाशनं	११।९-१०	५३	
मातृभूमिः	१२।१	६३	१६६
एकवीरः	१९।१२	११	
अभयं	१९।१४-१६	९	
सुरक्षा	१९।१७-२०	३५	
राष्ट्रं	१९।२४	८	
सुरक्षा	१९।२७	१५	
राष्ट्रं	१९।४१	१	
असुरक्षयः	१९।६६	१	८०
इन्द्रः	२०	९५८	९५८
			१७२८

अथर्ववेदमें शत्रुका पराजय करके अपना विजय संपादन करके अपना क्षात्रतेज प्रकट करनेका भाव बतानेवाले मंत्र ७७० हैं और बीसवें काण्डमें इन्द्र देवताके मंत्र ९५८ हैं। इनमें इन्द्रके वीरत्वके कर्मका ही वर्णन है। ये इनमें मिलानेसे ७७०+९५८=१७२८ मंत्र होते हैं। ये सब मंत्र 'क्षात्रधर्म' के प्रकाशक मंत्र हैं।

इस कारण शतपथ ब्राह्मणमें इस अथर्ववेदको ' क्षत्र-वेद ' कहा यह ठीक ही कहा है। करीब करीब अथर्व-वेदका चौथा भाग ' क्षात्रधर्म बतानेवाला ' है। इस कारण इसका नाम ' क्षत्रवेद ' ठीक ही दीखता है।

अथर्ववेदमें १०।६।१४ में ' ऋचः सामानि भेषजा यजूंषि ' ऐसे नाम चार वेदोंके कहे हैं। इसमें ' भेषज-वेद ' अथर्ववेदको कहा है। भेषजवेदका अर्थ ' औषधि-वेद ' अर्थात् चिकित्साका यह वेद है। अतः औषधचिकित्साके विषयमें इसमें कितने मंत्र हैं अब देखते हैं—

अथर्ववेदमें चिकित्साके मंत्र

रोगोपशमनं	१।२	४	
मूत्रमोचनं	१।३	९	
अपां भेषजं	१।४-६	१२	
सुखप्रसूतिः	१।११	६	
यक्ष्मनाशनं	१।१२	४	
पुष्टिकर्म	१।१५	४	
रुधिरस्रावनिवृत्तिः	१।१७	४	
हृद्रोगकामिलानाशनं	१।२२	४	
श्वेतकुष्ठनाशनं	१।२३-२४	८	
ज्वरनाशनं	१।२५	४	
दीर्घायुः	१।३०	४	
दीर्घायुः	१।३५	४	६७
आस्रावभेषजं	२।३	६	
दीर्घायुः	२।४	६	
रोगनाशनं	२।८	५	
दीर्घायुः	२।९	५	
दीर्घायुः	२।१३	५	
बलप्राप्तिः	२।१७	७	
पृश्निपर्णी	२।२५	५	
दीर्घायुः	२।२८-२९	१२	
क्रिमिनाशः	२।३१-३२	११	
यक्ष्मनाशः	२।३३	७	६९
यक्ष्मनाशः	३।७	७	
दीर्घायुः	३।११	८	
शापः	३।१२	७	
वनस्पतिः	३।१८	६	
प्रसूतिः	३।२३	६	
कामः	३।२५	६	
यक्ष्मनाशनं	३।३१	११	५१
वाजीकरणं	४।४	८	
स्नापनं	४।५	७	
विषघ्नं	४।६-७	१५	
आञ्जनं	४।९	१०	
शंखमणिः	४।१०	७	
रोहिणी	४।१२	७	
रोगनिवारणं	४।१३	७	
अपामार्गः	४।१७-२०	३३	
मृत्युसंतरणं	४।३५	७	
कृमिनाशनं	४।३७	१२	११३
अमृतासुः	५।१	९	
कुष्ठतक्मनाशनं	५।४	१०	
लाक्षा	५।५	९	
सर्पविषनाशनं	५।१३	११	
कृत्यापरिहरणं	५।१४	१३	
रोगोपशमनं	५।१५-१६	२३	
तक्मनाशनं	५।२२-२३	२७	
दीर्घायुः	५।२८	१४	
रक्षोघ्नं	५।२९	१५	
दीर्घायुः	५।३०	१७	
कृत्यापरिहरणं	५।३१	१२	१६०
पुंसवनं	६।११	३	
सर्पविषनिवारणं	६।१२	३	
मृत्युंजयः	६।१३	३	
बलासनाशनं	६।१४	३	
अक्षिरोगभैषजं	६।१६	४	
गर्भदृंहणं	६।१७	४	
यक्ष्मनाशनं	६।२०	३	
केशवर्धनं	६।२१	३	
भैषज्यं	६।२२-२४	९	
दीर्घायुः	६।४१	३	
रोगनाशनं	६।४४-४७	१२	
भैषज्यं	६।५२	३	
जलचिकित्सा	६।५७	३	
औषधिः	६।५९	३	
वाजीकरणं	६।७२	३	
आयुष्यं	६।७६	४	
गर्भाधानं	६।८१	३	

भैषज्यं	६।८३	४	
यक्ष्मनाशनं	६।८५	३	
यक्ष्मनाशनं	६।९१	३	
कुष्ठौषधिः	६।९५	३	
चिकित्सा	६।९६	३	
विषदूषणं	६।१००	३	
वाजीकरणं	६।१०१	३	
कासशमनं	६।१०५	३	
दूर्वा	६।१०६	३	
मेधावर्धनं	६।१०८	५	
पिप्पली	६।१०९	३	
दीर्घायु	६।११०	३	
उन्मत्ततामोचनं	६।१११	४	
स्मरः	६।१३०-१३२	१२	
बलप्राप्तिः	६।१३५	३	
केशवर्धनं	६।१३६-१३७	६	
क्लीवत्वं	६।१३८	५	
सुमंगलौ दन्तौ	६।१४०	३	१४१
अञ्जनं	७।३०	१	
दीर्घायुः	७।३२-३३	२	
अञ्जनं	७।३६	१	
आपः	७।३९	१	
दीर्घायुः	७।५३	७	
विषभैषज्यं	७।५६	८	
गंडमाला	७।७४	४	
गंडमाला	७।७६	६	
सर्पविष०	७।८८	१	
आपः	७।८९	४	
अमृतत्वं	७।१०६	१	
ज्वर नाशः	७।११६	२	३८
दीर्घायुः	८।१-२	४९	
गर्भदोषनिवारणं	८।६	२६	
ओषधयः	८।७	२८	१०३
यक्ष्म०	९।८	२२	
कृत्या०	१०।१	३२	
सर्पविष०	१०।४	२६	
वशा गौः	१०।१०	३४	११४
यक्ष्मरोग०	१२।२	५५	
वशा गौः	१२।४	५३	१०८
हिरण्यं	१९।२६	४	
दर्भमणिः	१९।२९-३९	८१	
भैषज्यं	१९।४४-४६	२७	
दीर्घायुः	१९।६३-६४	५	११७
चिकित्साके कुल मंत्र			१०८१

अथर्ववेदमें चिकित्साके अर्थात् औषधी प्रकरणके १०८१ मंत्र हैं। इसलिये इस वेदका नाम "भैषज्य-वेद" है वह योग्य है। 'क्षत्र-वेद' क्षात्रबलके-राज्यशासन, शत्रु-पराजय आदि विषयोंके मंत्र अथर्ववेदमें १७२८ हैं इस लिये 'क्षात्र-वेद' यह नाम सार्थ हुआ है और औषधि प्रकरणके मंत्र १०८१ हैं इसलिये 'भैषज्यवेद' यह नाम भी ठीक दीखता है। अन्य विषयोंके मंत्रोंसे इन विषयोंके मंत्र संख्यामें अधिक होनेके कारण ये नाम अथर्ववेदको दिये हैं। ये दो नाम मंत्रोंके अन्दर आये विषयोंके अनुसार हैं। अन्य विषयोंके मंत्र थोडे हैं, इस कारण अन्य विषयोंके नाम दिये नहीं हैं।

शेष ५ नाम मंत्रद्रष्टा ऋषियोंके हैं और वे भी मंत्र-संख्याके अनुसार ही हैं, देखिये—

१ प्रथम नाम 'अथर्ववेद' है। मंत्रसंख्या १७८१ है।

२ द्वितीय नाम 'ब्रह्मवेद' है। मंत्रसंख्या ७९४ है।

३ तृतीय नाम 'अंगिरोवेद' है, चतुर्थ नाम 'अथर्वांगिरसां वेद' है और पंचम नाम 'भृग्वंगिरसां वेद' है। इनमें 'भृगु' के मंत्र २२३, 'भृग्वंगिरा' के २३१, 'अंगिरा' के ९६ और 'अथर्वांगिरा' के ५६ हैं। इनके सब मंत्र मिलकर ६०६ हैं।

अन्य ऋषियोंके मंत्र इससे कम हैं, अतः किसी अन्य ऋषिका नाम इस अथर्ववेदको मिला नहीं। मंत्रसंख्यासे ही ये नाम मिले हैं यह बात यहां सिद्ध हुई है।

यज्ञमें ब्रह्माका पद

यज्ञमें जो मुख्य अधिष्ठाता होता है उसको 'ब्रह्मा' बोलते हैं और वह अथर्ववेदी ही होना चाहिये, ऐसा नियम है। इसका कारण भी अथर्वा और ब्रह्माके मंत्र अन्य ऋषियोंके मंत्रोंसे अधिक हैं यही है, देखिये—

ऋग्वेदके ऋषियोंके मंत्र

१ काण्वः	ऋषि	अष्टम	मंडल	१७१६
२ वसिष्ठ	ऋषि	सप्तम	मंडल	८४१
३ भरद्वाज	ऋषि	षष्ठ	मंडल	७६५
४ अत्रि	ऋषि	पंचम	मंडल	७२७
५ वामदेवो गौतमः	ऋषि	चतुर्थ	मंडल	५८९
६ विश्वामित्र	ऋषि	तृतीय	मंडल	६१७
७ गृत्समद	ऋषि	द्वितीय	मंडल	४२९

इनमें मुख्य ऋषि और उसके गोत्रमें उत्पन्न ऋषियोंके मंत्र संमिलित हैं। देखिये—

१ वसिष्ठ ऋषि के सूक्त १०४ और मंत्र ८४१ हैं। इनमें वसिष्ठ गोत्रोत्पन्न ऋषियोंके मंत्र संमिलित नहीं हैं। सप्तम मण्डल ही इनका मंडल है।

२ भरद्वाज ऋषि के सूक्त २९ हैं और मंत्र ५२९ हैं। भरद्वाज गोत्रके ऋषि सुहोत्रः १०, शुनहोत्रः १०, नरः १०, शंयुः ९३, गर्गः ३१, ऋजिश्वा ६३, पायुः १९, ऐसे भरद्वाज गोत्रजोंके मंत्र २३६ हैं और भरद्वाजके मंत्र ५२९ हैं।

३ अत्रि ऋषिके सूक्त १३ हैं और मंत्र १२६ हैं। अत्रिगोत्रके ऋषियोंके मंत्र ये हैं- बुधगविष्ठिरौ १२, कुमारः १२, वसुश्रुतः ४४, इषः १७, गयः १४, सुतंभरः २४, धरुणः ५, पुरुः १०, द्वितो मृक्तवाहाः ५, वव्रिः ५, प्रयस्वन्तः ४, ससः ४, विश्वसामा ४, द्युम्नः ४, गोपायनः ४, वसूयवः १८, त्रैवृष्णः ६, विश्ववारा ६, गौरिवीतिः १५, बभ्रुः १५, अवस्युः १३, गातुः १२, संवरणः १९, प्रभूवसुः १४, अवत्सारः १५, सद्पृणः ११, प्रतिक्षत्र ८, प्रतिरथ ७, प्रतिभानु ५, प्रतिप्रभः ५, स्वस्ति २०, श्यावाश्वः १३२, श्रुतवित् ९, अर्चनाना १४, रातहव्यः १२, यजतः १०, उरुचक्रिः ८, बाहुवृक्तः ६, पौरः २०, अवस्युः ९, सप्तवध्रिः ९, सत्यश्रवाः १६, एवयामरुत् ९ इनके कुल मंत्र ६०१ हैं।

अत्रिके मंत्र १२६ और गोत्रजोंके ६०१ मिलकर ७२७ होते हैं।

४ गौतम गोत्रमें उत्पन्न वामदेव ऋषिके सूक्त ५५ और ५६५ मंत्र चतुर्थ मंडलमें हैं। त्रसदस्युः १०, पुरुमीळ्हाजमीळ्हौ १४ मिलकर २४ मंत्र इनके हैं।

५ विश्वामित्र ऋषिके सूक्त ४७ और ४८१ मंत्र तृतीय मंडलमें है। इसके गोत्रजोंके मंत्र ऐसे हैं— ऋषभः १४, कात्यः १३, कतः १०, गाथी २०, देवश्रवाः ५, कुशिकः २२, प्रजापतिः ५२ सब मिलकर १३६ हुए।

६ गृत्समद ऋषिके सूक्त ३६ और मंत्र ३६३ है। इसके मण्डलमें अन्य ऋषियोंके ये मंत्र है— सोमाहुतिः ३१, कूर्मः ३५ मिलकर ६६ हुए। इसमें गृत्समदके ४६३ मिलानेसे ५२९ कुल मंत्र द्वितीय काण्डके होते हैं।

ऋग्वेदके नवम मंडलमें केवल सोमदेवताके मंत्र हैं। वे इन ऋषियोंके ही हैं। वे इनमें मिलानेसे इनके मंत्रोंकी संख्या थोडी बढ सकती है। प्रथम और दशम मंडलमें थोडे मंत्रोंके, छोटे सूक्तोंके सब ऋषि हैं। जैसे अथर्ववेदमें छोटे सूक्तोंके अनेक ऋषि हैं। इसलिये वे यहां नहीं लिये हैं।

ऊपर अष्टम मण्डलके मंत्र १७१६ दिये हैं। इस मंडलमें कण्वगोत्रके अनेक ऋषियोंके मंत्र हैं। स्वयं कण्व ऋषिका एक भी मंत्र इसमें नहीं है, कण्वगोत्रके अनेक ऋषियोंके तथा अन्यान्य ऋषियोंके मंत्र हैं। इस कारण इनकी गिनती ऋषिवार करनेकी जरूरत नहीं है। अर्थात् बाकीके छः ऋषि रहे उनका मंत्रसंख्यावार क्रम यह है—

१ वसिष्ठ	८४१
२ वामदेव	५६५
३ भरद्वाज	५२९
४ विश्वामित्र	४८१
५ गृत्समद	३६३
६ अत्रि	१२६

अत्रिकुलोत्पन्न 'श्यावाश्व' ऋषिके मंत्र १३२ पंचम मंडलमें हैं। यह मंत्रसंख्या देखनेसे ऋग्वेदके ऋषियोंकी मंत्रसंख्या अथर्ववेदके ऋषियोंकी मंत्रसंख्यासे कम दीखती है। देखिये—

१ अथर्वा	१६२९
२ ब्रह्मा	८९३
३ भृग्वंगिराः	२३१
४ भृगुः	२२३
५ कश्यपः	१६०
६ सूर्यासावित्री	१३९
७ यमः	१४०

अथर्वा ऋषिका स्थान प्रथम आता है। इसलिये यज्ञमें अथर्वाका स्थान मुख्य माना गया है। यज्ञमें ब्रह्मापद पर अथर्ववेदी ही बैठना चाहिये यह प्राचीन मर्यादा इस कारण है। क्योंकि चारों वेदोंके ऋषियोंमें अथर्वा ऋषिके मंत्र सब अन्य ऋषियोंकी मंत्रसंख्यासे अधिक हैं। वेदमें ही कहा है--

अथर्वा यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्ते हिरण्यये।
अथर्व. १०।१०।१७

'जहां दीक्षित होकर अथर्वा सुवर्णके आसनपर बैठता है।' अग्निको मन्थनसे प्रथम उत्पन्न करनेवाला अथर्वा ऋषि है —

अग्निर्जातो अथर्वणः। ऋ. १०।२१।५

इममु त्यम् अथर्ववद् अग्निं मन्थन्ति वेधसः।
ऋ. ६।१५।१७

अथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदग्ने। वा. य. ११।३२

त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत।
ऋ. ६।१६।१३; वा. य. १५।२२

यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते। ऋ. १।८३।५

अथर्वासे अग्नि प्रथम उत्पन्न हुआ। अथर्वाके समान ज्ञानी लोग अग्निका मंथन करते हैं। हे अग्ने! अथर्वाने तुझे प्रथम मन्थनसे निर्माण किया। पुष्करसे तुझे अथर्वाने मन्थन करके हे अग्ने! निकाला है। अथर्वाने सबको यज्ञोंसे प्रथम मार्ग बताया है।

इस तरह वेद ही अथर्वाके यज्ञप्रवर्तनका वर्णन करता है। और उसका प्रथम स्थान बताता है।

अथर्ववेद

प्रथमं काण्डं

सूक्त	नाम	मंत्र
१	मेधाजननं	४
२	रोगोपशमनं	४
३	मूत्रमोचनं	९
४	अपां भेषजं	४
५	अपां भेषजं	४
६	अपां भेषजं	४
७	यातुधाननाशनं	७
८	यातुधाननाशनं	४
९	विजयः	४
१०	पाशविमोचनं	४
११	प्रसूतिः	६
१२	यक्ष्मनाशनं	४
१३	विद्युत्	४
१४	कन्या	४
१५	पुष्टिकर्म	४
१६	शत्रुबाधनं	४
१७	धमनीबंधनं	४
१८	अलक्ष्मीनाशनं	४
१९	शत्रुनिवारणं	४
२०	शत्रुनिवारणं	४
२१	शत्रुनिवारणं	४
२२	हृद्रोगकामिलानाशनं	४

सूक्त	नाम	मंत्र
२३	श्वेतकुष्ठनाशनं	४
२४	श्वेतकुष्ठनाशनं	४
२५	ज्वरनाशनं	४
२६	शर्मप्राप्तिः	४
२७	स्वस्त्ययनं	४
२८	रक्षोघ्नं	४
२९	राष्ट्राभिवर्धनं सपत्नक्षयणं	६
३०	दीर्घायुः	४
३१	पाशमोचनं	४
३२	महद्ब्रह्म	४
३३	आपः	४
३४	मधुविद्या	५
३५	दीर्घायुः	४
		१५३

४ मंत्रोंके	सूक्त	३०	मंत्र	१२०
५ ,,	,,	१	,,	५
६ ,,	,,	२	,,	१२
७ ,,	,,	१	,,	७
९ ,,	,,	१	,,	९
		३५		१५३

प्रथम काण्डमें ४ मन्त्रोंके सूक्त अधिक हैं।

द्वितीयं काण्डं

सूक्त	नाम	मंत्र
१	परमं धाम	५
२	भुवनपतिः	५
३	आस्रावभेषजं	६
४	दीर्घायुः	६
५	इन्द्रस्य वीर्याणि	७
६	सपत्नहा अग्निः	५
७	शापमोचनं	५
८	क्षेत्रियरोगनाशनं	५
९	दीर्घायुः	५
१०	पाशमोचनं	८
११	श्रेयःप्राप्तिः	५
१२	शत्रुनाशनं	८
१३	दीर्घायुः	५
१४	दस्युनाशनं	६
१५	अभयप्राप्तिः	६
१६	सुरक्षा	५
१७	बलप्राप्तिः	७
१८	शत्रुनाशनं	५
१९	शत्रुनाशनं	५
२०	शत्रुनाशनं	५
२१	शत्रुनाशनं	५
२२	शत्रुनाशनं	५

सूक्त	नाम	मंत्र
२३	शत्रुनाशनं	५
२४	शत्रुनाशनं	८
२५	पृश्निपर्णी	५
२६	पशुसंवर्धनं	५
२७	शत्रुपराजयः	७
२८	दीर्घायुः	५
२९	दीर्घायुः	७
३०	कामिनीमनोऽभिमुखीकरणं	५
३१	कृमिजंभनं	५
३२	कृमिजंभनं	६
३३	यक्ष्मविबर्हणं	७
३४	पशवः	५
३५	विश्वकर्मा	५
३६	पतिवेदनं	८
		२०७

५ मंत्रोंके	सूक्त	२२	मंत्र	११०
६	,,	,,	५	,,	३०
७	,,	,,	५	,,	३५
८	,,	,,	४	,,	३२
			३६		२०७

द्वितीय काण्डमें ५ मंत्रोंके सूक्त अधिक हैं।

तृतीयं काण्डं

सूक्त	नाम	मंत्र
१	शत्रुसेनासंमोहनं	६
२	शत्रुसेनासंमोहनं	६
३	स्वराज्ये राज्ञःस्थापना	६
४	राज्ञः संवरणं	७
५	राष्ट्रस्य राजा	८
६	शत्रुनाशनं	८
७	यक्ष्मनाशनं	७
८	राष्ट्रधारणं	६
९	दुःस्वप्ननाशनं	६
१०	रायस्पोषप्राप्तिः	१३
११	दीर्घायुः	८
१२	शालानिर्माणं	९
१३	आपः	७
१४	गोष्ठः	६
१५	वाणिज्यं	८
१६	स्वस्तये प्रार्थना	७
१७	कृषिः	९
१८	वनस्पतिः	६
१९	क्षत्रं	८
२०	रयिसंवर्धनं	१०
२१	शान्तिः	१०
२२	वर्चःप्राप्तिः	६
२३	वीरप्रसूतिः	६
२४	समृद्धिप्राप्तिः	७
२५	कामस्य इषुः	६
२६	आत्मरक्षा	६
२७	शत्रुनिवारणं	६
२८	पशुपोषणं	६
२९	अविः	८
३०	सांमनस्यं	७
३१	यक्ष्मनाशनं	११
		२३०

६ मंत्रोंवाले	सूक्त	१३	मंत्र	७८
७	,,	,,	६	,,	४२
८	,,	,,	६	,,	४८
९	,,	,,	२	,,	१८
१०	,,	,,	२	,,	२०
११	,,	,,	१	,,	११
१३	,,	,,	१	,,	१३
			३१		२३०

तृतीय कांडमें ६ मंत्रोंके सूक्त अधिक हैं।

चतुर्थं काण्डं

सूक्त	नाम	मंत्र
१	ब्रह्मविद्या	७
२	आत्मविद्या	८
३	शत्रुनाशनं	७
४	वाजीकरणं	८
५	स्वापनं	७
६	विषघ्नं	८
७	विषघ्नं	७
८	राज्याभिषेकः	७
९	आञ्जनं	१०
१०	शंखमणिः	७
११	अनड्वान्	१२
१२	रोहिणी	७
१३	रोगनिवारणं	७
१४	स्वर्ज्योतिः	९
१५	वृष्टिः	१६
१६	सत्य-अनृते	९
१७	अपामार्गः	८
१८	अपामार्गः	८
१९	अपामार्गः	८
२०	पिशाचक्षयणं	९
२१	गावः	७
२२	अमित्रक्षयणं	७
२३	पापमोचनं	७
२४	पापमोचनं	७
२५	पापमोचनं	७
२६	पापमोचनं	७
२७	पापमोचनं	७
२८	पापमोचनं	७
२९	पापमोचनं	७
३०	राष्ट्रीदेवी	८
३१	सेनानिरीक्षणं	७
३२	सेनासंयोजनं	७
३३	पापनाशनं	८
३४	ब्रह्मौदनं	८
३५	मृत्युसंतरणं	७
३६	अग्निः	१०
३७	कृमिनाशनं	१२
३८	ऋषभः	७
३९	संनतिः	१०
४०	शत्रुनाशनं	८
		३२४

७ मंत्रोंके	सूक्त	२१	मंत्र	१४७
८	,,	,,	१०	,,	८०
९	,,	,,	३	,,	२७
१०	,,	,,	३	,,	३०
१२	,,	,,	२	,,	२४
१६	,,	,,	१	,,	१६
			४०		३२४

७ मंत्रोंके सूक्त चतुर्थ कांडमें अधिक हैं।

५ पंचमं काण्डं

सूक्त	नाम	मंत्र
१	अमृतासुः	९
२	भुवनेषु ज्येष्ठः	९
३	विजयः	११
४	कुष्ठनाशनं	१०
५	लाक्षा	९
६	ब्रह्मविद्या	१४
७	अरातिनाशनं	१०
८	शत्रुनाशनं	९
९	आत्मा	८
१०	आत्मरक्षा	८
११	संपत्कर्म	११
१२	ऋतस्य यज्ञः	११
१३	सर्वविषनाशनं	११
१४	कृत्यापरिहरणं	१३
१५	रोगोपशमनं	११
१६	वृषरोगशमनं	११
१७	ब्रह्मजाया	१८
१८	ब्रह्मगवी	१५
१९	ब्रह्मगवी	१५
२०	शत्रुसेनात्रासनं	१२
२१	शत्रुसेनात्रासनं	१२
२२	तक्मनाशनं	१४
२३	क्रिमिघ्नं	१३
२४	ब्रह्मकर्म	१७
२५	गर्भाधानं	१३
२६	नवशालाघृतहोमः	१२
२७	अग्निः	१२
२८	दीर्घायुः	१४
२९	रक्षोघ्नं	१५
३०	दीर्घायुष्यं	१७
३१	कृत्यापरिहरणं	१२
		३७६

८	मंत्रोंके	सूक्त	२	मंत्र	१६
९	,,	,,	४	,,	३६
१०	,,	,,	२	,,	२०
११	,,	,,	६	,,	६६
१२	,,	,,	५	,,	६०
१३	,,	,,	३	,,	३९
१४	मंत्रोंके	सूक्त	३	नाम	४२
१५	,,	,,	३	,,	४५
१७	,,	,,	२	,,	३४
१८	,,	,,	१	,,	१८
			३१		३७६

पंचम कांडमें ११ मंत्रोंके सूक्त अधिक हैं।

षष्ठं काण्डं

सूक्त	नाम	मंत्र
१	अमृतप्रदाता	३
२	जेता इन्द्रः	३
३	आत्मगोपनं	३
४	आत्मगोपनं	३
५	वर्चःप्राप्तिः	३
६	शत्रुनाशनं	३
७	असुरक्षयणं	३
८	कामात्मा	३
९	कामात्मा	३
१०	संप्रोक्षणं	३
११	पुंसवनं	३
१२	सर्पविषनिवारणं	३
१३	मृत्युंजयः	३
१४	बलासनाशनं	३
१५	शत्रुनिवारणं	३
१६	अक्षिरोगभैषजं	४
१७	गर्भदृंहणं	४
१८	ईर्ष्याविनाशनं	३
१९	पावमानं	३
२०	यक्ष्मनाशनं	३
२१	केशवर्धनी औषधिः	३
२२	भैषज्यं	३
२३	अपां भैषज्यं	३
२४	अपां भैषज्यं	३
२५	मन्याविनाशनं	३
२६	पाप्मनाशनं	३
२७	अरिष्टक्षयणं	३
२८	अरिष्टक्षयणं	३
२९	अरिष्टक्षयणं	३
३०	पापनाशनं	३
३१	गौः	३
३२	यातुधानक्षयणं	३
३३	इन्द्रस्तवः	३
३४	शत्रुनाशनं	५
३५	वैश्वानरः	३
३६	वैश्वानरः	३
३७	शापनाशनं	३
३८	वर्चस्यम्	४
३९	वर्चस्यम्	३
४०	अभयं	३
४१	दीर्घायुः	३
४२	चित्तैकीकरणं	३
४३	मन्युशमनं	३
४४	रोगनाशनं	३
४५	दुःस्वप्ननाशनं	३
४६	दुःस्वप्ननाशनं	३
४७	दीर्घायुः	३
४८	स्वस्तिवाचनं	३
४९	अग्निस्तवः	३
५०	अभययाचना	३
५१	एनोनाशनं	३
५२	भैषज्यं	३
५३	सर्वतो रक्षणं	३
५४	अमित्रदंभनं	३
५५	सौमनस्यं	३
५६	सर्पेभ्यो रक्षणं	३
५७	जलचिकित्सा	३
५८	यशःप्राप्ति	३
५९	औषधिः	३
६०	पतिलाभः	३
६१	विश्वस्रष्टा	३
६२	पावमानं	३
६३	वर्चोबलप्राप्तिः	४
६४	सांमनस्यं	३
६५	शत्रुनाशनं	३
६६	शत्रुनाशनं	३
६७	शत्रुनाशनं	३
६८	वपनं	३
६९	वर्चःप्राप्तिः	३
७०	अघ्न्या	३

सूक्त	नाम	मंत्र
७१	अन्नं	३
७२	वाजीकरणं	३
७३	सांमनस्यं	३
७४	सांमनस्यं	३
७५	सपत्नक्षयणं	३
७६	आयुष्यं	४
७७	प्रतिष्ठापनं	३
७८	दम्पत्योरयिप्रार्थना	३
७९	ऊर्जःप्राप्तिः	३
८०	अरिष्टक्षयणं	३
८१	गर्भाधानं	३
८२	जायाकामना	३
८३	भैषज्यं	४
८४	निर्ऋतिमोचनं	४
८५	यक्ष्मनाशनं	३
८६	वृषकामना	३
८७	राज्ञः संवरणं	३
८८	ध्रुवो राजा	३
८९	प्रीतिसंजननं	३
९०	इषुनिष्कासनं	३
९१	यक्ष्मनाशनं	३
९२	वाजी	३
९३	स्वस्त्ययनं	३
९४	सांमनस्यं	३
९५	कुष्ठौषधिः	३
९६	चिकित्सा	३
९७	अभिभूर्वीरः	३
९८	अजरं क्षत्रं	३
९९	संग्रामजयः	३
१००	विषदूषणं	३
१०१	वाजीकरणं	३
१०२	अभिसांमनस्यं	३
१०३	शत्रुनाशनं	३
१०४	शत्रुनाशनं	३
१०५	कासशमनं	३
१०६	दूर्वाशाला	३
१०७	विश्वजित्	४
१०८	मेधावर्धनं	५
१०९	पिप्पली	३

सूक्त	नाम	मंत्र
११०	दीर्घायुः	३
१११	उन्मत्ततामोचनं	४
११२	शापमोचनं	३
११३	पापनाशनं	३
११४	उन्मोचनं	३
११५	पापमोचनं	३
११६	मधुमदन्नं	३
११७	आनृण्यं	३
११८	आनृण्यं	३
११९	पापमोचनं	३
१२०	सुकृतस्य लोकः	३
१२१	सुकृतस्य लोकः	४
१२२	तृतीयो नाकः	५
१२३	सौमनस्यं	५
१२४	निर्ऋत्यपस्तरणं	३
१२५	वीरस्य रथः	३
१२६	दुन्दुभिः	३
१२७	यक्ष्मनाशनं	३
१२८	राजा	४
१२९	भगप्राप्तिः	३
१३०	स्मरः	४
१३१	स्मरः	३
१३२	स्मरः	५
१३३	मेखलाबंधनं	५
१३४	शत्रुनाशनं	३
१३५	बलप्राप्तिः	३
१३६	केशदृंहणं	३
१३७	केशवर्धनं	३
१३८	क्लीबत्वं	५
१३९	सौभाग्यवर्धनं	५
१४०	सुमंगलौ दन्तौ	३
१४१	गोकर्णयोर्लक्ष्यकरणं	३
१४२	अन्नसमृद्धिः	३
		४५४

३ मंत्रोंके	सूक्त	१२२	मंत्र	३६६
४ ,,	,,	१२	,,	४८
५ ,,	,,	८	,,	४०
		१४२		४५४

षष्ठ काण्डमें ३ मंत्रोंके सूक्त अधिक हैं।

७ सप्तमं काण्डं

सूक्त	नाम	मंत्र
१	आत्मा	२
२	आत्मा	१
३	आत्मा	१
४	विश्वप्राणः	१
५	आत्मा	५
६	अदितिः	४
७	आदित्याः	१
८	शत्रुनाशनं	१
९	स्वस्तिदा पूषा	४
१०	सरस्वती	१
११	सरस्वती	१
१२	राष्ट्रसभा	४
१३	शत्रुनाशनं	२
१४	सविता	४
१५	सविता	१
१६	सविता	१
१७	द्रविणं	४
१८	वृष्टिः	२
१९	प्रजाः	१
२०	अनुमतिः	६
२१	एको विभुः	१
२२	ज्योतिः	२
२३	दुःस्वप्ननाशनं	१
२४	सविता	१
२५	विष्णुः	२
२६	विष्णुः	८
२७	इडा	१
२८	स्वस्ति	१
२९	अग्नाविष्णू	२
३०	अञ्जनं	१
३१	शत्रुनाशनं	१
३२	दीर्घायुः	१
३३	दीर्घायुः	१
३४	शत्रुनाशनं	१
३५	सपत्नीनाशनं	३
३६	अंजनं	१
३७	वासः	१
३८	केवलः पतिः	५

सूक्त	नाम	मंत्र	सूक्त	नाम	मंत्र
३९	आपः	१	८०	पूर्णिमा	४
४०	सरस्वान्	२	८१	सूर्याचन्द्रमसौ	६
४१	सुपर्णः	२	८२	अग्निः	६
४२	पापमोचनं	२	८३	पाशमोचनं	४
४३	वाक्	१	८४	क्षत्रन्दग्निः	३
४४	इन्द्राविष्णू	१	८५	अरिष्टनेमिः	१
४५	ईर्ष्यानिवारणं	२	८६	त्राता इन्द्रः	१
४६	सिनीवाली	३	८७	व्यापको देवः	१
४७	कुहूः	२	८८	सर्पविषनाशनं	१
४८	राका	२	८९	आपः	४
४९	देवपत्न्यः	२	९०	शत्रुबलनाशनं	३
५०	विजयः	९	९१	सुत्रामा इन्द्रः	१
५१	परिपाणं	१	९२	सुत्रामा इन्द्रः	१
५२	सांमनस्यं	२	९३	शत्रुनाशनं	१
५३	दीर्घायुः	७	९४	सांमनस्यं	१
५४	अध्यापकविघ्नशमनं	२	९५	शत्रुनाशनं	३
५५	मार्गस्वस्त्ययनं	१	९६	शत्रुनाशनं	१
५६	विषभैषज्यं	८	९७	यज्ञः	८
५७	सवस्वती	२	९८	हविः	१
५८	अर्ह	२	९९	वेदी	१
५९	शापमोचनं	१	१००	दुःस्वप्ननाशनं	१
६०	रम्यं गृहं	७	१०१	दुःस्वप्ननाशनं	१
६१	तपः	२	१०२	आत्मनोऽहिंसनं	१
६२	शत्रुनाशनं	१	१०३	क्षत्रियः	१
६३	दुरितनाशनं	१	१०४	गौः	१
६४	पापमोचनं	२	१०५	दैव्यं वचः	१
६५	दुरितनाशनं	३	१०६	अमृतत्वं	१
६६	ब्रह्म	१	१०७	संवरणं	१
६७	आत्मा	१	१०८	शत्रुनाशनं	२
६८	सरस्वती	३	१०९	राष्ट्रभृतः	७
६९	सुखं	१	११०	शत्रुनाशनं	३
७०	शत्रुदमनं	५	१११	आत्मा	१
७१	अग्निः	१	११२	पापनाशनं	२
७२	इन्द्रः	३	११३	शत्रुनाशनं	२
७३	धर्मः	११	११४	शत्रुनाशनं	२
७४	गण्डमाला	४	११५	पापलक्षणनाशनं	४
७५	अघ्न्याः	२	११६	ज्वरनाशनं	२
७६	गण्डमाला	६	११७	शत्रुनिवारणं	१
७७	शत्रुनाशनं	३	११८	वर्मधारणं	१
७८	बन्धमोचनं	२			
७९	अमावास्या	४			२८६

१ मंत्रके	सूक्त	५६	मंत्र	५६
२ ,,	,,	२६	,,	५२
३ ,,	,,	१०	,,	३०
४ ,,	,,	११	,,	४४
५ ,,	,,	३	,,	१५
६ ,,	,,	४	,,	२४
७ ,,	,,	३	,,	२१
८ ,,	,,	३	,,	२४
९ ,,	,,	१	,,	९
११ ,,	,,	१	,,	११
		११८		२८६

इस अष्टम काण्डमें ११२ मन्त्रोंके सूक्त अधिक हैं।

अष्टमं काण्डं

१	दीर्घायुः	२१
२	दीर्घायुः	२८
३	शत्रुनाशनं	२६
४	शत्रुदमनं	२५
५	प्रतिसरमणिः	२२
६	गर्भदोषनिवारणं	२६
७	ओषधयः	२८
८	शत्रुपराजयः	२४
९	विराट्	२६
१०	विराट्	६७
		२९३

नवमं काण्डं

१	मधुविद्या	२४
२	कामः	२५
३	शाला	३१
४	ऋषभः	२४
५	अजः	३८
६	अतिथिसत्कारः	७३
७	गौः	२१
८	यक्ष्मनाशनं	२२
९	आत्मा	२२
१०	आत्मा	२८
		३१३

दशमं काण्डं

१	कृत्यादूषणं	३२
२	ब्रह्म	३३
३	वरणमणिः	२५
४	सर्पविषदूरीकरणं	२६
५	विजयः	५०
६	मणिबंधनं	३५

सूक्त	नाम	मंत्र
७	सर्वाधारः	४४
८	ज्येष्ठब्रह्म	४४
९	शमोदना गौः	२७
१०	वशा गौः	३४
		३५०
	एकादशं काण्डं	
१	ब्रह्मौदनं	३७
२	रुद्रः	३१
३	ओदनः	५६
४	प्राणः	२६
५	ब्रह्मचर्यं	२६
६	पापमोचनं	२३
७	उच्छिष्ट ब्रह्म	२७
८	अध्यात्मं	३४
९	शत्रुनिवारणं	२६
१०	शत्रुनिवारणं	२७
		३१३
	द्वादशं काण्डं	
१	मातृभूमि	६३
२	यक्ष्मनाशनं	५५
३	स्वर्ग-ओदनः	६०
४	वशा गौः	५३
५	ब्रह्मगवी	७३
		३०४
	त्रयोदशं काण्डं	
१	अध्यात्मं	६०
२	अध्यात्मं	४६
३	अध्यात्मं	२६
४	अध्यात्मं	५६
		१८८
	चतुर्दशं काण्डं	
१	विवाह प्रकरणं	६४
२	विवाह प्रकरणं	७५
		१३९
	पंचदशं काण्डं	
१	अध्यात्म प्रकरणं	
	व्रात्य प्रकरणं	
	१८ पर्यायाः	२२०
	षोडशं काण्डं	
१	दुःखमोचनं	१०३
	सप्तदशं काण्डं	
१	अभ्युदयाय प्रार्थना	३०

सूक्त	नाम	मंत्र
	अष्टादशं काण्डं	
१	पितृमेधः	६१
२	पितृमेधः	६०
३	पितृमेधः	७३
४	पितृमेधः	८९
		२८३
	एकोनविंशं काण्डं	
१	यज्ञः	३
२	आपः	५
३	जातवेदाः	४
४	आकूतिः	४
५	जगतो राजा	१
६	जगद्बीजः पुरुषः	१६
७	नक्षत्राणि	५
८	नक्षत्राणि	७
९	शान्तिः	१४
१०	शांतिः	१०
११	शांतिः	६
१२	दीर्घायुः	१
१३	एकवीरः	११
१४	अभयं	१
१५	अभयं	६
१६	अभयं	२
१७	सुरक्षा	१०
१८	सुरक्षा	१०
१९	शर्म	११
२०	सुरक्षा	४
२१	छंदांसि	१
२२	ब्रह्म	२१
२३	अथर्वाणः	३०
२४	राष्ट्रं	८
२५	अश्वः	१
२६	हिरण्यधारणं	४
२७	सुरक्षा	१५
२८	दर्भमणिः	१०
२९	दर्भमणिः	९
३०	दर्भमणिः	५
३१	औदुंबरमणिः	१४
३२	दर्भः	१०
३३	दर्भः	५
३४	जंगिडमणिः	१०

सूक्त	नाम	मंत्र
३५	जंगिडमणिः	५
३६	शतवारो मणिः	६
३७	बलप्राप्तिः	४
३८	यक्ष्मनाशनं	३
३९	कुष्ठनाशनं	१०
४०	मेधा	४
४१	राष्ट्रं बलमोजश्च	१
४२	ब्रह्मयज्ञः	४
४३	ब्रह्मा	८
४४	भैषज्यं	१०
४५	आंजनं	१०
४६	अस्तृतमणिः	७
४७	रात्रिः	९
४८	रात्रिः	६
४९	रात्रिः	१०
५०	रात्रिः	७
५१	आत्मा	२
५२	कामः	५
५३	कालः	१०
५४	कालः	५
५५	रायस्पोषप्राप्तिः	६
५६	दुःष्वप्ननाशनं	६
५७	दुःष्वप्ननाशनं	५
५८	यज्ञः	६
५९	यज्ञः	३
६०	अंगानि	२
६१	पूर्णायुः	१
६२	सर्वप्रियत्वं	१
६३	आयुर्वर्धनं	१
६४	दीर्घायुत्वं	४
६५	अवनं	१
६६	असुरक्षयणं	१
६७	दीर्घायुत्वं	८
६८	वेदोक्तं	१
६९	आपः	४
७०	पूर्णायुः	१
७१	वेदमाता	१
७२	परमात्मा वेदाश्च	१
		४५३
	विंशं काण्डं	
१४३	इन्द्रसूक्तानि	९५८
	कुल मंत्र	५९७७

अथर्ववेदकी आजकी व्यवस्था

अथर्ववेदकी आजकी व्यवस्था ७ वें काण्डतक ऐसी है—

१ प्रथम कांडमें ४ मंत्रोंके सूक्त अधिक हैं।
२ द्वितीय कांडमें ५ मंत्रोंके सूक्त अधिक हैं।
३ तृतीय कांडमें ६ मंत्रोंके सूक्त अधिक हैं।
४ चतुर्थ कांडमें ७ मंत्रोंके सूक्त अधिक हैं।
५ पंचम कांडमें ११ मंत्रोंके सूक्त अधिक हैं।
६ षष्ठ कांडमें ३ मंत्रोंके सूक्त अधिक हैं।
७ सप्तम कांडमें १ या २ मंत्रोंके सूक्त अधिक हैं।

इस तरह सूक्तमें मंत्रसंख्याके अनुसार ये काण्ड बने हैं। तेरहवें काण्डसे प्रकरण है—

१३ तेरहवें काण्डमें अध्यात्म प्रकरण है।
१४ चौदहवें काण्डमें विवाह प्रकरण है।
१५ पंदरहवें काण्डमें व्रात्य प्रकरण है।
१६ सोलहवें काण्डमें दुःखमोचन प्रकरण है।
१७ सतरहवें काण्डमें अभ्युदय प्रकरण है।
१८ अठारहवें काण्डमें पितृमेध प्रकरण है।
२० बीसवें काण्डमें इन्द्रसूक्त प्रकरण है।

अर्थात् इन सात काण्डोंमें सात प्रकरण हैं। प्रथमके १२ काण्डोंमें तथा उन्नीसवें काण्डमें प्रकरण नहीं हैं। इनमें प्रकरणानुसार सूक्त एकत्रित किये जांय, तो अध्ययनकी अपूर्व सुविधा हो सकती है। इसका विचार सबको करना चाहिये।

पूर्व स्थानमें क्षात्र प्रकरण (पृ. ९; १०) चिकित्सा प्रकरण (पृ. ११, १२) दिये हैं। इन सूक्तोंको परस्पर सम्बन्ध देखकर सब सूक्तोंको एकत्रित किया जायगा तो अध्ययनके लिये कितना अच्छा होगा। आजके सूक्त विषयानुसार संग्रहित किये नहीं हैं। उन सबको विषयानुसार संग्रहित करनेसे अध्ययन करनेवालोंको अर्थका अनुसंधान सहज हो सकता है।

विषयवार संग्रह

ब्रह्मज्ञान, ईश्वर, राज्यशासन, मातृभूमि, चिकित्सा, युद्ध, शत्रुपराजय ऐसे ४०।५० विषयोंके नीचे उस उस विषयके सूक्त क्रमसे रखे जांय तो वेदकी दुर्बोधता स्वयं दूर होगी। और संस्कृतज्ञ पाठकोंको वेदका नित्य पाठ करना और उससे लाभ प्राप्त करना सहज होगा।

देवतावार मंत्रोंके प्रकरण

ऋग्वेदकी आजकी व्यवस्था ऋषिक्रमानुसार है (पृ. १३) केवल नवम मंडल ' सोम देवता ' का है अतः वह बनी बनाई ' दैवत संहिता ' है। ' अग्नि, इन्द्र, मरुत्, सोम, अश्विनौ, औषधि आदि देवताओंके मंत्र एकत्रित किये जांय और चारों वेदोंके मंत्र देवतानुसार रखे जांय तो एक एक देवताके मंत्र इकट्ठे अध्ययनके लिये मिलेंगे और प्रकरणानुसार मंत्र रहनेसे अर्थज्ञान होनेके लिये बडी सुविधा होगी।

आजकी संहिताएं वैसी ही रहेंगी। उनमें कुछ न्यून वा अधिक करना नहीं है। परंतु दैवत-संहिता बनाकर विषयानुसार मंत्र इसलिये इकट्ठे करने हैं, कि पाठकोंको एक विषयका ज्ञान सहज हो जाय, जैसा—

इन्द्र सूक्तोंसे युद्धव्यवस्थाका ज्ञान
मरुत् सूक्तोंसे सैन्यव्यवस्थाका ज्ञान
अश्विनौ सूक्तोंसे आरोग्य व्यवस्थाका ज्ञान

इस तरह अन्यान्य देवताओंके सूक्तोंसे अन्यान्य विषयोंका ज्ञान होना सहज है। आज एकत्रित मंत्र न होनेके कारण किसीको अर्थका अनुसंधान ही नहीं रहता। इसलिये इस तरह विषयवार तथा देवतावार मन्त्रसंग्रह करनेकी आज बडी आवश्यकता है।

वेद

इस देवतावार मन्त्रसंग्रहमें चारों वेदोंके सब मन्त्र रहेंगे और उस ग्रन्थका नाम हम ' वेद ' रखेंगे। ये चार संहिताएं ' ऋग्वेद-संहिता, यजुर्वेद-संहिता, सामवेद-संहिता और अथर्ववेद-संहिता ' इन नामोंसे सुप्रसिद्ध हैं वे वैसी ही रहेंगी।

अध्ययनकी सुविधाके लिये यह दैवत-संहिता ' वेद ' नामसे मुद्रित की जायगी। इसमें वैदिक संहिताओंके सब मंत्र प्रकरणके अनुसार रहेंगे। एक भी मंत्र छोडा नहीं जायगा। वह ' वेद ' ग्रंथ आठ-नौ सौ पृष्ठोंका सदासर्वदा पास रखने योग्य होगा। विशेष बडा भी नहीं होगा। मूल्य भी स्वल्प ही होगा।

सब वेद धर्मको माननेवाले विद्वान् इस विषयका विचार करें और आजकी कठिनताको दूर करनेके लिये स्वकीय संमति प्रदर्शित करके सहायता करें।

वेदके व्याख्यान

वेदोंमें नाना प्रकारके विषय हैं, उनको प्रकट करनेके लिये एक एक व्याख्यान दिया जा रहा है। ऐसे व्याख्यान २०० से अधिक होंगे और इनमें वेदोंके नाना विषयोंका स्पष्ट बोध हो जायगा।

मानवी व्यवहारके दिव्य संदेश वेद दे रहा है, उनको लेनेके लिये मनुष्योंको तैयार रहना चाहिये। वेदके उपदेश आचरणमें लानेसे ही मानवोंका कल्याण होना संभव है। इसलिये ये व्याख्यान हैं। इस समय तक ये व्याख्यान प्रकट हुए हैं।

१ मधुच्छन्दा ऋषिका अग्निमें आदर्श पुरुषका दर्शन।
२ वैदिक अर्थव्यवस्था और स्वामित्वका सिद्धान्त।
३ अपना स्वराज्य।
४ श्रेष्ठतम कर्म करनेकी शक्ति और सौ वर्षोंकी पूर्ण दीर्घायु।
५ व्यक्तिवाद और समाजवाद।
६ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।
७ वैयक्तिक जीवन और राष्ट्रीय उन्नति।
८ सप्त व्याहृतियाँ।
९ वैदिक राष्ट्रगीत।
१० वैदिक राष्ट्रशासन।
११ वेदोंका अध्ययन और अध्यापन।
१२ वेदका श्रीमद्भागवतमें दर्शन।
१३ प्रजापति संस्थाद्वारा राज्यशासन।
१४ त्रैत, द्वैत, अद्वैत और एकत्वके सिद्धान्त।
१५ क्या यह संपूर्ण विश्व मिथ्या है?
१६ ऋषियोंने वेदोंका संरक्षण किस तरह किया?
१७ वेदके संरक्षण और प्रचारके लिये आपने क्या किया है?
१८ देवत्व प्राप्त करनेका अनुष्ठान।
१९ जनताका हित करनेका कर्तव्य।
२० मानवके दिव्य देहकी सार्थकता।
२१ ऋषियोंके तपसे राष्ट्रका निर्माण।
२२ मानवके अन्दरकी श्रेष्ठ शक्ति।
२३ वेदमें दर्शाये विविध प्रकारके राज्यशासन।
२४ ऋषियोंके राज्यशासनका आदर्श।
२५ वैदिक समयकी राज्यशासन व्यवस्था।
२६ रक्षकोंके राक्षस।
२७ अपना मन शिवसंकल्प करनेवाला हो।
२८ मनका प्रचण्ड वेग।
२९ वेदकी दैवत संहिता और वैदिक सुभाषितोंका विषयवार संग्रह।
३० वैदिक समयकी सेनाव्यवस्था।
३१ वैदिक समयके सैन्यकी शिक्षा और रचना।
३२ वैदिक देवताओंकी व्यवस्था।
३३ वेदमें नगरोंकी और वनोंकी संरक्षण व्यवस्था।
३४ अपने शरीरमें देवताओंका निवास।
३५, ३६, ३७ वैदिक राज्यशासनमें आरोग्य-मन्त्रीके कार्य और व्यवहार।
३८ वेदोंके ऋषियोंके नाम और उनका महत्त्व।

आगे व्याख्यान प्रकाशित होते जायंगे। प्रत्येक व्याख्यानका मूल्य ।=) छः आने रहेगा। प्रत्येकका डा. व्य. =) दो आना रहेगा। दस व्याख्यानोंका एक पुस्तक सजिल्द लेना हो तो उस सजिल्द पुस्तकका मूल्य ५) होगा और डा. व्य. १।) होगा।

मंत्री — स्वाध्यायमण्डल, पोस्ट- 'स्वाध्यायमण्डल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]

मुद्रक और प्रकाशक- व. श्री. सातवळेकर, भारत-मुद्रणालय, पो.- 'स्वाध्याय मण्डल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]



वैदिक व्याख्यान माला — २९ वाँ व्याख्यान

रुद्र देवताका परिचय

लेखक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

साहित्य-वाचस्पति, वेदाचार्य, गीतालंकार

अध्यक्ष- स्वाध्याय मंडल

स्वाध्याय मंडल, पारडी

२७ नये पैसे

वैदिक व्याख्यान माला
३९ वॉ व्याख्यान



रुद्रदेवताका परिचय

'रुद्र' के विषयमें निरुक्तका मत।

'निघण्टु' नामक वैदिक कोश में अ० ३।१६ में 'स्तोतृनामों' में 'रुद्र' शब्दका निर्देश किया गया है। इससे 'रुद्र' शब्दका 'स्तोता' स्तुति करनेवाला, ऐसा अर्थ निघण्टुकार के मतसे है। इसलिये निघण्टुकारके मतानुसार 'रुद्र' शब्द मनुष्यवाचक ही प्रतीत होता है। परंतु निरुक्तकार यास्काचार्यने इस 'रुद्र' देवताका परिगणन मध्यस्थानीय देवगण (निरु० अ० १०।१) में किया है।

> अथातो मध्यस्थाना देवताः॥ १॥ रुद्रो रौतीति सतः रोरूयमाणो द्रवतीति वा, रोदयतेर्वा, 'यदरुदत्तद्रुद्रस्य रुद्रत्वम्' इति काठकम् 'यदरोदीत्तद्रुद्रस्य रुद्रत्वम्' इति हारिद्रविकम्॥
>
> (निरुक्त, दैवतकाण्ड १०।१।२-६)

"अब मध्यम स्थान अर्थात् अन्तरिक्ष स्थानके देवोंका विचार करना है। 'रु' अर्थात् शब्द करना, इस अर्थका यह शब्द है, किंवा शब्द करता हुआ निकलता है, ऐसा इसका अर्थ है। रोनेके कारण इसको रुद्र कहा है, ऐसा काठक और हारिद्रविक शाखा संप्रदायवालोंका मत है।" अर्थात् 'रुद्र' देवता अन्तरिक्षमें है। मेघोंमें रहकर वह गर्जनारूप शब्द करता है, और गर्जना करता हुआ, मेघोंको द्रवरूप बनाकर वृष्टि कराता है। काठक और **हारिद्रविक** शाखा-संप्रदाय-वालोंका मत ऐतिहासिक है; देखिए—

> (१) स किल पितरं प्रजापतिमिषुणा विध्यन्तमनुशोचन्नरुदत् तद्रुद्रस्य रुद्रत्वम्॥
>
> (२) यदरोदीत्तद्रुद्रस्य रुद्रत्वम्॥
>
> (नि० भाष्य १०।१।६)

"वह रुद्र अपने प्रजापति पिताको बाणसे विद्ध करता हुआ देखकर रोया, इसलिये उसका नाम रुद्र हुआ।" यह मत ऐतिहासिकोंका है। तथा—

> एक एव रुद्रोऽवतस्थे न द्वितीयः।
> असंख्याताः सहस्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम्।
> ......इति॥ (नि० १।१३)

"एक मंत्र कहता है कि '**एक ही रुद्र है, वह अ-द्वितीय है।**' परन्तु दूसरे मंत्रमें कहा है कि '**पृथ्वीमें असंख्य और हजारों रुद्र हैं।**'

इस विषय में निरुक्तकार कहते हैं—

> तासां महाभाग्यादेकैकस्या अपि बहूनि नामधेयानि भवन्ति॥ १॥......तत्र संस्थानैकत्वं संभोगैकत्वं चोपेक्षितव्यम् ।........॥ तन्नैतन्नरराष्ट्रमिव॥ ५॥ (नि० दै० ७।२।५)

"उन देवताओंमें एक-एक देवताका महत्त्व विशेष होनेके कारण एक-एक देवताके अनेक नाम होते हैं।......परंतु उनका स्थानसे और भोगसे एकत्व देखना चाहिए।...... जैसा मनुष्योंका राष्ट्र।"

अर्थात् एकएक देवताके विशेष गुणोंके कारण अनेक नाम हुआ करते हैं। नाम अनेक होनेपर भी भिन्न देवता नहीं होते हैं। अनेक शब्दोंसे एक ही देवताका बोध होता है।...... क्योंकि उनके स्थान और भोगकी एकता देखकर उनकी विविधतामें एकता देखनी चाहिए।...... जैसा राष्ट्रमें रंग-रूप-जातिके कारण अनेक प्रकारके लोग होनेपर भी उन सबमें एक राष्ट्रीयत्व होता है, उसी प्रकार अनेक देवताओंके 'स्थानके और भोगके एकत्व' के कारण उन अनेकोंमें एकत्व मानना उचित है।

इसलिये यद्यपि किसी मंत्रमें '**एक ही रुद्र है**' ऐसा वचन आया अथवा दूसरे किसी मंत्रमें '**हजारों रुद्र हैं**' ऐसा विधान

आगया, तथापि इतनेसे ही उनमें भेद है, ऐसा नहीं सिद्ध होता। यह उक्त निरुक्तवचनोंका तात्पर्य है।

निरुक्तकार और क्या क्या कहते हैं, यह पहिले यहां देखेंगे और पश्चात् अन्य मतोंका विचार करेंगे—

अग्निरपि रुद्र उच्यते ॥ (नि. १०।७।२)

" अग्निको भी रुद्र कहते हैं। " इस प्रकार ' रुद्र ' शब्दका ' अग्नि ' ऐसा अर्थ यहां निरुक्तकारने दिया है।

' रुद्र ' शब्दका ' परमात्मा, परमेश्वर ' ऐसा अर्थ स्पष्टतापूर्वक यद्यपि निरुक्तकारने नहीं दिया, तथापि ' एक ही देवताके अनेक नाम देवताके महत्त्वके कारण हुआ करते हैं। ' ऐसा कहकर सूचित किया है कि परमात्माके अनेक नामोंमें ' रुद्र ' भी एक नाम है; अर्थात् ' रुद्र ' शब्दका परमेश्वरपर अर्थ भी हो सकता है।

स्थानके एकत्वके कारण, भिन्न वर्णन होने पर भी, एकत्वकी कल्पना करनेकी सूचना निरुक्तकार यास्काचार्य पूर्वोक्त वचनमें देते हैं। सर्वव्यापक परमात्मा जैसा पृथ्वीपर है, वैसा ही अन्तरिक्षमें और ऊपर द्युलोकमें भी व्यापक होनेसे उसका स्थान सर्वत्र है; इसलिये सब स्थानके देवताओंके सब शब्द उस एक अद्वितीय महा देवताके वाचक हो सकते हैं। इस तर्कशास्त्रसे हम निरुक्तकारका भाव जान सकते हैं। यही भाव श्वेताश्वतर उपनिषद्में बिलकुल स्पष्ट है। देखिए—

रुद्रके विषयमें उपनिषत्कारोंकी संमति।

श्वेताश्वतर उपनिषद्में ' एक रुद्र है, ' इस विषयमें निम्न मंत्र आया है—

एको ह रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्य इमांल्लोकानीशत ईशनीभिः। प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति संचुकोचान्तकाले संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः ॥ २ ॥ (श्वे. उ. ३।२)

यही मंत्र निरुक्तभाष्यकारने निम्न प्रकार दिया है—

एक एव रुद्रोऽवतस्थे न द्वितीयो रणे निघ्नन् पृतनासु शत्रून् ॥ संसृज्य विश्वा भुवनानि गोप्ता प्रत्यङ् जनान्संचुकोचान्तकाले ॥

(नि. १।१४ दुर्गाचार्यटीका)

एक एव रुद्रो न द्वितीयाय तस्थे ॥ (तै. सं. १।८।६।१)

" एक ही रुद्र है, दूसरा रुद्र नहीं है। वह शत्रुओंको युद्धमें पराजित करता है। सब भुवनोंको उत्पन्न करके, उस सब विश्वका संरक्षण करता है और अन्तकालमें सबका संकोच (प्रलय) करता है। "

ऊपर दिये हुए श्वेताश्वतर मंत्रका अर्थ—" एक ही रुद्र है, वह किसी दूसरेकी सहायताकी अपेक्षा नहीं करता। वह अपनी शक्तियोंसे इन सब लोकोंको स्वाधीन रखता है। और प्रत्येक मनुष्यके अन्दर रहता है। यह संरक्षक प्रभु सब विश्वको उत्पन्न करने और पालन करनेके पश्चात् अन्तकालमें सबको संकुचित करता है। " तथा—

एको रुद्रो न द्वितीयाय तस्मै य इमांल्लोकानीशत ईशनीभिः ॥ (अथर्व-शिर. ५)

रुद्रमेकत्वमाहुः शाश्वतं वै पुराणम् ॥ अथर्व-शिर. ५

यो अग्नौ रुद्रो यो अप्स्वन्तर्य ओषधीर्वीरुध आविवेश। य इमा विश्वा भुवनानि चक्लृपे तस्मै रुद्राय नमोऽस्त्वग्नये ॥ (अथर्व-शिर. ६)

" एक ही रुद्र है। वह किसी दूसरेकी सहायता नहीं चाहता। जो इन सब लोक-लोकान्तरोंको अपनी शक्तियों द्वारा स्वाधीन रखता है। ' रुद्र ' एक ही है ऐसा कहते हैं। वह शाश्वत और प्राचीन है। " " जो रुद्र अग्नि, जल, ओषधी, वनस्पति, आदिमें व्यापक है और जो इन सब भुवनोंको बनाता है, उस एक अद्वितीय तेजस्वी रुद्रके लिये नमस्कार है। " तथा—

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ॥ हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥ ४ ॥ (श्वेता. उ. ३।४)

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ॥ हिरण्यगर्भं पश्यति जायमानं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥ १२ ॥ (श्वेता. उ. ४।१२)

" जो सब देवताओंको जन्म देता है, जो सर्व द्रष्टा और सब विश्वका अधिपति है, जिसने पहिले हिरण्यगर्भ को उत्पन्न किया था, वह एक प्रभु रुद्र हम सबको शुभ बुद्धि देवे। "

इस प्रकार ' **रुद्र** ' शब्दसे ' **एक परमात्मा** ' का बोध उपनिषदोंमें लिया है। इससे सिद्ध है कि ' रुद्र ' शब्द परमात्मवाचक है। यद्यपि इस समयका कोई कोशकार ' **रुद्र** ' शब्दका ' **परमात्मा** ' ऐसा अर्थ नहीं देता, तथापि कृष्णयजुर्वेदीय श्वेताश्वतर उपनिषद्के उक्त वचन द्वारा उस शब्दका परमात्मवाचक अर्थ निःसंदेह सिद्ध है।

रुद्रके एकत्वके विषयमें वेदकी संमति ।

' रुद्र ' के एकत्वके विषयमें निरुक्तकारने दिया हुआ मंत्र पूर्व स्थलमें दिया ही है । वह आजकल किसी संहितामें नहीं मिलता । इसलिये अनुमान है कि वह किसी अन्य शाखाग्रंथमें पठित होगा और निरुक्तकारके समय वह शाखाग्रंथ उपलब्ध होगा । रुद्रके एकत्वके विषयमें वेदमें ये वचन हैं—

स धाता स विधर्ता स वायुर्नभ उच्छ्रितम् । ... ॥३॥
सोऽर्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः । ... ॥४॥
तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव ॥१२॥
एते अस्मिन्देवा एकवृतो भवन्ति ॥१३॥ (अथर्व. १३।४।२)

" वह ही धाता, विधाता, वायु, अर्यमा, वरुण, रुद्र और महादेव है । उसीसे यह आकाश ऊपर हुआ है, यह सब महान् शक्ति उसी में है । वह एक ही है । वह एक सर्वत्र व्यापता है । वह निश्चयसे एक है । सब देव उसमें एक जैसे होते हैं । " इसमें बताया है कि एक सर्वव्यापक सर्वाधार आत्मतत्त्वका नाम भी रुद्र है ।

सर्वव्यापक रुद्रदेव ।

एक ही रुद्र सर्वत्र व्यापक है, इस आशयको निम्न मंत्र प्रकट कर रहा है—

यो अग्नौ रुद्रो यो अप्स्वन्तर्य ओषधीर्वीरुध आविवेश । य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे तस्मै रुद्राय नमोस्त्वग्नये ॥ (अथर्व० ७।९२।१)

" जो एक रुद्र देव अग्नि, जल, औषधि, वनस्पति आदि पदार्थोंमें व्याप्त है और जो सब भुवनोंको (चक्लृपे) बना सकता है, उस (अग्नये रुद्राय) एक तेजस्वी रुद्रदेवके लिये नमन है । "

यह मंत्र बिलकुल स्पष्ट है और इससे रुद्रदेवकी सर्वव्यापकता सिद्ध होती है । जगत् की रचना करनेवाला, सब पदार्थोंमें व्यापक और सबका उपास्य जो देव है, उसीका उल्लेख यहां 'रुद्र' नामसे किया है । रुद्र शब्दके एकवचन होनेके कारण वह एक ही है, ऐसा सिद्ध होता है । तथा सर्वव्यापक जो होता है, वह एक ही हो सकता है । इससे भी उसका एकत्व सिद्ध हो सकता है । रुद्रदेवका ही सब कुछ है, ऐसा अथर्ववेदीय रुद्र-सूक्तके निम्न मंत्रमें कहा है—

तव चतस्रः प्रदिशस्तव द्यौस्तव पृथिवी तवेद-मुग्रोर्वन्तरिक्षम् । तवेदं सर्वमात्मन्वद् यत्प्राणत् पृथिवीमनु ॥ १० ॥ (अथर्व. ११।२।१०)

" हे रुद्र ! इन चार दिशाओंमें तथा द्युलोक, पृथ्वी और इस बडे अन्तरिक्षमें जो कुछ है, वह सब तेरा ही है । जो कुछ (आत्मन्-वत्) आत्मायुक्त अर्थात् प्राण धारण करनेवाला है, जो इस पृथ्वीपर जीवनरूपसे रहता है, वह सब तेरा ही है । "

इस तरह ' रुद्र ' का सामर्थ्य और प्रभुत्व चारों ओर सब दिशा विदिशाओंमें है, ऐसा वर्णन इस मंत्रमें है । इससे सिद्ध होता है कि उस जगन्नियन्ता परमात्माका ही यह ' रुद्र ' नाम है ।

केवल इतने ही प्रमाणोंसे ' परमात्मा ' वाचक ' रुद्र ' शब्द है, ऐसा सिद्ध होगा । तथापि परमात्माके अनेक गुण वेदमंत्रों द्वारा ' रुद्र ' के साथ मिलते हैं वा नहीं, यह हम अब देखते हैं—

जगत् का पिता रुद्र ।

' **पिता** ' का अर्थ ' रक्षक और अपने वीर्य द्वारा जन्म देनेवाला ' ऐसा होता है । ' रुद्र ' सब भुवनोंका पिता है, ऐसा निम्न मंत्रमें कहा है—

भुवनस्य पितरं गीर्भिराभी रुद्रं दिवा वर्धया रुद्रमक्तौ । बृहन्तमृष्वमजरं सुषुम्नमृधग्घुवेम कविनेषितासः ॥ (ऋ० ६।४९।१०)

" (दिवा अक्तौ) दिनमें और रात्रीमें (आभिः गीर्भिः) इन वचनोंके साथ (भुवनस्य पितरं) सब सृष्टिके पिता (रुद्रं रुद्रं) बलवान् रुद्र देवकी (वर्धय) बधाई करो । उनके महत्वकी प्रशंसा करो । उस (बृहन्तं) महान् (ऋष्वं) श्रेष्ठ ज्ञानी तथा (अ-जरं) जीर्ण अथवा क्षीण न होनेवाले और (सु-सुम्नं) अत्यंत उत्तम विचारशील, रुद्रदेवताकी, (कविना इषितासः) बुद्धिवानोंके साथ उन्नतिकी इच्छा करनेवाले हम सब (ऋधक् हुवेम) विशेष प्रकारसे उपासना करेंगे । "

इस मंत्रमें वह ' रुद्र ' देव ' महान्, ज्ञानी, अजर, अमर और सुविचारी ' है, ऐसा कहा है । ये उनके गुण परमात्माके गुणोंके साथ मिलनेवाले ही हैं, तथा ' **भुवनस्य पितरं रुद्रं** ' ये शब्द रुद्रदेवका वास्तविक स्वरूप बताते हैं । ' **सृष्टिका पिता रुद्र है** । ' जगत्का पिता जो अजर, अमर, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् है, वह परमात्माके सिवा दूसरा कौन हो सकता है ? इस प्रकार इस मंत्रका ' रुद्र ' देव उस अद्वितीय परमात्माका ही नाम है, ऐसा दीखता है । इस जगदीशका वर्णन निम्न मंत्रमें देखने योग्य है—

सब सृष्टिका स्वामी रुद्र ।

स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रो बभ्रुः शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः । ईशानादस्य भुवनस्य भूरेर्न वा उ योषद्रुद्रादसुर्यम् ॥ (ऋ० २।३३।९)

*

" (स्थिरेभिः अंगैः) दृढ अवयवोंसे (पुरु-रूपः) अनेक पदार्थोंको आकार देनेवाला (उग्रः) महान् प्रबल और (बभ्रुः) तेजस्वी रुद्र (शुक्रेभिः हिरण्यैः) शुद्ध तेजोंके साथ (पिपिशे) शोभता है। (अस्य भुवनस्य) इस सब सृष्टिके (भूरेः ईशानात् रुद्रात्) महान् स्वामी रुद्रदेवसे (असु-र्यं) उसकी महान् जीवनशक्ति (न वा उ योषत्) कभी पृथक् नहीं होती। "

यह ' रुद्र ' देव जगत्को निर्माण करके सब पदार्थोंको रंग, रूप और आकार देता है। वह अत्यंत तेजस्वी और सर्वशक्तिमान् है। अपने ही विविध तेजोंसे और पवित्रताओंके कारण वह शोभायमान हो रहा है। वह सब जगतका ईश्वर है और उससे उसकी शक्ति कभी पृथक् नहीं होती। यह मंत्र ' रुद्र ' देवताके सब शंकाओंको दूर कर सकता है। ' **भुवनस्य ईशानात् रुद्रात् असुर्यं न योषत्।** ' जगत् के स्वामी रुद्रदेवसे उसकी दिव्य शक्ति कभी पृथक् नहीं होती। इस वाक्यसे रुद्र देवताके वास्तविक मूल स्वरूपका पता लग सकता है।

भुवनस्य पिता रुद्रः ॥ (ऋ० ६।४९।१०)
भुवनस्य ईशानः रुद्रः ॥ (ऋ० २।३३।९)

उक्त दो मंत्रोंके ये दो वाक्य एक ही आशयको बतानेवाले हैं, इसका यदि पाठक विचार करेंगे, तो वेदमंत्रोंके शब्दोंकी विशेष योजनाका पता लग सकता है। यह वाक्य यदृच्छासे नहीं बने हैं, विशेष हेतुपूर्वक ही यह शब्दप्रयोग हुआ है, ऐसा प्रतीत होता है। इससे अगला मंत्र यहां अब देखिए—

सर्वशक्तिमान् रुद्र।

अर्हन् बिभर्षि सायकानि धन्वार्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपम्। अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति ॥ (ऋ० २।३३।१०)

" (अर्हन्) योग्य होनेके कारण रुद्र सब शस्त्रास्त्रोंको धारण करता है। रुद्र योग्य होनेके कारण सब विश्वको रूप और तेज देता है। योग्य होनेके कारण ही इस (अभ्वं विश्वं) महान् विश्व पर (दयसे) दया करके उन सबका संरक्षण करता है। हे रुद्र! (त्वत्) तेरेसे कोई भी अधिक (ओजीयः) बलवान् (न वा अस्ति) नहीं है। "

इस मंत्रमें '**त्वत् ओजीयो न वा अस्ति।**' तेरेसे अधिक शक्तिशाली कोई भी नहीं है, अर्थात् तू ही सबसे अधिक बलवान् है। इससे सर्वशक्तिमान् रुद्रदेव परमात्मा ही है, ऐसा दिखाई दे रहा है। अब निम्न लिखित मंत्र देखिए। इसमें रुद्रदेव सब जनताका राजा है, ऐसा कहा है—

गुहा-निवासी रुद्र।

स्तुहि श्रुतं गर्तसदं जनानां राजानं भीममुपहत्नुमुग्रम्। मृडा जरित्रे रुद्र स्तवानो अन्यमस्मत्ते नि वपन्तु सेन्यम् ॥ (अथर्व० १८।१।४०)

" (उग्रं भीमं) उग्र और शक्तिमान्, (उप-हत्नुं) प्रलयकर्ता, (श्रुतं) ज्ञानी, (गर्त-सदं) सबके अन्दर रहनेवाला, (जनानां राजानं) सब लोकोंका राजा रुद्र है, उसकी (स्तुहि) स्तुति करो। हे रुद्र! तेरी (स्तवानः) प्रशंसा होनेपर (जरित्रे) उपासकको तू (मृड) सुख दे। (ते सेन्यं) तेरी शक्ति (अस्मत् अन्यं) हम सबको बचाकर दूसरे दुष्टका (निवपन्तु) नाश करे। "

इस मंत्रमें '**जनानां राजानं रुद्रं**' ये शब्द विशेष महत्त्व रखते हैं। सब लोगोंका एक राजा रुद्र है।

गर्त-सद् } = निहितं गुहा सत्। (यजु० ३२।८)
गुहाऽऽहितः } = परमं गुहा यत्। (अथर्व० २।१।१;२)
गुहा-चरः
गुहा-शयः } = गुह्यं ब्रह्म।

उक्त शब्दोंके साथ ' **गर्त-सद्** ' शब्द देखने और विचार करनेसे इस शब्दके गूढ आशयका पता लग सकता है। ' **गुहाऽऽहित** ' और ' **गर्त-सद्** ' ये दोनों शब्द एक ही अर्थ बता रहे हैं। ' गर्त ' शब्दका ' गुहा ' ऐसा अर्थ ऊपर दिया ही है। अस्तु। इस मंत्रसे भी ' रुद्र ' का पूर्वोक्त भाव ही दृढ हो रहा है। तात्पर्य ' रुद्र ' शब्दका ' सर्वव्यापक परमात्मा ' ऐसा एक अर्थ निःसंदेह है। इस मंत्रका ऋग्वेदका पाठ यहां देखिए—

स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानं मृगं न भीममुपहत्नुमुग्रम्। मृळा जरित्रे रुद्र स्तवानोऽन्यं ते अस्मन्नि वपन्तु सेनाः ॥ (ऋ० २।३३।११)

इसका अर्थ स्पष्ट है।

अपने अंतःकरणमें रुद्रकी खोज।

अन्तरिच्छन्ति तं जने रुद्रं परो मनीषया। गृभ्णन्ति जिह्वया ससम् ॥ (ऋ० ८।७२।३)

" मुमुक्षुजन (तं रुद्रं) उसी रुद्रको (जने परः अन्तः) मनुष्यके अत्यंत बीचके अन्तःकरणमें (मनीषया) बुद्धि द्वारा जानना (इच्छन्ति) चाहते हैं। (जिह्वया) जिह्वासे (ससं) फलको (गृभ्णन्ति) लेते हैं। "

मुमुक्षुजन जिह्वासे सात्विक पदार्थोंको लेते हैं। 'सस' शब्दका अर्थ 'फल, धान्य, अनाज, शाकभाजी, ओषधि, वनस्पति' इतना ही है। जिह्वासे जिस अन्नका ग्रहण करना उचित है, उसका इस मंत्रने यहां उपदेश किया है। फल, धान्य, अनाज, शाकभाजी आदि पदार्थ ही खाने चाहिए। इस प्रकारका सात्विक आहार करनेवाले मुमुक्षु लोग उस रुद्र देवको अर्थात् परमात्माको मनुष्यके अंतःकरणके अत्यन्त गहरे स्थानमें अपनी सात्विक विचारशक्तिके द्वारा ढूंढ ढूंढ कर देखनेकी इच्छा करते हैं।

अनेक रुद्रोंमें व्यापक 'एक रुद्र।'

पूर्वोक्त प्रमाणोंसे 'रुद्र' एक है और वह सर्वत्र व्यापक है, यह बात सिद्ध हो चुकी। अब अनेक रुद्रोंका वर्णन, जो वेदमें आता है, उसका विचार करना चाहिए।

रुद्रं रुद्रेषु रुद्रियं हवामहे। (ऋ. १०।६४।८)

"(रुद्रेषु) अनेक रुद्रोंमें रहनेवाले (रुद्रियं रुद्रं) प्रशंसा करने योग्य एक रुद्रकी (हवामहे) हम सब पूजा करते हैं।"

एक रुद्रदेव अनेक रुद्रोंमें रहता है, अर्थात् वह एक रुद्र सबमें व्यापक है और अनेक रुद्र व्याप्य हैं। अनेक रुद्र अणु हैं और यह एक रुद्र महान् है। इस एक रुद्रके द्वारा अनेक रुद्र प्रेरित होते हैं, अर्थात् अनेक रुद्र प्रेर्य हैं और यह एक रुद्र सबका प्रेरक है। तथा—

(१) शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः। (ऋ. ७।३५।६)

(२) रुद्रो रुद्रेभिर्देवो मृळयाति नः। (ऋ.१०।६६।३)

(३) रुद्रं रुद्रेभिरावहा बृहन्तम्। (ऋ. ७।१०।४)

"(१) अनेक रुद्रोंके साथ एक रुद्र हम सबका कल्याण करे। (२) अनेक रुद्रोंके साथ एक रुद्रदेव हम सबको सुख देवे। (३) अनेक रुद्रोंके साथ रहनेवाले एक महान् रुद्रकी पूजा करो।" ये सब मंत्र उक्त भाव बता रहे हैं। अनेक छोटे रुद्रोंमें एक महान् रुद्र की प्रेरणा होती है, इस आशयका ध्वनि निम्न मंत्रमें देखने योग्य है—

तदिद्रुद्रस्य चेतति यह्वं प्रत्नेषु धामसु।
मनो यत्रा वि तद्दधुर्विचेतसः॥ (ऋ० ८।१३।२०)

"(रुद्रस्य तत् यह्वं) रुद्र देवकी वह एक महान् प्रेरक शक्ति (प्रत्नेषु धामसु) अनेक सनातन स्थानोंमें (इत् चेतति) निश्चयसे चेतना देती है। (यत्र) जिस शक्तिमें (वि-चेतसः) विशेष ज्ञानी लोक (तत् मनः) अपना वह मन (वि-दधुः) विशेष प्रकार धारण करते हैं।"

इस मंत्रमें 'रुद्र' की 'यह्व' शक्तिका वर्णन है। वह शक्ति सब को सतत चेतना दे रही है।

एक रुद्रके पुत्र अनेक रुद्र हैं।

रुद्रस्य ये मीळ्हुषः सन्ति पुत्रा यांश्चो नु दाधृविर्भरध्यै। विदे हि माता महो मही षा सेत्पृश्निः सुभ्वे गर्भमाधात्॥ ३॥ (ऋ० ६।६६।३)

"(मीळ्हुषः रुद्रस्य) एक दानशूर रुद्रदेवके (ये पुत्राः) जो अनेक रुद्र संज्ञकपुत्र हैं, (यान् च उ नु) और जिनका निश्चयसे (भरध्यै) भरण-पोषण, पालन करनेकी सब शक्ति वह एक अद्वितीय रुद्र (दाधृविः) धारण करता है। (महः) इस महान् रुद्रकी शक्तिको (सा मही माता विदे) वह मूल प्रकृतिरूपी बडी माता जानती है, अथवा प्राप्त करती है और (सु-भ्वे) जीवोंकी उत्तम अवस्था होनेके लिये (सा पृश्निः) वह विविध रंगरूपवाली माता (इत्) निश्चयसे (गर्भं आधात्) जीवोंको गर्भमें धारण करती है।"

इस मंत्रमें अनेक रुद्र उस एक रुद्रके पुत्र हैं, ऐसा स्पष्ट कहा है। इस लिये परमपिता परमात्मा ही रुद्र है और सब जीव उसके पुत्र हैं, ऐसा ही इसका अर्थ मानना उचित है।

अनंत प्राणी अनेक रुद्र हैं।

ये अनंत रुद्र जीव हैं, ये प्राणी अर्थात् जीवन धारण करनेवाले हैं। ये मर्य, मर्त्य हैं। इनका शरीर धारण होनेके कारण जन्म होता है और मृत्यु भी होती है। यद्यपि जन्ममरण शरीरका धर्म है, तथापि इन रुद्रोंकी शरीरके साथ स्थिति होनेके कारण, शरीरके साथ इनका जन्म और मरण हुआ, ऐसा कहा जाता है। अर्थात् शरीरके धर्मोंका इनके ऊपर आरोपण होता है। ये 'मर्त्य' हैं, ऐसा निम्न मंत्रमें कहा है—

ते जज्ञिरे दिव ऋष्वास उक्षणो रुद्रस्य मर्या असुरा अरेपसः। पावकासः शुचयः सूर्या इव सत्वानो न द्रप्सिनो घोरवर्पसः॥ (ऋ० १।६४।२)

"(ते) वे अनंत रुद्र (ऋष्वासः) उच्च (दिवः उक्षाणः) दिव्य बलसे युक्त (असु-राः) जीवनशक्तिसे प्रकाशनेवाले, (अ-रेपसः) निष्कलंक और (मर्याः) मर्त्य हैं। वे उस (रुद्रस्य जज्ञिरे) एक रुद्रसे प्रकट होते हैं। वे (पावकासः)

अग्निके समान पवित्र (शुचयः) तेजस्वी और शुद्ध (सूर्ये इव सत्वानः) सूर्यके समान सत्ववाले और (द्रप्सिनः न) वर्षा करनेवाले मेघोंके समान (घोरवर्पसः) सुंदर और विशाल रूप धारण करनेवाले हैं।"

इस मंत्रमें रुद्रके सैनिकोंके गुणवर्णन बताये हैं। इसमें 'मर्त्य' शब्द आया है। प्राणी, शरीरधारी, मरणधर्मवाला, ऐसा इस शब्दका अर्थ है। जिन अनंत रुद्रोंमें एक महान् रुद्र व्यापक हो रहा है वे अनंत रुद्र 'अनंत मर्त्य' प्राणी हैं; यह भाव इस मंत्रसे प्रकट हो रहा है। 'जनानां राजा रुद्रः' ऐसा एक वचन पूर्व स्थलमें आया है। उसके साथ इस मंत्रका आशय 'मर्त्यानां पिता रुद्रः' देखने योग्य है। एक ही भाव किस प्रकार भिन्न भिन्न प्रकारसे बताया गया है, यह यहां देखने योग्य है। इसी विषयका स्पष्टीकरण करनेवाले निम्न लिखित मंत्र यहां देखिए—

क ईं व्यक्ता नरः सनीळा रुद्रस्य मर्या अधा
स्वश्वाः ॥ १ ॥ न किर्ह्येषां जनूंषि वेद ते अंग
विद्रे मिथो जनित्रम् ॥ २ ॥ (ऋ० ७।५६)

"(अध) अजी ! (स्वश्वाः = सु-अश्वाः) उत्तम भोग भोगनेवाले, (सनीळाः) एक आश्रयसे रहनेवाले और (व्यक्ताः नरः) अलग अलग दीखनेवाले पुरुष (के) कौन हैं ? वे (रुद्रस्य मर्याः) रुद्रके मर्त्य पुत्र हैं। (एषां जनूंषि) इनके जन्मका वृत्तांत (न किः वेद) कोई भी नहीं जानता ? हे (अंग) प्रिय ! (ते मिथः) वेही परस्पर एक दूसरेका (जनित्रं) जन्म (विद्रे) जानते हैं।"

इस मंत्रमें 'रुद्रस्य मर्याः' रुद्रके मर्त्य पुत्रोंका वर्णन किया गया है। इनमें अलग अलग व्यक्तित्व अर्थात् व्यक्तित्व, पृथक्त्व, इकाई है, इस लिये इनको 'व्यक्त' अर्थात् 'व्यक्ति-भाव' से युक्त कहा है। प्रकृति और पुरुष ऐसे जो दो भेद हैं, उनमें ये 'पुरुष' हैं, इसलिये मंत्रमें इनको 'नर' कहा है। एक ईश्वरके आश्रयसे ये रहते हैं, इसलिये इन सबको 'स-नीळाः' (स-नीडाः) कहा है। यहां—

यत्र विश्वं भवत्येक-नीडम्। (यजु० ३२।८)
यत्र विश्वं भवत्येक-रूपम्। (अथर्व० २।१।१)

इन मंत्रोंमें 'एक-नीड' और 'एक-रूप' ये शब्द देखने योग्य हैं। 'स-नीळ, स-नीड, एक-नीड, एक-रूप' ये सब शब्द 'सबका एक ही आश्रयस्थान है,' ऐसा बता रहे हैं।

इस विचारसे पता लग जायगा कि (१) अनंत रुद्रोंका जन्म, (२) उनको पुत्र कहना, (३) उनकी माताका वर्णन, (४) उनके गर्भधारणका वर्णन यहां है।

रुद्रके पुत्र मरुत् हैं। मरुतोंके विषयमें श्री सायनाचार्य लिखते हैं कि 'मनुष्यरूपा वा मरुतः। पूर्वं मनुष्याः संतः पश्चात् सुकृतविशेषेण ह्यमरा आसन्।' मरुत् पहिले मनुष्य ही होते हैं, परंतु उत्तम प्रशस्त कर्म करनेके कारण वो अमर बनते हैं (ऋ० सायनभाष्य, मं. १०, सू. ७७, मं. २) इस प्रकार मरुतोंके मनुष्यरूप होनेमें शंका ही नहीं है। मनुष्योंके अतिरिक्त भी मरुतोंका अर्थ है, उसका विचार मरुद्देवताके ग्रंथमें किया गया है। अब मरुतोंके मनुष्य होनेके विषयमें वेदका प्रमाण देखिए—

अग्निश्रियो मरुतो विश्वकृष्टय आत्वेषमुग्रमव
ईमहे वयम्। ते स्वानिनो रुद्रिया वर्षनिर्णिजः
सिंहा न हेषक्रतवः सुदानवः ॥ (ऋ. ३।२६।५)

"(ते रुद्रियाः मरुतः) वे रुद्रके पुत्र मरुत् (अग्नि-श्रियः) अग्निके समान तेजस्वी, (स्वानिनः) उत्तम शब्द बोलनेवाले, (सिंहा न हेषक्रतवः) सिंहके समान गंभीर शब्द करनेवाले, (वर्ष-निर्णिजः) वृष्टिके द्वारा शुद्ध होनेवाले, (सु-दानवः) उत्तम दान करनेवाले, (विश्वकृष्टयः) सर्व-मनुष्य हैं। (वयं) हम उन (त्वेषं उग्रं अवः) तेजस्वी शौर्ययुक्त संरक्षण उनसे (आ ईमहे) प्राप्त करते हैं।"

इस मंत्रमें 'विश्व-कृष्टि' शब्द अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। 'कृष्टि'—शब्दका अर्थ—(१) मनुष्यमात्र, मानवजाति है। (२) देशनिवासी राष्ट्रीय जनता। 'विश्व-कृष्टिः'= (विश्व+ जन=सर्व+जन) सब मनुष्य, मनुष्यमात्र, मनुष्यजाति।

यहां कई शंका करेंगे कि मानवजातिके विषयका उल्लेख वेदमें कहां है ? वैदिक धर्म 'वैयक्तिक' होनेके कारण उसमें 'सार्व-जनिक भाव' नहीं होगा। इस शंकाका उत्तर देनेके लिये यहां सार्वजनिक भाव बतानेवाले कुछ वैदिक शब्दोंका उल्लेख करना चाहिए। देखिए निम्न शब्द—

(१) विश्व-कृष्टिः = (सर्व-मनुष्य) = मानवजाति।
(२) विश्व-चर्षणिः = (सर्व-जन) = सब लोक, मनुष्य, मनुष्यमात्र, मानवजाति।
(३) विश्व-जनः = (सर्व-जन) = मानवजाति।
(४) विश्व-मनुष्यः } = (सर्व-मनुष्य) = मनुष्यमात्र।
(५) विश्व-मानुषः }

(६) विश्वा-नरः= (सर्व-नर)= सब मनुष्य।

(७) पंच-जनाः= ज्ञानी, शूर, व्यापारी, कारीगर और साधारण लोक। ये पांच प्रकारके लोक मिलकर सब जनता होती है।

इस तरह सार्वजनिक भावोंकी विस्तारपूर्वक कल्पना वेदमें ही स्पष्ट है। वैदिक धर्म '**सार्वजनिक भावका धर्म**' ही है।

प्रस्तुत मंत्रमें '**विश्व-कृष्टि**' शब्द 'मानव-जाति' का भाव बता रहा है। मरुतोंका अथवा रुद्र-पुत्रोंका अर्थात् छोटे छोटे असंख्य रुद्रोंका स्वरूप 'विश्व-कृष्टि' शब्दने बताया है। इस प्रकार अनेक रुद्र ये अनंत मानवप्राणी हैं, यह बात सिद्ध हो गई। 'मर्य' शब्दसे साधारण मर्त्य अर्थात् मरणधर्मवाले प्राणिमात्र, ऐसा भी भाव निकल सकता है। इसका निश्चय अब करेंगे।

अनेक रुद्रोंकी संख्या।

इस अनंत रुद्रोंकी संख्याके विषयमें वाजसनेय यजुर्वेदमें निम्न लिखित मंत्र देखने योग्य है—

असंख्याताः सहस्राणि ये रुद्रा अधि भूम्याम्।
(यजु. १६।५४)

"असंख्यात हजार (ये रुद्राः) जो रुद्र (भूम्यां अधि) पृथ्वी पर हैं।" अर्थात् ये अनेक रुद्र अनंत हजार इस पृथ्वीपर हैं। प्राणियोंकी संख्या किसी समयमें भी पृथ्वीपर निश्चित नहीं कही जा सकती। क्योंकि प्राणियोंकी संख्या अनेक कारणोंसे बढ भी सकती है और घट भी सकती है। इस हेतुसे यहां निश्चित संख्या नहीं कही, परंतु 'अनंत हजार' ऐसा ही कहा है। इससे वेदके शब्दोंका अद्भुत महत्त्व ज्ञात हो सकता है।

यजुर्वेद वाजसनेय संहिता अ० १६ में रुद्रोंके कई नाम लिखे हैं। यह अध्याय काण्व संहितामें १७ वां है। और तैत्तिरीय संहितामें यही रुद्राध्याय ४।५।१।१ में है। अब इन रुद्रोंका वर्गीकरण करना है। परंतु इससे पूर्व 'रुद्र' शब्दका भाष्यकार आचार्योंका किया हुआ अर्थ अवश्य देखना चाहिए। क्योंकि उन अर्थोंको देख कर ही हम रुद्रोंके वर्ग बना सकते हैं।

रुद्रके विषयमें श्रीसायणाचार्यजीका मत।

श्री सायणाचार्यजीने चारों वेद और सब मुख्य ब्राह्मणोंपर भाष्य किया है। इनका भाष्य विशेषतया याज्ञिक पद्धतिके अनुसार है। इस लिये इनका भाष्य देखनेसे याज्ञिक संप्रदायवालोंका मत ज्ञात हो सकता है। अब देखिए श्री सायणाचार्यजी 'रुद्र' के विषयमें क्या कहते हैं—

ऋग्वेद-भाष्य।

१. रुद्रस्य कालात्मकस्य परमेश्वरस्य। (ऋ. ६।२८।७)
२. रुद्राय क्रूराय अग्नये। (ऋ. १।२७।१०)
३. रुत् दुःखं तद्धेतुभूतं पापं वा। तस्य द्रावयितारौ रुद्रौ। संग्रामे भयंकरं शब्दयन्तौ वा॥ (ऋ. १।१५८।१)
४. रुद्राणां......प्राणरूपेण वर्तमानानां मरुतां। यद्वा। रोदयितॄणां प्राणानां। प्राणा हि शरीरान्निर्गवा-सन्तो बंधुजनान् रोदयन्ति॥ (ऋ. १।१०१।७)
५. रुद्राणां रोदनकारिणां शूरभटानां वर्तनिर्मार्गो घातीः रूपो ययोस्तौ रुद्रवर्तनी। (ऋ. १।३।३)
६. रोदयन्ति शत्रूनिति रुद्राः। (ऋ. ३।३२।३)
७. रुद्रौ संग्रामे रुदन्तौ। (ऋ. ८।२२।१५)
८. हे रुद्र! ज्वरादिरोगस्य प्रेक्षणेन संहर्तर्देव। (ऋ. १।११४।११)
९. रुद्रियं सुखं। (ऋ. २।१।१३)
१०. रुद्रियं रुद्रसंबंधि भेषजं। (ऋ. १।४३।२)

अथर्ववेद-भाष्य।

१. रोदयति सर्वं अंतकाले इति रुद्रः संहर्ता देवः। (अथर्व. १।१९।३)
२. रौति शब्दायते तारकं ब्रह्म उपदिशतीति रुद्रः। तथा च जाबालश्रुतिः। 'अत्र हि जन्तोः प्राणे-षूत्क्रामत्सु रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे॥ (जाबा. उ. १) (अथर्व. २।२७।६)
३. तस्मै जगत्स्रष्ट्रे सर्वं जगदनुप्रविष्टाय रुद्राय। (अथर्व. ७।९२।१)
४. रुत् दुःखं दुःखहेतुर्वा तस्य द्रावको देवो रुद्रः परमेश्वरः। (अथर्व. ११।२।३)
५. सर्वप्राणिनो मामनिश्वा विनश्यन्ति इति स्वयं रौति रुद्रः। (अथर्व. १८।१।४०)
६. स्वसेवकानां दुःखस्य द्रावकत्वं (रुद्रस्य)। (अथर्व. १८।१।४०)
७. महानुभावं रुद्रं। (अथर्व. १८।१।४०)
८. रुद्रस्य हिंसकस्य देवस्य। (अथर्व. ६।५९।३)

९. रुद्रस्य ज्वराभिमानिदेवस्य हेतिः आयुधं । (अथर्व. ४।२१।७)

१०. रुद्रः रोदयिता शूलाभिमानी देवः । (अथर्व. ६।९०।१)

११. रोदयति उपतापेन अश्रूणि मोचयति इति रुद्रो ज्वराभिमानी देवः । (अथर्व. ६।२०।२)

१२. रोदयति शत्रूनिति रुद्रः । (अथर्व. ७।९२।१)

१३. रुद्रा रोदकाः । (अथर्व. १९।९।१०)

१४. रुद्राः रोदयितारः अन्तरिक्षस्थानीया देवाः । (अथर्व. १९।११।४)

१५. रुद्रः पशूनां अभिमन्ता पीडाकरो देवः । (अथर्व. ६।१४१।१)

ये ' रुद्र ' शब्दके श्री सायणाचार्यजीके किये हुए अर्थ हैं । अब यजुर्वेदके भाष्यमें श्री उवटाचार्य और श्री महीधराचार्य क्या कहते हैं, देखिए—

श्री उवटाचार्यजीका ' रुद्र ' विषयक मत ।

१. रुद्रैः स्तोतृभिः । (यजु. भाष्य, ३८।१६)

२. रुद्रवर्तनी रुणवर्तनी । (य. १९।८२)

३. रुद्रौ शत्रूणां रोदयितारौ । (य. २०।८१)

४. रुद्रैः धीरैः । (य. ११।५५)

श्री महीधराचार्यजीका ' रुद्र ' संबंधी मत ।

१. रुद्रस्य शिवस्य । (वा. यजु. भाष्य १६।५०)

२. रुद्राय शंकराय । (य. १६।४८)

३. रुत् दुःखं द्रावयति रुद्रः ।
रवण रुत् ज्ञानं राति ददाति ।
पापिनो नरान् दुःखभोगेन रोदयति । (य. १६।१)

४. रुद्रस्य क्रूरदेवस्य । (य. ११।१५)

५. रुत् दुःखं द्रावयति नाशयति रुद्रः । (य. १६।२८)

६. रुद्रो दुःखनाशकः । (य. १६।३९)

७. रोदयति विरोधिनां शतं इति रुद्रः । (य. ३।५७)

८. रुद्रौ शत्रूणां रोदयितारौ । (य. २०।८१)

९. रुद्रैः धीरैः बुद्धिमद्भिः । (य. ११।५५)

१०. रुद्रैः स्तोतृभिः । (य. ३८।१६)

११. रुद्रवर्तनी रुणवर्तनी भिषजौ अश्विनौ । (य. १९।८२)

१२. कदन्नभक्षणे चौर्ये वा प्रवर्त्य, रोगमुत्पाद्य, जनान् घ्नन्ति तेभ्यः पृथ्वीस्थेभ्यो अन्नायुधेभ्यो रुद्रेभ्यः ॥ (य. १६।६६)

१३. कुवातेनान्नं विनाश्य वातरोगं वा उत्पाद्य जनान् घ्नन्ति । (य. १६।६५)

श्री स्वामी दयानंद सरस्वतीजीका रुद्रके विषयमें मत ।

ऋग्वेद-भाष्य ।

१. रुद्राय परमेश्वराय जीवाय वा ॥ ...... ॥ रुद्रशब्देन त्रयोऽर्था गृह्यन्ते । परमेश्वरो जीवो वायुश्चेति । तत्र परमेश्वरः सर्वज्ञतया येन यादृशं पापकर्म कृतं तत्फलदानेन रोदयितास्ति । जीवः खलु यदा मरणसमये शरीरं जहाति पापफलं च भुंक्ते तदा स्वयं रोदिति । वायुश्च शूलादिपीडा कर्मणा कर्मनिमित्तः सन् रोदयितास्ति । अत एते रुद्रा विज्ञेयाः । (ऋग्वेद. १।४३।१)

२. रुद्रः दुःखनिवारकः । (ऋ. २।३३।७)

३. रुद्रः दुष्टानां भयंकरः । (ऋ. ५।४६।२)

४. रुद्रः दुष्टदण्डकः । (ऋ. ५।५१।१३)

५. रुद्रः सर्वरोगदोषनिवारकः । (ऋ. २।३३।२)

६. रुद्रस्य रोगाणां द्रावकस्य निःसारकस्य । (ऋ. ७.५६।१)

७. रुद्रः रोगाणां प्रलयकृत् । (ऋ. २।३३।३)

८. रुद्रः कुपथ्यकारिणां रोदयिता । (ऋ. २।३३।४)

९. रुद्रस्य प्राणस्य वर्तनिः मार्गः ययोस्तौ रुद्रवर्तनी । (ऋ. १।३।३)

१०. रुद्रं शत्रुरोद्धारं । (ऋ. १।११४।४)

११. रुद्रस्य शत्रूणां रोदयितुर्महावीरस्य । (ऋ. १।८५)

१२. रुद्राणां प्राणानां दुष्टान् श्रेष्ठांश्च रोदयतां । (ऋ. १०।१०।१७)

१३. रुद्र ! रुतः सत्योपदेशान् राति ददाति तत्संबुद्धौ । (ऋ. १।११४।३)

१४. रुद्रः अधीतविद्यः । (ऋ. १।११४।११)

१५. रुद्राय सभाध्यक्षाय । (ऋ. १।११४।६)

१६. रुद्रः न्यायाधीशः । (ऋ. १।११४।२)

१७. रुद्रियं रुद्रस्येदं कर्म । (ऋ. १।४३.२)

यजुर्वेद-भाष्य।

१. रुद्रः परमेश्वरः। चतुश्चत्वारिंशद्वर्षकृतब्रह्मचर्यो विद्वान् वा। (यजु. ४।२०)
२. रोदयत्यन्यायकारिणो जनान् स रुद्रः। (य. ३।५७)
३. दुष्टानां रोदयिता विद्वान् रुद्रः। (य. ४।२१)
४. रुद्रः शत्रूणां रोदयिता शूरवीरः। (य. ९।३९)
५. रुद्रस्य शत्रुरोदकस्य स्वसेनापतेः। (य. ११।१५)
६. रुद्रः जीव। (य. ८।५८)
७. रुद्राः एकादशप्राणाः। (य.२।५)
८. रुद्राः प्राणरूपा वायवः। (य. ११।५४)
९. रुद्रा बलवंतो वायवः। (य. १५।११)
१०. रुद्राः सजीवा अजीवाः प्राणादयो वायवः। (य. १६।५४)
११. रुद्रा मध्यस्थाः। (य. १२।४४)
१२. रुद्रा रुद्रसंज्ञका विद्वांसः। (य ११।५८)
१३. रुद्रः राजवैद्यः। (य. १६।४९)
१४. रुद्रस्य सभेशस्य। (१६।५०)

इस तरह भाष्य में अर्थ हैं।

यजु० अ० १६ में रुद्रवाचक अनेक पद आये हैं। इनकी संख्या लगभग २४० है।

(१) विश्व-रूप, (२) विद्युत्, (३) वायु, (४) वृक्ष, (५) गृत्स, (६) मंत्रिन्, (७) भिषक्, (८) सभा, (९) सभापति, (१०) स्थ-पति, (११) सेनानी, (१२) सेना, (१३) इषु-कृत्, (१४) रथी, (१५) वणिज्, (१६) किरिक, (१७) तक्षन्, (१८) परि-चर, (१९) स्तेन, (२०) प्रतरण, (२१) श्वन्, (२२) तल्प्य।

ये सब रुद्र ही हैं- (१) सर्वव्यापक ईश्वर, (२) बिजुली, (३) वायु, (४) वृक्ष, (५) विद्वान्, (६) दिवाण, (७) वैद्य, (८) सभा, (९) सभापति, (१०) राजा, (११) सेनापति, (१२) सेना, (१३) शस्त्र बनानेवाला, (१४) वीर, (१५) बनिया, (१६) किसान, (१७) बढई, (१८) नौकर, (१९) चोर, (२०) धोखेबाज, (२१) कुत्ता, (२२) खटमल; इन सबको यहां रुद्र ही कहा है, इस सबमें 'रुद्रत्व' हैं यह निश्चित है।

'**रोदयति इति रुद्रः**' (जो दूसरोंको रुलाता है, वह रुद्र है) यह रुद्र शब्दका एक अर्थ है। दूसरोंको रुलानेका धर्म रुद्रमें है, यह बात इस अर्थसे सिद्ध होती है। रुलानेका तात्पर्य कष्ट अथवा दुःख देना है। देखिए—

(१) रोदयति शत्रून् इति रुद्रः महा-वीरः।
(२) रोदयति दुष्टान् इति रुद्रः न्यायाधीशः।
(३) रोदयति धनिकान् इति रुद्रः चोरः।
(४) रोदयति निद्राक्रान्तान् इति रुद्रः तल्प्य-कीटः।

(१) शत्रुओंको रुलानेके कारण शूरको रुद्र कहते हैं। (२) दुष्टोंको रुलानेके कारण न्यायाधीशको रुद्र कहते हैं। (३) धनिकोंको रुलानेके कारण चोरको रुद्र कहते हैं। (४) सोनेवालोंको रुलानेके कारण खटमलको रुद्र कहते हैं।

उक्त चार विग्रहोंमें क्रमशः '**(१) शत्रून्, (२) दुष्टान्, (३) धनिकान्, (४) निद्राक्रान्तान्।**' इन चार पदोंका अध्याहार अर्थात् कल्पना की है। और उस कल्पनाके अनुसार 'रुद्र' शब्दके चार भिन्न भिन्न अर्थ किये हैं। जहां जैसा पूर्वापर संबंध होगा, वहां वैसा अर्थ लेना उचित है।

उक्त चार अर्थोंमें '**रुलानेका धर्म**' सबमें समान है। यही यहां '**रुद्रत्व**' है। '**रोदयितृत्वं रुद्रत्वं**' रुलानेका धर्म ही रुद्रपन है, ऐसा हम यहां कह सकते हैं। जहां जहां 'रुलानेका गुण' होगा, वहां वहां रुद्रत्व होगा, यह इस विवरण का तात्पर्य है।

इस प्रकार अन्य स्थानोंमें भी समझना चाहिए। यह बात स्पष्ट है कि इस अर्थमें 'स्वयं दुःखका अनुभव करना रुद्रपनका लक्षण' है। दूसरोंको रुलाना अथवा स्वयं रोना ये दोनों रुद्रके लक्षण हैं। इन दोनों अर्थोंको लेनेसे पूर्वोक्त रुद्रवाचक अनेक शब्दोंमेंसे कई शब्दोंका मूल आशय खुल जाता है और इस बातका निश्चय होता है, कि इनको रुद्र क्यों कहा गया है।

'**रुद्र**' के इतने ही लक्षण नहीं हैं। '**रुत् ज्ञानं तत् ददाति इति रुद्रः।**' जो ज्ञानको उपदेश द्वारा देता है, वह रुद्र होता है। इस अर्थको लेनेसे '**ज्ञानी, उपदेशक, गुरु, व्याख्यानदाता**' ये रुद्र हैं, ऐसा प्रतीत होगा। पूर्वोक्त शब्दोंमें 'अधिवक्ता' शब्द इसी अर्थका प्रकाश करनेवाला है। 'श्रुत, गृत्स, मंत्रिन्' ये भी शब्द इसी भावको बतानेवाले हैं। '**ज्ञानदातृत्वं रुद्रत्वं**' दूसरोंको उपदेश करनेका रुद्रका धर्म है, ऐसा इस अर्थसे सिद्ध होता है।

'**रुद् दुःखं द्रावयति विनाशयति इति रुद्रः।**' रुत् अर्थात् दुःख, उसका जो नाश करता है, वह रुद्र कहलाता है। 'क्षत्र' शब्दका अर्थ 'क्षतात् त्रायते' जो दुःखसे बचाता है,

ऐसा होता है। यह रुद्रका एक अर्थ है।

रुद्+द्र= दुःखको दूर करनेवाला ।

क्षत्+त्र= दुःखसे बचानेवाला।

ये दोनों शब्द बिलकुल समान अर्थवाले हैं। इसलिये क्षत्रिय-वाचक शब्द रुद्रके लिये आये हैं। इस बातको पूर्वोक्त वीरवर्गमें पाठक देख सकते हैं।

'रुद् रोगं राति ददाति इति रुद्रः रोगोत्पादकः।' जो रोगोंको उत्पन्न करता है, उसको रुद्र कहते हैं। बुरी हवा, सडा हुआ जल, दुर्गन्धयुक्त भूमि, कुपथ्य आदि सब इस अर्थके कारण रुद्र होते हैं। 'रुत्' शब्दके दुःख और रोग ऐसे अर्थ कोशोंमें हैं। रोग उत्पन्न करना यह रुद्रका कार्य कई मंत्रोंमें वर्णन किया है, *उनमेंसे एक मंत्र यहां देखिए—*

येऽन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान्।

(यजु. अ. १६।६२)

'(ये) जो रुद्र (अन्नेषु) अन्नोंमें और (पात्रेषु) वर्तनोंमें प्रविष्ट होकर (पिबतः जनान्) जल पीनेवाले मनुष्योंको (विविध्यन्ति) अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न करते हैं।' यह रुद्रका वर्णन विशेष प्रकारसे देखने योग्य है। इसी मंत्रके भाष्य देखिए—

श्री सायणाचार्य— ये रुद्रा अन्नेषु भुज्यमानेषु स्थिताः सन्तो जनान् विविध्यन्ति, विशेषेण ताडयन्ति। धातुवैषम्यं कृत्वा रोगान् उत्पादयन्ति इत्यर्थः। तथा पात्रेषु पात्रस्थक्षीरोदकादिषु स्थिताः सन्तः क्षीरादिपानं कुर्वतो जनान् विविध्यन्ति। अन्नोदकभोक्तारो व्याधिभिः पीडनीया इति भावः॥ (काण्वयजु. १७।७।१६)

श्री महीधराचार्य— (पूर्ववत्)

श्री उवटाचार्य– ये अन्नेषु अवस्थिताः विविध्यन्ति अतिशयेन विध्यन्ति ताडयन्ति। येषामयमधिकारः अन्नस्य भक्षयितारो व्याधिभिर्गृहीतव्या इति इ० ॥

उक्त आचार्य-मतका तात्पर्य— ये रुद्र अन्न और पानीमें प्रविष्ट होकर उस अन्नको खानेवाले और उस पानीको पीनेवाले लोगोंमें रोग उत्पन्न करते हैं।

रोग उत्पन्न करना रुद्रोंका कर्म है। रोगजन्तुओंका यह वर्णन है। **'रोग-जन्तु'** अन्नके द्वारा और जलके द्वारा शरीरमें प्रविष्ट होकर शरीरमें नाना प्रकारके रोग उत्पन्न करते हैं, यही भाव उक्त मंत्रका है। इसलिये रोगबीजोंका नाम रुद्र हुआ है। रोगजंतु किस प्रकारके होते हैं और कहां रहते हैं, इस बातका ज्ञान पूर्वोक्त अध्यायमें **'जन्तुवर्ग'** के रुद्रवाचक शब्दोंके अर्थोंका विचार करनेसे स्पष्टतया हो सकता है।

तात्पर्य इस प्रकार रुद्रोंके लक्षण हैं। यहां नमूनेके लिये थोडेसे दिये हैं। विशेष विचार करनेके लिये पूर्वोक्त आचार्योंके अर्थोंका मनन करना उचित है। इन अर्थोंको देखनेसे **'रुद्रत्व'** की कल्पना हो सकती है। अर्थात् **'रुद्र'** यह कोई एक ही पदार्थ नहीं है, परंतु यह अनेक कल्पनाओंका समूहवाचक शब्द है।

जिस प्रकार 'प्राणी' कहनेसे 'मनुष्य, घोडा, गाय, चूहा' आदि का बोध होता है अथवा 'मनुष्य' कहनेसे 'ज्ञानी, शूर, व्यापारी' आदि जनोंका बोध होता है, इसी प्रकार 'रुद्र' कहनेसे *'ज्ञानी, शूर, दुष्ट, सज्जन' आदिका बोध होता है।* परंतु ये सब प्रत्यक्षमें एक नहीं हैं, इनमें भिन्नत्व है। इस भिन्नत्वका स्वरूप यहां बताया है और इस समयतक के संपूर्ण विवरणमें भी इसी भिन्नत्वका रूप स्पष्ट किया है।

श्री भ० गीताके विभूतियोगके साथ तुलना।

श्रीमद्भगवद्गीताके १० अध्यायमें 'विभूतियोग' कहा है। उसका थोडासा भाग देखिए—

रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम्।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम्॥२३॥
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः॥२५॥
मृगाणां च मृगेन्द्रोऽहं वैनतेयश्च पक्षिणाम्॥३०॥
अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम्॥३२॥
द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥३६॥
वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पांडवानां धनंजयः॥३७॥
यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसंभवम्॥४१॥
अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवार्जुन॥
विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्॥४२॥

(श्री भ० गी० अ० १०)

"रुद्रोंमें मैं शंकर, यक्ष और राक्षसोंमें मैं कुबेर, वसुओंमें मैं पावक, चोटियोंवाले पहाडोंमें मैं मेरुपर्वत हूं। यज्ञोंमें जपयज्ञ, स्थिर पदार्थोंमें हिमालय, मृगोंमें सिंह, पक्षियोंमें गरुड, विद्याओंमें आत्मविद्या और वक्ताओंका भाषण मैं ही हूं। कपटियोंका द्यूत अर्थात् जूआ, तेजस्वियोंका तेज, वृष्णियोंमें वासुदेव, पांडवोंमें अर्जुन मैं हूं। जो जो विशेष ऐश्वर्ययुक्त,

शोभायुक्त और उच्च तत्त्व होगा, वह सब मेरे ही अंशसे हुआ है, ऐसा तुम जानो। अथवा इतने विस्तारसे कहनेकी क्या आवश्यकता है? सारांशरूपसे इतना ही कहना पर्याप्त है कि एक अंशसे सब जगत् व्यापकर मैं रहा हूं।'

जगत्में जो जो ऐश्वर्ययुक्त सत्त्व होता है, वह परमेश्वरके अंशसे होता है, ऐसा यहां कहा है।

इसी 'विभूतियोग' के समान 'रुद्रको चोरके रूपमें मानना' है। कई टीकाकारोंने इस रुद्राध्यायपर टीका करते हुए लिखा है कि चोर और डाकू भी रुद्रके रूप हैं। देखिए—

रुद्रो लीलया चोरादिरूपं धत्ते, यद्वा रुद्रस्य जगदात्मकत्वाच्चोरादयो रुद्रा एव ज्ञेयाः। यद्वा स्तेनादिशरीरे जीवेश्वररूपेण रुद्रो द्विधा तिष्ठति तत्र जीवरूपं स्तेनादिपदवाच्यं तदीश्वररुद्ररूपं लक्षयति यथा शाखाग्रं चन्द्रस्य लक्षकम्। किंबहुना लक्ष्यार्थविवक्षया मंत्रेषु लौकिकाः शब्दाः प्रयुक्ताः॥

(महीधरभाष्य य. अ. १६।२०)

"रुद्ररूपी जगदात्मा लीलासे चोरका रूप धारण करता है। अथवा रुद्र जगदात्मा होनेसे चोरादि सब रुद्र ही जान लीजिए। अथवा चोरादिकोंके शरीरमें जीव और ईश्वररूपसे रुद्र दो प्रकारका होकर रहता है, वहां चोर आदि शब्द जीवरूपके दर्शक होते हुए भी ईश्वररूपके बोधक होते हैं, जिस प्रकार शाखाके अग्रसे चंद्रमाका ज्ञान बताया जाता है। बहुत क्या कहना है? ईश्वरका ज्ञान देनेकी इच्छासे मंत्रोंमें बहुतसे लौकिक शब्द प्रयुक्त किये हैं।"

श्री सायणाचार्य भी अपने काण्व-यजु० अ० १७ के भाष्य में उक्त प्रकार ही कहते हैं। उक्त विषयमें सायण और महीधर की संमति एक जैसी ही है।

१. छलयतां द्यूतं अस्मि (गीता)–कपटीयोंका द्यूत मैं हूं।
२. स्तेनानां पतिः अस्मि (वेद)–चोरोंका स्वामी मैं हूं।
३. स्तायूनां पतिः अस्मि। (वेद)– ठगोंका मुखिया मैं हूं।
४. तस्कराणां पतिः अस्मि। (वेद)–डाकुओंका सरदार मैं हूं।
५. मुष्णतां पतिः अस्मि। (वेद)–लुटेरोंका श्रेष्ठ मैं हूं।

उक्त गीताके वचनमें '**रुद्राणां शंकरश्चास्मि।**' यह वाक्य है। 'अनंत रुद्रोंमें मैं एक शंकरनामक रुद्र हूं।' इन वाक्यमें रुद्रोंका अनंतत्व और शंकरका एकत्व सिद्ध है। यहां शंकर शब्दसे परमात्मा और रुद्र शब्दसे परमात्मासे उत्पन्न पूर्वोक्त इतर रुद्र लेना उचित है। इस प्रकार करनेसे इस वाक्यकी वेदके आशयके साथ संगति लग सकती है।

पं० जान डॉसनसाहबका मत।

'हिंदु-क्लासिकल डिक्शनरी' में पं० डॉसनसाहब लिखते हैं कि—

'He is the howling terrible god, the god of storms, the father of the Rudras or Maruts, and is sometimes identified with the god of fire. On the one hand he is a distructive deity who brings diseases upon men and cattle, and upon the other he is a beneficent deity supposed to have a healing influence. These are the germs which afterwards developed into the god Siva.'

(पृ. २६९)

'यह (रुद्र) गर्जना करनेवाला भयानक देव है, जो तूफानका देव है और जो रुद्रों अथवा मरुतोंका पिता है। कभी कभी इसका संबंध अग्निदेव के साथ जोडा जाता है। एक ओर यह देव सबका नाश करता है और प्राणियोंमें बीमारियाँ फैलाता है, तथा दूसरी ओर इसको सुखदायक और आरोग्य देनेवाला देव समझा जाता है। ये ही मूल अंकुर हैं कि जिनका विकास होकर आगे जाकर शिवजीका स्वरूप बना है।'

रुद्रको केवल बादलोंका देव पं० डॉसनसाहब मानते हैं। परंतु यदि वे 'रुद्र और मरुत्' के मूल अर्थोंकी थोडीसी भी खोज करते, तो उनको पता लगता कि '**रुद्र**' को '**जगतां पतिः**' अर्थात् 'अनंत ब्रह्मांडोंका स्वामी' कहा है। यह मंत्रों का विधान ये यूरोपियन पंडित देखते ही नहीं।

सर मोनिअर वुइलियमसाहबकी संमति।

यह साहब कहते हैं कि—

'Rudra, roarer, the god of tempests and father and ruler of Rudras and Maruts. (In Veda he is closely connected with Indra and still more with Agni, the god of fire ...... and also with Kala or time, the all-consumer with whom he is afterwards indentified; though

generally represented as a destroying deity... he has also the epithet Siva, ' benevolent or auspicious' and is even supposed to possess healing powers...... from his purifying the atmosphere; ....) '

(सर मो. वुइलियम का संस्कृत-इंग्लिश कोश)

' गरजनेवाला रुद्र तूफानोंका देव है और रुद्रों और मरुतोंका पिता और राजा है। (वेदमें रुद्र देवका इन्द्र और विशेष कर अग्निके साथ संबंध बताया है।...... बादमें सर्वभक्षक कालके साथ भी जोड दिया है। यद्यपि इसको संहारक देव समझा जाता है......तथापि यह कल्याणकारक और आरोग्यदायक भी वर्णन किया है। यह हवा को शुद्ध करता है।)'

एक ही परमेश्वर जगत्का उत्पादक, पालक, संहारक, कल्याणकारक, सुखदायक आदि अनंत गुणोंसे युक्त हैं। ये लोग इन सब गुणोंको रुद्र-वर्णनमें देखते हैं, परंतु रुद्रको ईश्वर माननेके समय झिझकते हैं।

श्री० म० आर्थर आंटोनी मॅकूडोनेल-साहबकी संमति।

' This god occupies a subordinate position in the Rig Veda being celebrated in only three entire hymhs, in part of another, and in one conjointly with Soma. His hand, his arms, and his limbs are mentioned. He has beautiful lips and wears braided hair. His colour is brown; his form is dazzling, for he shines like the radiant sun, like gold...... he holds the thunderbolt in his arm, and discharges his lightning shaft from the sky; but he is usually said to be armed with a bow & arrows, which are strong and swift. '

' Rudra is very often associated with the Maruts (i. 85). He is their father, and is said to have generated them from the shining under of the cow prishni. '

' He is fierce and destructive like a terrible beast, and is called a bull, as well as the ruddy (arusa) boar of heaven. He is exalted, strongest of the strong, swift, unassailable, unsurpassed in might. He is young and unaging, a lord (Ishana) and father of the world. By his rule and universal dominion he is aware of the doings of man and gods. He is bountiful (midhvams), easily invoked and auspicious (Shiva). But he is usually regarded as malevolent; for the hymns addressed to him chiefly express fear of his terrible shafts and deprication of his wrath................. He is however, not purely maleficent like a demon. He not only preserves from calamity, but bestows blessing. His healing powers are especially often mentioned; he has a thousand remedies, and is the greatest physician of physicians.............. '

' The physical basis represented by Rudra is not clearly apparent. But it seems probable that the phenomenon underlying his nature was the storm. .... ' [A Vedie Reader, pages 56-57]

' ......यह रुद्रदेव ऋग्वेदमें निम्न कोटिका देव है। क्योंकि संपूर्ण ऋग्वेदमें इसके लिये केवल तीन सूक्त ही हैं।...... उसके हात, बाहू और अवयवोंका वर्णन किया है। उसके होंठ सुंदर हैं, और वह जटाजूट धारण करनेवाला है। उसका बदामी रंग है और इसका आकार चमकीला है, क्योंकि तेजस्वी सूर्यके समान वह चमकता है...... मेघविद्युत् का वज्र वह हाथमें धरता है, और आकाशसे तेजस्वी बाण मारता है, परंतु बहुत करके धनुष्यबाण धारण करता है, ऐसा ही कहा गया है...'

' रुद्रका मरुतोंके साथ बहुत संबंध बताया है। वह उनका पिता है और पृश्निनामक गायके चमकीले गर्भस्थानसे मरुतोंकी उत्पत्ति की गई है, ऐसा कहा गया है।'

' क्रूर पशुके समान भयानक और विनाशक वह रुद्र है। और उसको बैल कहते हैं, तथा उसको स्वर्गका लाल सुवर कहा है। वह बडा उच्च, बलवानोंमें बलवान्, चपल, न दबनेवाला और सबसे प्रबल है। वह तरुण और वृद्धावस्थासे रहित है। वह सबका राजा और जगत्का पिता है। सब मनुष्य और सब देवताओंके सब कर्मोंको वह जानता है, क्योंकि उसका राज्य

और उसका शासन सर्व जगत्में है। वह दानशूर, कल्याणमय और सुलभतासे संतुष्ट होनेवाला है। परंतु बहुधा ऐसा समझा जाता है कि वह बडा द्रोही है, क्योंकि जिन सूक्तोंसे उनकी प्रार्थना की गई है, उन सूक्तोंमें उसके क्रोधकी भीति और उसके शस्त्रोंका डर व्यक्त हुआ है। ...... परंतु वह राक्षसके समान अत्याचारी नहीं है। वह कष्टोंसे न केवल बचाता है, परंतु आशीर्वाद भी देता है। उसकी आरोग्यवर्धनकी शक्तियोंका वर्णन आया है और उसके पास हजारों दवाइयां हैं और वह वैद्योंमें बडा वैद्य है ... .. ।'

'रुद्रके द्वारा जिस पांचभौतिक घटनाका वर्णन हुआ है, वह घटना स्पष्ट रीतिसे ज्ञात नहीं होती। परंतु यह संभव है कि उसके स्वभावके नीचे जो पांचभौतिक घटना है, वह बहुधा तूफानी अवस्था होगी ...... '

(वैदिक रीडर, पृ. ५६-५७)

युरोपियन पंडितोंकी ये ही संमतियां हैं। अन्य अनेक पंडितोंने रुद्र देवताके विषयपर बहुतसा लिखा है, परंतु उसका मुख्य अंश उक्त संमतियोंमें हैं। इसलिये और अधिक संमतियां न देता हुआ मैं इनकी ही समालोचना करता हूं। उक्त संमतियां देखनेसे निम्न मत प्रतीत होते हैं—

(१) रुद्रका दर्जा बहुत नीचे है, क्योंकि उसके लिये थोडे सूक्त हैं।

(२) उसके अवयवोंका और रंगरूपका वर्णन होनेसे वह साकार है।

(३) धनुष्यबाणका वर्णन होनेसे वह शस्त्रधारी साकार है।

(४) रुद्र मरुतोंका पिता है और पृश्निनामक गायसे मरुतोंकी उत्पत्ति हुई है।

(५) रुद्र देव क्रूर, द्रोही, भयानक है, परंतु राक्षसके समान अत्याचारी नहीं हैं।

(६) वह उग्र, श्रेष्ठ, सर्वशक्तिमान्, चपल, न दबनेवाला, सबसे प्रबल, तेजस्वी, सर्वज्ञ, दाता, मंगलमय और संतुष्ट है। वह सब जगत्का पिता और राजा है।

(७) यह आरोग्यदाता और रोग दूर करनेवाला है।

(८) रुद्रके वर्णनके बीचमें जो नैसर्गिक घटना है, वह गुप्त है, उसका पता नहीं लगता। परंतु वह घटना बहुधा तूफानकी हवा होगी।

(९) वह बैल और दिव्य सुवर कहा गया है।

(१०) रुद्र मेघस्थानकी बिजुली है।

अब हम रुद्रसूक्तका थोडासा विचार करते हैं—

पौराणिक रुद्र और वैदिक रुद्र।

पुराणोंमें आया हुआ रुद्रका वर्णन और वेदका रुद्रका वर्णन कई अंशोंमें भिन्न है। देखिए—

एष ते रुद्र भागः सह स्वस्राऽम्बिकया तं जुषस्व स्वाहा। एष ते रुद्र भाग आखुस्ते पशुः॥ (यजु० ३।५७)

'हे रुद्र! यह तेरा भाग है। अपनी बहन अंबिकाके साथ उसका सेवन करो। यह तेरा भाग है और चूहा तेरा पशु है।'

यहां इतना ही बताना है कि वेदमें अंबिका रुद्रदेवकी बहन कही है, परंतु पुराणोंमें उसकी धर्मपत्नी कही है। तथा रुद्रका पशु चूहा इस मंत्रमें बताया है। परंतु पुराणोंमें चूहा गणपतिका पशु कहा है। यह भेद देखने योग्य है। तथा—

भवारुद्रौ सयुजा संविदानावुभावुग्रौ चरतो वीर्याय। ताभ्यां नमो यतमस्यां दिशीतः॥

(अथर्व. ११।२।१४)

'भव और शर्व ये दोनों (सयुजा) साथ रहनेवाले मित्र, (संविदानौ) उत्तम ज्ञानवाले हैं। (उभौ उग्रौ) दोनों प्रतापी हैं, वे (वीर्याय चरतः) वे पराक्रम करनेके लिये चलते हैं। (यतमस्यां दिशि) जिस किसी दिशामें वे होंगे, उनको हमारा नमस्कार है।'

इससे 'भव और शर्व' ये परस्पर भिन्न हैं, परंतु साथ रहनेवाले और बडा पराक्रम करनेवाले हैं, ऐसा पता लगता है। पुराणमें ये दोनों शब्द एक ही रुद्रके लिये आये हैं।

'भव' का अर्थ 'उत्पत्तिकर्ता' है और 'शर्व' का अर्थ 'प्रलय करनेवाला' है। परमात्मामें ये दोनों गुण होनेसे वहां इनकी भिन्नता लुप्त होती है, ऐसा भी माना जा सकता है। इसलिये यह भिन्नत्व और एकत्व विशेष विचारसे सोचना चाहिए।

रुद्रका शरीर ।

शिवपुराणमें निम्न श्लोक ' रौद्री तनुः ' अर्थात् रुद्रके शरीर-के विषयमें आते हैं, रुद्रका विचार करनेके समय इसका भी विचार करना उचित है—

अग्निरित्युच्यते रौद्री घोरा या तैजसी तनुः ।
सोमः शाक्तोऽमृतमयः शक्तेः शांतिकरी तनुः ॥३॥
विविधा तेजसे वृत्तिः सूर्यात्मा च जलात्मिका ।
तथैव रसवृत्तिश्च सोमात्मा च जलात्मिका ॥४॥
वैद्युतादिमयं तेजः मधुरादिमयो रसः ।
अग्नेरमृतनिष्पत्तिरमृतादग्निरेधते ॥ ५ ॥

' अग्नितत्त्वको रुद्रका भयानक तैजस् शरीर कहते हैं । तथा जलमय सोमतत्त्वको शक्तिका-(रुद्रपत्नी)-शांतिकारक शरीर कहते हैं । तेजके तत्त्व अनेक प्रकारके हैं तथा जलके तत्त्व भी विविध हैं । विद्युत् आदि तेज हैं और मधुर आदि रस हैं । अग्नि से जलकी उत्पत्ति और जलसे अग्निका प्रकाश होता है । ' इस प्रकार सब जगत् ' तैजस् उग्र शक्तिके साथ जलात्मक शांत शक्तिके वास्तव्य ' से होता है ।

उक्त वर्णनका तात्पर्य इतना ही है कि, इस जगत्में दो शक्तियां हैं, (१) एक तेजस शक्ति गति उत्पन्न करनेवाली है; (२) दूसरी शांति करनेवाली एक शक्ति है । इन दो शक्तियोंसे यह जगत् चल रहा है । दोनों शक्तियां कार्य कर रहीं हैं । पहिली रुद्र शक्ति है और दूसरी रुद्रकी धर्मपत्नी है । इसलिये इन को जगत् के माता पिता कहते हैं ।

रुद्र	अंबिका
महादेव	पार्वती
अग्नि	जल
सूर्य	चंद्र
अग्नि	सोम

इत्यादि शब्दोंसे उक्त आशयका पता लग सकता है । आशा है कि इस विधानका भी पाठक विचार करेंगे ।

खोजका विषय ।

' रुद्र ' देवताका परिचय देनेके लिये बहुतसा रुद्रविषयक ज्ञान इस निबंधमें एकत्रित किया है । अभी बहुतसे बातोंका संशोधन करना है । आशा है कि पाठक इन बातोंका विचार करेंगे और रुद्रत्वका निश्चय करनेके लिये अन्य ग्रंथोंका संशोधन करके अधिक ज्ञान प्रकाशित करेंगे ।

रुद्रदेवताका यजुर्वेदोक्त विश्वरूप ।

यह रुद्रसूक्त यजुर्वेद-संहिता में है । वाजसनेयी संहिता का १६ वां अध्याय; काण्वसंहिताका १७ वां अध्याय; मैत्रायणी संहिताका काण्ड २, प्रपाठक ९; काठकसंहिताका १७,१३-१४; कपिष्ठल कठ संहिता का २७,३-४; तैत्तिरीय संहिताका कां. ७।५।४-५ रुद्रदेवता के वर्णन के लिये ही प्रसिद्ध हैं । जो सूक्त हम यहां आज विचार करनेके लिये लेना चाहते हैं, वह इतनी संहिताओं में प्रमाणत्वेन विद्यमान है । इस अध्याय में रुद्रदेवताका बडा विस्तृत वर्णन है ।

यहां विचार करनेके लिये हम वा० यजु० अ० १६ के १७-४६ और ५४ ये ३१ मंत्र लेते हैं ।

यहां कई रुद्रों के नाम गिनाये हैं । इन मन्त्रों में नाम ही नाम गिनाये हैं । इन नामों के हम नीचे वर्ग करके बता देते हैं, जिन से पाठकों को पता लगेगा कि, वे सब रुद्र किन किन वर्गों में संमिलित होने योग्य हैं । इन में से जो मानवों में संमिलित होनेयोग्य हैं, उन के वर्ग वे हैं ।

रुद्र सूक्तमें रुद्रके अनेक नाम दिये हैं । वे नाम योंही दिये नहीं हैं । इसका कारण महत्वपूर्ण है । किसी अन्य देवताके इतने नाम वेदमें दिये नहीं हैं, केवल एक रुद्र देवके ही अनेक नाम दिये हैं । प्रायः प्रत्येक जातीके नाम यहां आये हैं । अर्थात् प्रत्येक जातीमें रुद्र है ।

ऊपर सायन, महीधर, उवट और दयानन्दके भाष्य दिये हैं । उनमें इन भाष्यकारोंने जो रुद्रके अर्थ दिये हैं वे प्रायः एक जैसे ही हैं देखिये—

सायण भाष्य—	स्वामी दयानन्द भाष्य—
रुद्रः परमेश्वरः	रुद्रः परमेश्वरः
रुद्रः प्राणरूपेण वर्तमानः	रुद्रः प्राणः
रुद्रः शूरभटः	रुद्रः शूरवीरः
रुद्रः रोदयिता	कुपथ्यकारिणो रोदयिता रुद्रः
रुद्रियं सुखं	
रुद्रियं भेपजं	सर्वरोगदोषनिवारकः रुद्रः
	राजवैद्यः रुद्रः

रुद्रः संहर्ता देवः

रौति उपदिशति इति रुद्रः   उपदेशकः रुद्रः

जगत्स्रष्टा रुद्रः

रुद्रः हिंसकः

रुद्रः ज्वराभिमानी देवः

रुद्रः रोदकः

उवट भाष्य—

रुद्रः स्तोता

रुद्र रुग्णः

रुद्रः वीरः

महीधर भाष्य—

रुद्रः शिवः शंकरः

रुद्रः क्रूरः

रुद्रः दुःखनाशकः   रुद्रः दुःखनिवारकः

रुद्रः शत्रुरोदयिता

रुद्रः रुतं ज्ञानं ददाति   सत्योपदेशात् राति इति रुद्रः

इस तरह सब भाष्य रुद्रके स्वरूपके विषयमें समान संमति ही रखते हैं। स्वामी दयानन्दजीके भाष्यमें जो विशेष अर्थ दिये हैं वे ये हैं—

रुद्र दुःखनिवारक। दुष्टोंको भयंकर। दुष्ट दण्डक। रोगोंका निवारक। रोगोंका नाशक। अर्वाचीनविद्य विद्वान्। सभाध्यक्ष। न्यायाधीश। सेनापति। वायु।

ये अर्थ देखनेसे स्पष्ट दीखता है कि सब भाष्यकारोंकी संमति रुद्रके विषयमें समान है। स्वपि दयानंदजीके भाष्यमें अधिक स्पष्टता है। परंतु भावार्थमें सबकी समानता है।

ये भाष्यकार मानवोंमें गुरु, उपदेशक, प्रचारक, व्याख्याता आदिके रूपोंमें रुद्रके रूप देखते हैं। इसलिये परमेश्वरके रूपमें रुद्र एक ही अकेला एक है, परंतु सेनापति, शूरवीर, सैनिक, वैद्य, गुरु, उपदेशक आदिके रूपोंमें रुद्र अनेक हैं। सहस्रोंकी संख्यामें ये रुद्र हैं। इसीलिये वेदमें रुद्र एक ही है ऐसा कहा है और अनेक हैं ऐसा भी कहा है। यह रुद्रोंका एकत्व और अनेकत्व सत्य है और अनुभवमें आनेवाला है।

अब मानवरूपोंमें रुद्र कौन हैं यह देखने योग्य विषय है। अगले व्याख्यानमें इसीका विचार किया जायगा।

पाठक यहां देखें कि यह देवतास्वरूप निश्चय करना कितना सूक्ष्म विचारका प्रश्न है। यह सहज नहीं हो सकता। वेदमंत्रोंमें जितने रुद्र कहे हैं, उन सबोंको क्रमवार रखकर उन सबका विचार करके निश्चय करना चाहिये कि ये रुद्र हैं। सुख देनेवाला भी रुद्र है और दुःख देनेवाला भी रुद्र है। रोग उत्पन्न करनेवाला जैसा रुद्र है वैसा रोगोंको हटानेवाला वैद्यराज भी रुद्र ही है। रक्षक जैसा रुद्र है, वैसा संहारक भी रुद्र है। परस्पर विरोधी रुद्रके रूप होनेके कारण विना विचार किये रुद्रका स्वरूप ठीक तरह ध्यानमें नहीं आ सकता। अब मानवरूपमें रुद्रोंका दर्शन कीजिये। यह स्वरूप अगले व्याख्यानमें दर्शाया है।

रुद्रदेवताके संबन्धमें

प्रश्न

★

१ रुद्रदेवताके संबन्धमें निरुक्तकार क्या कहते हैं ?

२ रुद्र एक ही है या अनेक रुद्र हैं ? रुद्र एक भी है और अनेक भी हैं यह किस तरह सिद्ध हो सकता है ?

३ रुद्र एक है इसके प्रमाणवचन अर्थके साथ लिखिये ।

४ रुद्र अनेक हैं इस विषयमें मंत्रोंके प्रमाण दें ।

५ सर्वव्यापक रुद्र है इसका क्या प्रमाण है। सर्वव्यापक देव अनेक हो सकते हैं वा नहीं ?

६ जगत्का पिता रुद्र है इसका प्रमाणवचन अर्थके साथ दें ।

७ सब सृष्टीका एक स्वामी रुद्र है इसका प्रमाणवचन कौनसा है ?

८ गुहामें रहनेवाला रुद्र कौनसा है ? अपने अन्तःकरणमें रुद्र है इसका प्रमाण कौनसा है ?

९ अनेक रुद्रोंमें व्यापक एक रुद्र है यह प्रमाणवचनसे सिद्ध करो ।

१० अनेक प्राणी, मर्त्य मानव, रुद्र हैं, यह सिद्ध करनेके लिये प्रमाणवचन अर्थके साथ दें ।

११ रुद्रके पुत्र मरुत् हैं यह प्रमाणसे सिद्ध करो ।

१२ रुद्रके पुत्र मरुत् प्रथम मनुष्य थे, पश्चात् सुकृतसे अमर हो गये यह कैसा हुआ सिद्ध कीजिये ।

१३ मानव समाजका उल्लेख वेदमें जिन पदोंसे होता है वे पांच पद कमसे कम दें कि जिससे 'सार्वजनिक भाव' वेदमें है इसका पता लग जाय ।

१४ रुद्र देवका कार्य क्या है ? इसके यौगिक अर्थ बताकर उनसे क्या भाव निकलता है वह बताइये ।

१५ 'रुद्र' पदके अच्छे सौम्य और भयानक अर्थ लिखिये ।



वेदके व्याख्यान

वेदोंमें नाना प्रकारके विषय हैं, उनको प्रकट करनेके लिये एक एक व्याख्यान दिया जा रहा है। ऐसे व्याख्यान २०० से अधिक होंगे और इनमें वेदोंके नाना विषयोंका स्पष्ट बोध हो जायगा।

मानवी व्यवहारके दिव्य संदेश वेद दे रहा है, उनको लेनेके लिये मनुष्योंको तैयार रहना चाहिये। वेदके उपदेश आचरणमें लानेसे ही मानवोंका कल्याण होना संभव है। इसलिये ये व्याख्यान हैं। इस समय तक ये व्याख्यान प्रकट हुए हैं।

१ मधुच्छन्दा ऋषिका अग्निमें आदर्श पुरुषका दर्शन।
२ वैदिक अर्थव्यवस्था और स्वामित्वका सिद्धान्त।
३ अपना स्वराज्य।
४ श्रेष्ठतम कर्म करनेकी शक्ति और सौ वर्षोंकी पूर्ण दीर्घायु।
५ व्यक्तिवाद और समाजवाद।
६ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।
७ वैयक्तिक जीवन और राष्ट्रीय उन्नति।
८ सप्त व्याहृतियाँ।
९ वैदिक राष्ट्रगीत।
१० वैदिक राष्ट्रशासन।
११ वेदोंका अध्ययन और अध्यापन।
१२ वेदका श्रीमद्भागवतमें दर्शन।
१३ प्रजापति संस्थाद्वारा राज्यशासन।
१४ त्रैत, द्वैत, अद्वैत और एकत्वके सिद्धान्त।
१५ क्या यह संपूर्ण विश्व मिथ्या है?
१६ ऋषियोंने वेदोंका संरक्षण किस तरह किया?
१७ वेदके संरक्षण और प्रचारके लिये आपने क्या किया है?
१८ देवत्व प्राप्त करनेका अनुष्ठान।
१९ जनताका हित करनेका कर्तव्य।
२० मानवके दिव्य देहकी सार्थकता।
२१ ऋषियोंके तपसे राष्ट्रका निर्माण।
२२ मानवके अन्दरकी श्रेष्ठ शक्ति।
२३ वेदमें दर्शाये विविध प्रकारके राज्यशासन।
२४ ऋषियोंके राज्यशासनका आदर्श।
२५ वैदिक समयकी राज्यशासन व्यवस्था।
२६ रक्षकोंके राक्षस।
२७ अपना मन शिवसंकल्प करनेवाला हो।
२८ मनका प्रचण्ड वेग।
२९ वेदकी दैवत संहिता और वैदिक सुभाषितोंका विषयवार संग्रह।
३० वैदिक समयकी सेनाव्यवस्था।
३१ वैदिक समयके सैन्यकी शिक्षा और रचना।
३२ वैदिक देवताओंकी व्यवस्था।
३३ वेदमें नगरोंकी और वनोंकी संरक्षण व्यवस्था।
३४ अपने शरीरमें देवताओंका निवास।
३५, ३६, ३७ वैदिक राज्यशासनमें आरोग्य-मन्त्रीके कार्य और व्यवहार।
३८ वेदोंके ऋषियोंके नाम और उनका महत्त्व।
३९ रुद्र देवताका परिचय।
४० रुद्र देवताका स्वरूप।
४१ उषा देवताका परिचय।
४२ आदित्योंके कार्य और उनकी लोकसेवा।
४३ विश्वेदेवा देवताका परिचय।

आगे व्याख्यान प्रकाशित होते जायंगे। प्रत्येक व्याख्यानका मूल्य ।=) छः आने रहेगा। प्रत्येकका डा. व्य. =) दो आना रहेगा। दस व्याख्यानोंका एक पुस्तक सजिल्द लेना हो तो उस सजिल्द पुस्तकका मूल्य ५) होगा और डा. व्य. १।) होगा।

मंत्री — स्वाध्यायमण्डल, पोस्ट- 'स्वाध्यायमण्डल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]

मुद्रक और प्रकाशक- व. श्री. सातवलेकर, भारत-मुद्रणालय, पोस्ट- 'स्वाध्याय-मंडल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]



वैदिक व्याख्यान माला — ४० वाँ व्याख्यान

रुद्र देवताका स्वरूप



लेखक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

साहित्य-वाचस्पति, वेदाचार्य, गीतालंकार

अध्यक्ष- स्वाध्याय मंडल

स्वा ध्या य मं ड ल, पा र डी

३७ नये पैसे



रुद्रदेवताका स्वरूप

मानवरूपोंमें रुद्र।

(ज्ञानी पुरुष)

पूर्वोक्त मन्त्रों में जो ज्ञानी-वर्ग के रुद्र हैं, उनकी नामावलि यह है। ज्ञानी-वर्गके रुद्रोंको ब्राह्मणवर्ग के रुद्र कहा जा सकता है।

१. गृत्स = ज्ञानी, कवि, एक ऋषि [२५]

२. गृत्सपति = ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ, गृत्सों का अधिष्ठाता [२५]

३. श्रुत = विख्यात, प्रसिद्ध, विद्वान्, श्रुति का वेत्ता [३५]

४. पुलस्ति = विद्वान्, ऋषि [४३]

५. रुद्र = [रु] शब्द शास्त्र का [द्र] पारंगत, ज्ञानी [१८]

६. उद्गुरमाण = उत्तम ज्ञानका उपदेश देनेवाला, वक्ता [४६]

७. अधिवक्ता = [वा० य० १६।५] = उपदेशक, अध्यापक, वक्ता।

८. मंत्री = राजा का मन्त्री, दिवान, सलाहगार, सुविचारी, बुद्धिमान, चतुर, हित की मंत्रणा देनेवाला [१९]

९. देवानां हृदयः = देवताओंके लिये जिसने अपना हृदय दिया है, भक्त, प्रेमी, साधु, सज्जनों की सेवा करनेवाला [४६]

१०. भिषक्, दैव्यो भिषक् = दिव्य वैद्य [वा० य० १६।५], आयुर्वृष [६०] आयुष्य की वृद्धि करनेवाला।

११. ओषधीनां पतिः = औषधियां अपने पास रखनेवाला [१९]

१२. सभा = सभा, परिषद्, विविध सभाओं के सभासद [२४]

१३. सभापतिः = सभा का अध्यक्ष, परिषद् का प्रमुख [२४]

१४. श्रवः = कान, सुननेवाला, श्रवण करनेवाला, शिष्य [३४] प्रमृशः = परामर्श लेनेवाले पंडित [३६]

१५ प्रतिश्रवः = सुनानेवाला, उपदेश करनेवाला, गुरु [३४]। वादी-प्रतिवादी, प्रश्न-प्रतिप्रश्न के समान श्रव-प्रतिश्रव ये पद हैं। इनका परस्परसंबंध है। सोम्यः [३३] = पुण्यकर्म करनेवाले तथा प्रतिसर्य [३३] = गुप्त बात प्रकट करनेवाले।

१६. श्लोक्यः = प्रशंसनीय, श्लोकों के योग्य, प्रशंसनीय विद्वान् [३३]

प्राचीन परंपराके अनुसार वैद्य, राजा का मंत्री, अध्यापक आदि ब्राह्मण अथवा ज्ञानी-वर्गके लोग ही हुआ करते हैं। अर्थात् ये ब्राह्मण हैं अथवा ज्ञानी तो निःसन्देह हैं।

पुरुषसूक्त में 'ब्राह्मणों को नारायण का मुख' कहा है। यहां उसी नारायण के अथवा रुद्रदेवता के मुख में किन का समावेश होता है, यह अधिक नाम देकर बताया है। यहां के कई नाम जैसे 'उद्गुरमाण' आदि अन्य वर्गमें भी गिने जाना स्वाभाविक है। जो शेष बचेंगे, वे इस वर्ग में रहेंगे। इस तरह ब्राह्मणवर्ग के रुद्रोंका विचार करने के पश्चात् अब क्षत्रियवर्ग के रुद्रों का, अथवा वीरोंका विचार करते हैं। रुद्र का नाम 'वीरभद्र' सुप्रसिद्ध है। कल्याण करनेवाला वीर 'वीरभद्र' कहा जाता है। देखिये, वीरभद्रके वर्गमें कौनसे रुद्र गिने जाने योग्य हैं—

क्षत्रिय-वर्गके रुद्र।

(वीर रुद्र।)

(रोदयति इति रुद्रः) जो रुलाता है, वह रुद्र है। शत्रुओं को रुलाने के कारण वीर को रुद्र कहते हैं। इस तरह क्षत्रिय वीर रुद्र कहे जाते हैं।

१. रुद्रः = शत्रुओं को रुलानेवाला वीर [१, १८] तवस् = बलवान् [४८] आगे राजाके अनेक अधिकारी, ओहदेदार, रुद्र करके गिनाये हैं ।

२. क्षेत्राणां पतिः = खेतोंकी रक्षा करनेवाला [१८] भूतानां अधिपतिः = प्राणियों के रक्षक [५९]

३. वनानां पतिः = वनोंकी पालना करनेवाला [१८] वन्यः = वनमें उत्पन्न [३४]

४. अरण्यानां पतिः = अरण्यों का संरक्षण करनेवाला [२०]

५. स्थपतिः = स्थानोंका पालक [१९], पथिरक्षी [६०], प्रपथ्य [४३] = मार्गों की रक्षा करनेहारे ।

६. कक्षाणां पतिः [१९] दिशां पतिः [१७] (कक्षा) = गुप्त स्थान, अन्तका भाग, बडा अरण्य, बहुत ही बडा वन । [कक्षाणां पतिः, कक्षापः] = गुप्त स्थान की रक्षा करनेवाला, अन्तिम विभाग का रक्षक, बडे अरण्योंका रक्षक [१९], कक्ष्यः = अरण्य की कक्षा में रहनेवाला [३४]

७. पत्तीनां पतिः = सेनाओं का पालक, सेनापति, पादचारी सेनाविभाग का अधिपति [१९], सत्वनां पतिः = प्राणियोंका रक्षक [२०]

८. आव्याधिनीनां पतिः = उत्तम निशाना मारनेवाले सैनिकोंका अधिपति, सेनापति [२०], [व्याधिन्] = शत्रु का वेध करनेवाला [२०, २४]

९. विकृन्तानां पतिः = शत्रु सैनिकोंका अधिपति [२१]

१०. कुलुञ्चानां पतिः = शत्रुसेनाको पीसनेवाले, शत्रुपर चढाई करके उनके सेनाविभागोंको पृथक् करके उनका नाश करनेवाले वीरोंके प्रमुख अधिपति [२२]

११. गणपतिः = वीरोंके गणों के अधिपति [२५] ककुभः = प्रमुख, मुख्य [२०]

१२. व्रातपतिः = वीरों के समूह के प्रमुख [२५]

१३. सेना, १४ व्रातः, १५ गणः = ये सेनाविभागोंके नाम हैं; सैनिकों की संख्या के अनुसार ये नाम प्रयुक्त होते हैं [२५, २६] ।

१६. शूरः = वीर, शूर [३४], क्षयद्वीरः = शत्रु का नाश करनेवाला वीर [४८]; उग्रः, भीमः = उग्र, शूर वीर, भयानक कर्म करनेवाले [४०]

१७. विचिन्वत्कः = शूर वीर, बहादुर, चुन चुन कर शत्रुवीरों का वेध करनेवाला वीर [४६], विकिरिद्रः = विशेष नाश करनेवाला [५२]

१८. रथी = रथमें बैठनेवाला वीर [२६]

१९. अरथी = रथके विना युद्ध करनेमें प्रवीण वीर [२६]

२०. आशुरथ = जो त्वराके साथ रथयुद्ध करता है, त्वरासे रथ चलानेवाला वीर [३४]

२१. उगणा = शस्त्रास्त्रों को ऊपर उठाकर शत्रुपर हमला करनेवाली सेना का समूह [२४]

२२. आशुसेनः = अपनी सेनाको अतिशीघ्र तैयार करनेवाला वीर, अपनी सेनाको सदा सिद्ध रखनेवाला वीर [३४]

२३. श्रुतसेनः = जिस सेनाका यश चारों ओर फैला हो, विख्यात, यशस्वी, सदा विजयी सेनापति [३५]

२४. सेनानी = सेनाको कुशलता के साथ चलानेवाला सेनापति [२६]

२५. दुंदुभ्यः = नौबत, ढोल अथवा बाजेके साथ रहकर लडनेवाला सैन्य [३५]

२६. असिमान् = तलवारसे लडनेवाले सैनिक वीर [२१]

२७. इषुमान् = बाणोंका उपयोग करनेवाले, बाणोंको वर्तनेवाले वीर [२२, २९]

२८ सृकायी = तीक्ष्ण बाण अथवा भाला वर्तनेवाला वीर [२१]
सृकाहस्ताः = शस्त्र धारण करनेवाले [६१]

२९. निषङ्गी = खड्गधारी वीर [२०,२१, ३६]

३०. धन्वायी = धनुष्य धारण करके शत्रुपर चढाई करनेवाला वीर [२२]
आयुधी = शस्त्रोंको साथ रखनेवाला वीर [३६]

३१. शतधन्वा = सौ धनुष्योंका धारण करनेवाला वीर [२९]

३२. इषुधिमान् = बाणोंके तर्कसको पास रखनेवाला [२१, ३६]

३३. तीक्ष्णेषुः = तीखे बाणोंका उपयोग करनेवाला [३६]

३४. स्वायुधः = उत्तम आयुधोंको पास रखनेवाला [३६]

३५. सुधन्वन् = उत्तम धनुष्यका उपयोग करनेवाला [३६]

३६–३९. वर्मी, कवची, बिल्मी, वरूथी = विविध प्रकारके कवच धारण करनेवाला वीर [३५]

४०. कृत्स्नायतया धावन् = आकर्ण धनुष्य पूर्णतया खींचकर युद्धभूमिमें दौडनेवाला वीर [२०]

४१. निव्याधी [१८, २०] = शत्रुका निःशेष वेध करनेवाला वीर [२०]

४२. जिघांसत् = शत्रुकी कत्ल करनेवाला वीर [२१]

४३. विध्यत् = शत्रुका वेध करनेवाला [२३]

४४. अवभेदी = शत्रुको नीचे गिराकर उसको छिन्नभिन्न करनेवाला वीर [३४]

४५. हन्ता = शत्रुका हनन करनेवाला [४०]

४६. हनीयान् = शत्रुका संहार करनेवाला [४०]

४७. अभिघ्नत् = शत्रुपर प्रहार करनेवाला [४६]

४८. अग्रेवधः = अग्रभागमें रहकर शत्रुका वध करनेवाला [४०]

४९. दूरेवधः = दूरसे शत्रुका वध करनेवाला [४०]

५०. आहनन्यः = शत्रुपर आघात करनेवाला [३५] ढोलका शब्द करता हुआ शत्रुपर आक्रमण करनेवाला।

५१ धृष्णुः = शत्रुका वध करनेवाला साहसी वीर [१४,३६]

५२. विक्षिणत्क = शत्रुका नाश करनेवाला [४६]

५३. आनिर्हत = आसमन्तात् भागसे जिसने शत्रुका वध किया है [४६]

५४. सहमानः = शत्रुका पराभव करनेवाला [२०]

५५. आतन्वानः= धनुष्यकी प्रत्यंचा चढानेवाला वीर [२२]

५६. प्रतिदधानः = प्रत्यंचा चढाये धनुष्यपर बाण लगानेवाला [२२]

५७. आयच्छत् = धनुष्यकी डोरी खींचनेवाला वीर [२२]

५८. अस्यत् = शत्रुपर बाण फेंकनेवाला [२२]

५९. विसृजत् = शत्रुपर विशेष रूपसे बाण फेंकनेवाला [२३]

६०-६१. आखिदत् प्रखिदत् = शत्रुको खेद उत्पन्न करने योग्य आचरण करनेवाला वीर [४६]

६२-६३. आव्याधिनी [२४], आव्याधिनीनां पतिः [२०] = शत्रुसेनापर चारों ओरसे हमला करनेवाला वीर तथा ऐसी वीरसेनाका सेनापति ।

६४. विविध्यन्ती = विशेष रीतिसे शत्रुसेना का वेध करनेवाली प्रबल वीरसेना [२४]

६५. तृंहती = शत्रुका नाश करनेवाली वीरसेना [२४]

६६. अवसान्यः = अन्तिम भागपर खडा रहकर संरक्षण करनेवाला वीर [३३]

६७. पथीनां पतिः = मार्गस्थोंके रक्षक वीर [१७]

६८. मृगयुः= मृगया, अथवा शिकार करनेवाला वीर [२७]

ये वीरवर्ग अथवा क्षत्रियवर्गके नाम हैं। रुद्रोंके ही ये नाम हैं, जैसे ब्राह्मणवर्गके रुद्र पीछे दिये हैं, वैसे ही ये क्षत्रियवर्गके रुद्र हैं। जिस तरह ब्राह्मण रुद्र हैं, वैसे ही क्षत्रिय भी रुद्र हैं। अब वैश्यवर्गके रुद्र देखिये। वैश्यवर्गमें खेती और पशुपालन करनेवालोंका समावेश होता है, अतः उक्त मन्त्रोंमें वैश्यरुद्रोंका वर्णन देखिये—

वैश्यवर्गके रुद्र ।

वैश्यवर्गमें निम्नलिखित रुद्रोंका अन्तर्भाव हो सकता है—

१. वाणिजः = बनिया, व्योपारी, दूकानदारी करनेवाला [१९]

२. संग्रहीता = पदार्थों का संग्रह करनेवाला [२६] वारिवस्कृत् [१९] धनकी उत्पत्ति करनेवाला।

३-४. अन्धसस्पतिः [४७], अन्नानां पतिः [१८]= अन्नका पालनकर्ता, अन्नके लिये उपयोगी होनेवाले विविध धान्यादि पदार्थोंका पालन करनेवाला[४७,१८] ऐलबृदाः [६०] = अन्नकी वृद्धि करनेवाला।

५. वृक्षाणां पतिः = वृक्षवनस्पति आदिओं की पालना करनेवाला [१९]

६-७. पशुपतिः [२८], पशूनां पतिः [१७]=पशुओंका पालनेवाला।

८. अश्वपतिः = घोडोंको पालना करनेवाला [२४]

९-१०. श्वपतिः [२८], श्वनी [२७], कुत्तोंकी पालना करनेवाला।

११. पुष्टानां पतिः = पुष्टोंके स्वामी [१७]

१२. जगतां पतिः = चलनेवालोंका पालक [१८]

वैश्योंका कर्तव्य खेती, वृक्षसंवर्धन और पशुपालन है। यह कर्म करनेवाले ये रुद्र इस रुद्रसूक्तमें दीखते हैं। इस तरह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वर्गोंके रुद्रोंका वर्णन हमने यहां तक देखा। शूद्रवर्गके रुद्रोंका वर्णन अब देखना है। शूद्रोंमें सब कारीगरों का समावेश होता है। देखिये—

शिल्पिवर्गके रुद्र ।

पूर्वोक्त मंत्रोंमें निम्नलिखित रुद्र शिल्पिवर्गके आ गये है—

१. सूतः = सारथी, रथ चलानेवाला, घोडोंको शिक्षा देनेवाला, भाट और वीरोंकी कथाओंको सुनानेवाला।

२-४. क्षत्ता [२६], तक्षा [२७], रथकारः [२७]= वढई, तर्खाण, रथ वनानेवाला, लकडीका काम करनेवाला [२६]

५-६. धनुष्कृत , इषुकृत = धनुष्य और वाण वनानेवाला कारीगर [४६]

७. कर्मारः = लुहार, लोहेका अथवा धातुका कार्य करनेवाला [२७]

८. कुलालः = कुम्हार [२७]

९. निषादः = जंगलमें रहनेवाला, जंगली आदमी, सभामें [नि-साद] सबसे नीचे बैठने योग्य [२७]

१०. पुंजि-ष्ठ = टोलियां वनाकर रहनेवाले लोग [२७]

११. गिरि-चरः [२२] गिरिशयः [२९] गिरिशन्त [२] पहाडियोंपर घूमनेवाला, पहाडी लोग ।

१२. उत्तरण, प्रतरण, तार = नदीके पार करानेवाला, नदीपार करानेमें कुशल [४२]

१३. अहन्तिः सूतः = हननसे वचानेवाला सूत [१८]

ये नाम प्रायः कारीगरोंके तथा अन्यान्य व्यवहार करनेवालों के वाचक हैं । अर्थात् शूद्रों के वाचक हैं । शूद्रोंमें जो कारीगरी कर नहीं सकते, वे परिचर्या, सेवा शुश्रूषा करके अपनी आजीविका करते हैं, उनके नाम उपर्युक्त रुद्रमंत्रों में ये हैं—

१४. परि-चरः – परिचारक, नौकर, सेवक, परिचर्या करनेवाले [२२]

१५. नि-चेरुः = नौकरी करनेवाला, नीचे के स्थानमें रहनेयोग्य [२०]

१६. जघन्यः – हीन, अन्त्यज, नीच वृत्तिका मनुष्य, अधःपतित मनुष्य [३२]

ये नाम शूद्रवर्ग के हैं । इनमें 'परिचर' नाम परिचर्या करनेवाले का स्पष्ट है । लुहार, वढई आदि के नाम भी सब को मालूम हैं । शूद्रों में दो भेद हैं, एक सच्छूद्र कहलाते हैं । जो कारीगरीके द्वारा अपनी आजीविका प्राप्त करके निर्वाह करते हैं और दूसरे असच्छूद्र हैं; जो सेवा करके आजीविका प्राप्त करते हैं। इन दोनों प्रकारके शूद्रों का वर्णन पूर्वोक्त शब्दोंद्वारा हुआ है ।

यहां तक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्गोंके अर्थात् ज्ञानी, शूर, व्यापारी और कारीगर इन चार प्रकार के व्यवसायियों के नाम रुद्र के नामों में दीखते हैं । वे सब रुद्र के रूप हैं । रुद्रदेवता इन रूपों में इस भूमिपर विचर रही है । रुद्रदेवता की भेट करनी हो, तो इन रूपों में रुद्र का दर्शन हो सकता है । रुद्र इन नाना रूपों में इस भूमिपर विचर रहा है । रुद्रदेवता के भक्त अपनी उपास्य देवता का दर्शन करें । वेद ने रुद्रदेवता का इस तरह प्रत्यक्ष साक्षात्कार कराया है । पाठक इस का स्वीकार करें ।

पाठक यह जानते हैं कि, ' रुद्र ' उसी अद्वितीय देव का नाम है, जिस को ' पुरुष, नारायण, अग्नि, इन्द्र ' आदि अनेक नाम दिये गये हैं ।

> **ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्**
> **बाहू राजन्यः कृतः ।**
> **ऊरू तदस्य यद् वैश्यः**
> **पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥** [ऋ० १०।९०।१२]

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णोंके लोग ये सब परमात्माके क्रमशः सिर, वाहू, पेट या जंघा तथा पांव हैं । अर्थात् चारों वर्ण मिलकर परमात्मा का शरीर है । परमात्मा के शरीरके ये चार अवयव हैं । इस परमात्मा को आत्मा, ब्रह्म, पुरुष, नारायण या रुद्र आदि नामों से पुकारते हैं । रुद्र और नारायण एक ही देव है । एक ही देवताके ये दो नाम हैं । इसलिये जो वर्णन नारायणपुरुष का पुरुषसूक्त में हुआ है, वही वर्णन रुद्र का विस्तार से रुद्रसूक्त में दिखाई दिया, तो वह उचित ही है ।

यहां पाठक देखें कि, पुरुषसूक्त में जो वर्णन अतिसंक्षेप से है, वही वर्णन रुद्रसूक्त में विस्तार से है । पुरुषसूक्त में पुरुष-नारायण-देवता के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये लोग अवयव हैं, ऐसा कहा है और रुद्रसूक्त में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र वर्गों के कई नाम गिनाये हैं । अर्थात् पुरुषसूक्त का यह विस्तार से स्पष्टीकरण है । इस रुद्रसूक्तमें ये रुद्र के रूप हैं, ऐसा कहा है; और इन रुद्र को नमस्कार किया है । ये उपास्य और संसेव्य हैं, ऐसा यहां वताया है ।

मानवों को जो परमात्मा संसेव्य है, वह ज्ञानी, शूर, व्यापारी और सेवक रूप से इस भूमिपर विचरनेवाला ही परमात्मा है । यह बात इस रुद्रसूक्त के मनन से सिद्ध हो रही है । परमात्मा सब रूपों में इस भूमि पर विचर रहा है, इन में मानवों के रूप भी हैं । हमें परमात्मा की सेवा करके कृतकृत्य बनना है, तो हमें इन मानवों की–जनतारूपी जनार्दन की सेवा करना उचित है । वेदका यही धर्म है, पर आज मानवों की सेवा अपनी

छलकपट के लिये करने का भाव समाज से दूर हुआ है और अन्यान्य उपासनाएं प्रचलित हुई हैं ! ! वैदिक धर्म से जनता कितनी दूर जा रही है, इसका विचार यहां इस विवेक से हो सकता है।

चार वर्णों के रुद्र।

चार वर्णों के चार वर्गों में जो रुद्र होते हैं, उनकी गणना इस के लेख में की है, परन्तु यहां ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य ये नाम नहीं आते हैं। इसलिये पाठकोंके मनमें सन्देह हो सकता है कि, ये नाम चार वर्णों के कैसे माने जायेंगे? इस शंकाका निवारण यजुर्वेदकी मैत्रायणी-संहिता में किया है, वह मन्त्र अब देखिये—

नमो ब्राह्मणेभ्यो राजन्येभ्यश्च वो नमः।
नमः सूतेभ्यो विश्येभ्यश्च वो नमः॥
(मैत्रायणी सं० २।९।५)

'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और सूत संज्ञक रुद्रों को मैं प्रणाम करता हूं।' यहां शूद्र नाम नहीं है, पर 'सूत' नाम है, जो शूद्र का वाचक है। अन्य तीन नाम हैं। इस से सिद्ध होता है कि, चारों वर्णों के लोग रुद्र देवताके रूप हैं। इसलिये इस विषय में अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है।

पूर्वोक्त चार वर्णों के रुद्रोंमें ही संपूर्ण जनता समाप्त नहीं होती है। जिनको दुष्ट डाकू आदि कहा जाता है, उन रूपों में भी रुद्रदेवता हमारे सम्मुख उपस्थित होती है, देखिये—

आततायी वर्ग के रुद्र।

१. **आततायी** = घातपात करनेवाला [१८] शस्त्र सज्ज करके हमला करनेवाला घातक।

२-५. **स्तेनानां पतिः** [२०], **तस्कराणां पतिः** [२१], **मुष्णतां पतिः** [२१], **स्तायूनां पतिः** [२१] = चोर, डाकू, लुटेरे, ठगनेवाले।

६-८. **वञ्चत्** [२१], **परिवञ्चत्** [२१] = धोखेबाज, फरेबी, मक्कार, कपटी, छल करनेवाला।

९ **लोप्यः** = नियमों का लोप करनेवाला, नियमों का उल्लंघन करनेवाला [४५]।

१०. **नक्तं चरत्** = रात्री के समय दुष्ट इच्छा से भ्रमण करनेवाला [२१]

ये नाम चोर, डाकू, लुटेरे, आततायी दुष्टोंके हैं। निःसंदेह ये दुष्ट भाववाले मानवों के वाचक हैं। परन्तु ये भी रुद्र के ही रूप हैं। जिस तरह ज्ञानदाता ब्राह्मण, सब के पालन करनेवाले क्षत्रिय, सब के पोषणकर्ता वैश्य और सबकी सहायतार्थ कर्म करनेवाले शूद्र रुद्रके रूप हैं, उसी तरह चोरी करके लोगों को लूटनेवाले भी रुद्र के ही रूप हैं।

पाठकों को यह मानने के लिये बडा कठिन कार्य है। चोर भी परमात्मा का अंश है। क्या यह सत्य नहीं है? भगवद्गीता में कहा है कि—

मम एव अंशः जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
[भ. गी. १५।७]

'मेरा ही सनातन एक अंश जीवलोकमें जीव होता है।' यदि मानवों का जीव परमात्मा का अंश है, तब तो वह जैसा ज्ञानी योगियों का जीव परमात्मा का अंश है, वैसा ही दुष्ट डाकुओं का भी जीव परमात्मा का ही अंश है। जीवमात्र परमात्मा का अंश है, यह जैसा भगवद्गीता में कहा है, वैसा ही वेद में- पुरुषसूक्त में भी कहा है। पुरुष का एक अंश इस विश्वमें बारंबार जन्मता है, यह बात पुरुषसूक्त में कही है। अस्तु, इस तरह चार वर्णोंके मानवों का जीव जैसा परमात्मा का अंश है, वैसा ही चोर, डाकू, लुटेरे दुष्टों का भी जीव परमात्माका ही अंश है। तत्त्वतः सब की एकता है।

इसी तरह आंख में सूर्य का अंश, जिह्वा में जल का अंश, नासिकामें पृथ्वीका अंश और अन्यान्य इंद्रियों में और अवयवों में अन्यान्य देवताओं के अंश आकर बसे हैं। ये जैसे सत्पुरुषके देह में बसे हैं, वैसे ही दुष्ट दुर्जनोंके देहों में भी बसे हैं। देवताओं के अंशों के निवास की दृष्टि से भी सब मानवों की, सब प्राणियों की समता है। इस रीति से ३३ देवताओं के अंश और परमात्मा का अंश शरीर में आकर रहे हैं, इस दृष्टि से सब के देह समान हैं। प्रत्येक देह में ३३ देवताओं के अंशों के साथ परमात्मा का अंश रहता है। देह सज्जन का हो या दुर्जन का, उसमें परमात्माके अंशके साथ देवताओं के अंश रहते ही हैं।

अतः वेद का कथन यह है कि, जिस तरह चार वर्णों में विद्यमान जनता संसेव्य है, उसी तरह चोर, डाकू आदि भी वैसे ही संसेव्य हैं। पर सज्जनों की अपेक्षा दुर्जनों की सेवा अधिक प्रेमसे करनी चाहिये, क्योंकि इन दुष्ट मानवों की

दुष्टता उन के शारीरिक और मानसिक विकृति के कारण होती है।

सेवा उसकी करनी चाहिये, जिस के लिये सेवाकी आवश्यकता है। जैसे किसीको सर्दी लगती हो, तो उसको कंबल देना चाहिये, प्यासेको जल, भूखेको अन्न, रोगीको दवा आदि देना सेवा है। जो तृप्त है, उसको अन्न देना सेवा नहीं है। सर्वत्र न्यूनता, हीनता, विकृतता की पूर्तिके लिये ही सेवा हुआ करती है। रोगी-की सेवा शुश्रूषा उसमें उत्पन्न विकार अथवा न्यूनता को दूर करनेके लिये की जानी चाहिये। इसी तरह चोर, डाकू, आततायी, लुटेरे, ठग, कपटी आदि जो गुनहगार हैं, वे यकृत, प्लीहा या मस्तिष्क की विकृतिके कारण अथवा सामाजिक, आर्थिक या राजकीय दोषोंके कारण गुनाह करनेके लिये प्रवृत्त होते हैं। देखिये, यकृत बिगडनेसे मस्तिष्क बिगडता है और क्रोधी प्रकृति बनती है, जिसका परिणाम खून करनेतक होता है। दरिद्रताके कारण त्रस्त हुआ मनुष्य चोरी की ओर झुकता है। इसी तरह अन्यान्य कुप्रवृत्तियोंके कारण शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, सामाजिक अथवा राजकीय विकृतियाँ उत्पन्न होती हैं। इसलिये जैसे ज्वरके रोगी चिकित्साद्वारा संसेव्य हैं, उसी तरह चोर, डाकू, खूनी, आततायी भी शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, सामाजिक अथवा राजकीय चिकित्सासे सेवा करनेयोग्य हैं।

आजकल इन चोर, डाकू आदिकोंको जेलखानेमें बंद करते हैं, कोडोंसे मारते हैं अथवा खूनियोंको फांसी देते हैं। पर वेद कहता है कि, ये भी वैसे ही रुद्रके अवतार हैं, जैसे उत्तम ब्राह्मण और श्रेष्ठ क्षत्रिय। अतः ये भी सेवाके योग्य हैं। उनकी सेवा करके जिन दोषोंके कारण उनमें कुप्रवृत्तियां उठीं, उनको दूर करके उनकी तनदुरुस्ती अथवा मनदुरुस्ती करनी चाहिये। सदैक्यवादकी भूमिकाके अनुकूल और वेदके द्वारा कथित उपदेशके अनुसार चोर भी ईश्वरका रूप है और वह भी सज्जनके समान ही सेवाके योग्य है। यदि ठीक तरह इस ईश्वरके रूपकी सेवा होगी, तो जो इस ईश्वरके रूपमें अप्रसन्नता थी, वहां सुप्रसन्नता होगी और वेही लोग समाजमें प्रसन्नता बढायेंगे। सदैक्यवादसे अर्थात वैदिक दृष्टिकोन धारण करनेसे इस तरह चोर और डाकू भी दिव्य भावप्रकाशनका अवसर मिलनेसे देवत्वको प्रकट कर सकते हैं। सेवा तो अप्रसन्नकी प्रसन्नता करनेके लिये ही की जाती है। इस विषयमें अधिक आगे लिखा जायगा। यहां किंचित् दिग्दर्शनमात्र लिखना पर्याप्त है।

यहांतक मानवी प्राणियोंके रुद्र के रूपों का वर्णन हुआ, अब अन्य प्राणियों के रूपों में जो रुद्र का अवतरण हुआ है, उस विषय में देखिये—

प्राणियों में रुद्र के रूप।

१. **अश्वः** = घोडा [२४]
२. **श्वा** = कुत्ता [२८]
३. **व्रज्यः** = व्रज अर्थात् ग्वालों के वाडोंमें पालनेयोग्य गौ आदि पशु [४४]
४. **गोष्ठ्यः** = गोशालामें पालनेयोग्य गौ आदि पशु [४४]
५. **शीभ्यः** = बैल आदि गतिमान् पशु [३१]
६. **गेह्यः** = घरोंमें पालनेयोग्य पशु, अर्थात् गाय, भैंस, बैल, कुत्ता, बिल्ली आदि पशु [४४]
७. **किरिकः** = किरिः = सूवर, सूकर [४६]
८. **तल्प्यः** = बिछोना, चारपाई, खटिया, तकिया आदि में जो कृमिकीट होते हैं, जिनको खटमल आदि नाम हैं, वे कृमि [४४]
९. **रेष्म्यः** = हिंसक कृमिकीट अथवा जीव [३९]
१०. **गह्वरेष्ठः** = घन जंगलों में, पहाडों की गुफा में रहनेवाले सिंह, व्याघ्र आदि पशु [४४], गुहा में रहनेवाले मनुष्य।
११. **इरिण्यः** = उजाड मैदान में, रेतीले स्थानमें, जो भूमि उपजाऊ नहीं है, वैसी भूमि में रहनेवाले, प्राणी अथवा कृमि [४३]
१२. **सिकत्यः** = रेतीले स्थान में रहनेवाले पशु अथवा कृमिकीट [४३]
१३. **किंशिलः** = पत्थरोंवाले स्थान में रहनेवाले पशु अथवा जीव [४३]
१४–१५. **पांसव्यः, रजस्यः** = धूली में रहनेवाले जीवजन्तु [४५]
१६–१७. **ऊर्व्यः** [४५], **उर्वर्यः** [३३], = उपजाऊ भूमिमें रहनेवाले जीव।
१८. **खल्यः** = खलियान मे जो जीव रहते हैं [३३]
१९. **सूर्व्यः** = [सु-ऊर्व्यः], उत्तम उपजाऊ भूमि में होनेवाला जीव [४५]
२०–२१. **शुष्क्यः** [४५], **अवर्ष्यः**, [३८], = शुष्क स्थानमें, वर्षा न होनेवाली भूमिमें होनेवाले जीवजन्तु।

२२-२३. हरित्यः [४५], वर्ष्यः [३८] = हरेभरे स्थानमें रहनेवाले, वर्षाके स्थानमें होनेवाले जीवजन्तु।

२४. अवट्यः = छोटे तालाव में रहनेवाले जीव [३८]

२५. उलप्यः = घास जहां उगता है, ऐसे स्थान में होनेवाले कृमि [४५]

२६. शष्प्यः = कोमल घासके ऊपर रहनेवाले कृमि [४२]

२७-२८. पर्णः, पर्णशद्ः = पत्तोंपर रहनेवाले जीव-जन्तु [४६]

२९-३०. पथ्यः [३७], प्रपथ्यः [४३], = मार्गो पर रहनेवाले जीव, मार्गोंके रक्षक।

३१. नीप्यः = पहाडके निम्न स्थानमें रहनेवाले प्राणी [३७] अथवा पहाडियों की तराईपर निवास करनेवाले मनुष्य।

३२. आतप्यः = धूपमें रहनेवाले प्राणी [३८]

३३. वात्यः = वायुरूप में रहनेवाले प्राणी [३९]

३४. वीध्र्यः = शुष्क अभ्ररूप में रहनेवाले [३८]

३५. मेघ्यः = मेघ में रहनेवाले प्राणी [३८]

३६-३७ काट्यः [३७, ४४], कूप्यः [३८] = कुवें में रहनेवाले प्राणी, कूप के पास रहनेवाले मनुष्य।

३८-३९. कुल्यः [३७], कूल्यः [४२] = जल-प्रवाहमें अथवा प्रवाहके समीप रहनेवाले प्राणी, जलप्रवाह के पास रहनेवाले मनुष्य।

३९. सरस्यः = तालाव के समीप अथवा तालाव में रहनेवाले जीव या मानव [३७]

४०. नादेयः = नदी में अथवा नदीके समीप रहनेवाले जीव या मानव [३१, ३७]

४१. वैशन्तः = छोटे तालावमें रहनेवाले जीव [३७] अथवा मनुष्य।

४२. तीर्थ्यः = तीर्थस्थान में रहनेवाले [४२], ये तीर्थानि प्रचरन्ति (६१) = जो तीर्थो में विचरते हैं, यात्री।

४३. ऊर्म्यः = लहरों में रहनेवाले [३१]

४४. प्रवाह्यः = प्रवाह में रहनेवाले [३१]

४५. पार्यः = परतीर में रहनेवाले [४२]

४६. अवार्यः = नदीके इधरके तीरपर रहनेवाले [४२]

४७. फेन्यः = जलके फेनमें रहनेवाले [४२]

४८. द्वीप्यः = द्वीपमें रहनेवाले, टापूमें रहनेवाले [३१]

४९. निवेष्प्यः = पानीके भंवरमें रहनेवाले [४४]

५०. क्षयणः = जहां पानी स्थिर रहता है, ऐसे स्थानमें रहनेवाले [४३]

ये सब रुद्र जलस्थानोंमें रहनेवाले प्राणियोंके रूप हैं। और देखिये—

५१. हृदय्यः = हृदयमें रहनेवाले (४४), हृदयको प्रिय लगनेवाले स्थानमें रहनेवाले।

५२. वास्तुपः = घरोंका संरक्षण करनेवाले [३९] पहरेदार।

५३. वास्तव्यः = घरोंमें रहनेवाले [३९]

' वास्तव्य तथा वास्तुप ' ये दो पद सर्वसाधारण मानव-जातिके वाचक हो सकते हैं। क्योंकि प्रायः मानव घरोंमें रहते और घरोंकी रक्षा करते हैं।

सर्वसाधारण रुद्र।

१. उपवीति = यज्ञोपवीत अथवा उत्तरीय धारण करने-वाले [१७]

२. उष्णीषी = पगडी अथवा साफा धारण करनेवाले [२२]

३. हिरण्यबाहुः = बाहुओंपर सुवर्णभूषण धारण करनेवाले [१७]

४. कपर्दी = जटा अथवा शिखा धारण करनेवाले [२९, ४८]

५. व्युप्तकेशः = जिनके बाल कटे हैं, हजामत बनाये हुए [२९], विशिखासः [५९] = शिखा न रखने-वाले, सिर मुंडन करनेवाले।

६. सोम्यः = शान्त [३९]

७. याम्यः = नियममें रहनेवाले [३३]

८. क्षेम्यः = आराम देनेवाले [३३], घरमें रहनेवाले,

९-११. आशु, शीघ्र्य, अजिर = शीघ्रता करने-वाले [३१]

१२-१९. महान् [२६], सवृद्ध [३०], पूर्वज [३२], ज्येष्ठ [३२], अग्र्य [३०], प्रथम [३०], बृहत् [३०], वर्षीयस् [३०], वृद्ध [३९], = बडा, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, पूर्वज।

२०-२६ अर्भक [२६], ह्रस्व [३०], वामन [३०], मध्यम [३२], अपरज [३२], कनिष्ठ, [३२] अवसान्य [३३] = छोटा, कनिष्ठ, बालक, निकृष्ट,

२७. बुध्न्य = तह में रहनेवाला [३२]

२८. अप्रगल्भ = अज्ञानी [३२]

२९-३०. ताम्र, अरुण [३९] = विलोहित [७,५२, ५८] बभ्रु [६], सस्पिंजर [१७] लाल रंगवाले,

३१. आक्रन्दयन्, उच्चैर्घोषः = गर्जना करनेवाला [१९]

३२. स्वपत् = सोनेवाला [२३]

३३. जाग्रत् = जागनेवाला [१६]

३४. शयानः = लेटनेवाला [२३]

३५. आसीनः = बैठनेवाला [२३]

३६. तिष्ठत् = खडा रहनेवाला [२३]

३७. धावत् = दौडनेवाला [२३]

यहां नानाविध प्राणियों के नाम हैं, तथापि इनमें कईपद मानवप्राणियोंके भी वाचक हो सकते हैं, जैसा देखिये- गव्हरेष्ठ [४४] यह पद सिंहव्याघ्रादि जंगली जानवरों का वाचक करके ऊपर दिया है, पर इस पदका अर्थ ' गुहा में रहनेवाला मानव ' भी हो सकता है। जो गुहामें रहता है, वह गव्हरेष्ठ है। इसी तरह ' नीप्य = [३७] पहाड की तराई पर रहनेवाला ' यह मानव भी हो सकता है, क्योंकि पहाडों की तराई पर मनुष्य भी रहते हैं। ' कूल्य ' [४२] = नदीतीरपर रहनेवाला यह जैसा मानव, वैसाही अन्य प्राणी भी होना संभव है। इसी तरह अन्ततक समझना उचित है। ये पद प्राणियोंके वाचक हैं, फिर ये प्राणी मनुष्य हों अथवा अन्य हों। ये सब रुद्रदेवता के रूप हैं।

वास्तुपः— [३९] यह पद घरोंकी सुरक्षा के लिये जो पहरेदार होते हैं, उन का वाचक है। आगे ' **उपवीति** ' [१७] आदि शब्द मानवों के ही वाचक हैं। **व्युप्तकेश** [हजामत किये हुए], **विशिखासः** [शिखारहित, संन्यासी] ये सब निःसंदेह मानवही हैं।

इस के आगे [३२-३७] जागनेवाले, सोनेवाले, लेटनेवाले, बैठनेवाले, दौडनेवाले ये सब जाति के प्राणी हो सकते हैं, क्योंकि सभी प्राणी इन क्रियाओं को करते हैं।

१२ से २६ तकके शब्द भी बालक-वृद्ध, जवान-तरुण, मध्यम-कनिष्ठ आदि अवस्थाओं के वाचक हैं, अतः ये पद सब प्राणियों के लिये प्रयुक्त हो सकते हैं। अतः इन अवस्थाओंमें रहनेवाले सभी प्राणी रुद्रदेवता के रूप हैं। बालक, तरुण, वृद्ध ये सब रुद्र हैं, अर्थात सभी प्राणी रुद्र हैं।

यहां प्राणियों की कोई भी अवस्था छूटी नहीं है, अर्थात् सब अवस्थाओं में विद्यमान सब प्राणी रुद्रदेवता के रूप हैं, यह यहां सिद्ध हुआ। पशुपक्षी, मानव, कृमिकीट, पतंग सभी रुद्र के रूप हैं। इसी तरह सूक्ष्म कृमि भी रुद्र हैं, जो जलों और अन्नोंद्वारा मनुष्यादि प्राणियों में प्रविष्ट होकर नाना प्रकारके रोग उत्पन्न करते हैं। इनकी भयानकता प्रसिद्ध है—

सूक्ष्म रुद्र।

ये अन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान्।
(वा. १६-६२)

जो अन्नों में तथा जलमें रहते हैं और अन्न खानेवालों तथा जल पीनेवालों में नाना प्रकार की पीडा उत्पन्न करते हैं, ये भी सूक्ष्म रोगकृमि रुद्र के रूप हैं।

वृक्षरूपी रुद्र।

१. **वृक्ष** (४०) = वृक्ष, पेड, वनस्पति।

२. **हरिकेश** (३०) = हरे रंगवाले पत्तेरूपी केश जिनको होते हैं, ऐसे।

इस तरह वृक्षवनस्पति भी रुद्र के रूप हैं।

ईश्वरवाचक रुद्र।

अब ईश्वरको इस रुद्रसूक्तमें ' विश्वरूपं ' कहा है। क्योंकि जब सभी रूप परमात्मा के हैं, तब विश्व के सब रूपों को कहां तक गिना जाय? एक वार ' **विश्वरूप** ' कहा, तो उसमें सब रूप आ गये, इसलिये ये नाम देखिये—

१. **विश्वरूपः** (२५) = विश्वका रूप धारण करनेवाला,

२. **विरूप** (२५) = विविध रूप धारण करनेवाला,

३. **भव** (२८) = सबका उत्पादक,

४. **शर्व** (२८) = प्रलयकर्ता,

५. **भगवः, ईशानः** (४३) = भगवान्, ईश्वर,

६. **भवस्य हेतिः** (१८) = संसार के दुःखों को दूर करने का साधन।

ईश्वर सब का कल्याण करता है, इसलिये निम्न लिखित पद उस में सार्थ होते हैं—

कल्याणकारी रुद्र।

३८-४०. **शिव, शिवतर** (४१), **शिवतम** (५१) = कल्याण करनेवाला।

४१-४२. शंभु, शंकर (४१) = शांति करनेवाला।
४३-४४. मयोभव, मयस्कर (४१) = सुख देनेवाला।
४५. अघोर (२) = जो भयानक नहीं है, जो शांत है।
४६. सुमंगल (६) = जो मंगल है।
४७. शंगु (४०) = शांतिसुख का दाता।
४८. मीढुष्टम (५१) = सुखदाता।
४९. त्विषीमत् (१७) = तेजस्वी।
५०. विद्युत्य (३८) = बिजली के समान तेजस्वी।
५१-५२. शिपिविष्ट, सहस्राक्षः (२९) = सहस्रों किरणों से युक्त, तेजस्वी।

यहां तक जो रुद्रदेवता का वर्णन हुआ, उससे पाठकों को पता लग सकता है कि, तमाम विश्वरूप ही परमेश्वर का रूप है, इस रूप में सब रूप आ गये। सूर्य चंद्रके रूप, जल, पृथ्वी, अग्नि, विद्युत् के रूप, सब प्राणियोंके रूप, सब जन्तुओं के रूप इसमें आ गये हैं।

स्थावर-जंगम में राज्ययन्त्रके कर्मचारी, राजा, मन्त्री, नाना प्रकारके ओहदेदार, प्रजाजन, सैनिक, योद्धा, क्षत्रिय, स्त्रियां, बालक, वृद्ध, तरुण, पशुपक्षी आदि सब आते हैं, जो परमात्मा के ही रूप हैं। यही तो सदैक्यवादद्वारा बताया जा रहा है। इसलिये परमेश्वर के रूप में राज्ययंत्र का अन्तर्भाव होना स्वाभाविक है। सब राज्य-यन्त्र ईश्वर का स्वरूप है। इस विषय में इस यजुर्वेद के रुद्राध्यायद्वारा जो गूढ उपदेश दिया है, वह इस लेख में प्रकट करना है।

रुद्रदेवता संहार की देवता है, पर वह संहार जनता की भलाई करने के उद्देश्य में होता है। इसलिये यह रुद्रदेवता संघटना का कार्य भी करती है। इस देवताद्वारा जो संहार होता है, वह संघटना के लिये ही होता है। इस लिये रुद्रदेवता संघटना के लिये सहायक देवता है, यह बात यहां भूलनी नहीं चाहिये।

रुद्रदेवता ईश्वर का ही रूप है। ईश्वर संहारकारी है, वैसा रचनाकारी भी है। इसलिये जन्म और मृत्यु ये दोनों उसी के रूप हैं। इसलिये संहार से घबराना योग्य नहीं है। जंगल तोडने के बाद उस लकडी से घर बनते हैं, अर्थात् वृक्षों का तोडना घरों के बनानेका सहायक है। इसी तरह संहार आगामी रचना के लिये आवश्यक ही है।

या ते रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाहा भेषजी।
शिवा रुतस्य भेषजी तया नो मृड जीवसे॥
(वा० य० १६।४९)

जिघांसद्भ्यः॥ २१॥ क्षयणाय च॥ ८३॥
(वा० य० १६)

रुद्रकी दो तनुएँ हैं। एक 'घोरा' तनु और दूसरी 'शिवा' तनु। रुद्र का घोर कर्म करनेवाला एक शरीर है और कल्याणकारक कर्म करनेवाला दूसरा शरीर है। इसीलिये इस रुद्र को जैसे 'शिव' कहते हैं, वैसे ही 'क्रूर' भी कहते हैं। अस्तु। इस से ज्ञात हो सकता है कि, इस देवताके मिष से जैसे विघटना के, तोडने के कार्यों का विधान है, वैसे ही संघटना के, संगठन के कार्यों का भी उल्लेख है। शत्रु के साथ लडना और उस का नाश करना, इसका एक विघटनाका कार्य है और राष्ट्रकी घटना करना इस का दूसरा संघटनाका कार्य है। यह दूसरा कार्य अब बताना है।

वा० यजु० के अ० १६, मं० २५ में "**नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमः, नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमः**" कहा है। यह गणपति-संस्था की महत्त्व की बात है। गणपतिके सहस्रनामों से '**गण, गणेश, गणपति, गणमण्डल, गणमण्डलाध्यक्ष, महागणपति**' आदि पद हैं। ये भी यहां देखने आवश्यक हैं। यही गणपति-संस्था रुद्र की शासनसंस्था में प्रधान कार्य करनेवाली संस्था है। गण और व्रात ये दो इन के संघटना के मूल भाग हैं।

गण और व्रात।

'व्रत' पालन करनेवालों के संघ का नाम 'व्रात' है और जो केवल एकत्र गिनाये गये हैं, उन का नाम '**गण**' है। '**गण्** संख्याने' धातु से '**गण**' शब्द बनता है, अतः इस का अर्थ जिनकी संख्या निश्चित की गयी है, जो गिने हैं, जिनकी गणना की गयी है, ऐसा होता है और एक व्रतसे, एक नियम से, एक उद्देश्य तथा एक ध्येय के कारण जो इकट्ठे कार्य कर रहे हैं, वे '**व्रात**' हैं। तीसरा एक संघटना बतानेवाला पद इस रुद्राध्याय में है, वह है '**पुञ्जिष्ठ**' अर्थात् पुञ्ज करके रहनेवाले, अनेक लोग मिलकर अपना जमाव बनाकर रहनेवाले। 'पुञ्ज' का अर्थ एकत्र मिलकर रहना है। रुद्रसंघटना के ये तीन भेद हैं।

वेदमें '**संभूति**' शब्द (वा. य. अ. ४०।९-११ में) आया है। कारीगरों की संघटना (व्यवसाय करनेवाली मंडली=

'कंपनी') के अर्थ में यह पद है। '**संभूति, संभवन, संभूयसमुत्थान**' आदि अनेक पद मिलकर व्यवसाय करने के अर्थ में भारतीय अर्थशास्त्र में प्रचलित हुए हैं। अनेक लोगोंने मिलकर बहुत धन इकट्ठा करके बडा व्यापारव्यवहार करने के अर्थ में ये पद प्राचीन काल से प्रयुक्त होते हैं। स्मृतियों और अर्थशास्त्र में इस तरह की संघटना के विषय में विस्तारपूर्वक उल्लेख हैं। यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय में उक्त '**संभूति, संभव**' ये पद मानवों के सांघिक जीवनविषयक व्यवहारके लिये आये हैं। पर रुद्राध्याय में इस पदका प्रयोग नहीं है, इसलिये हम यहाँ इस पदका विचार नहीं करेंगे।

गण, व्रात और पुञ्ज ये तीन पद रुद्र की संघटना के लिये इस रुद्राध्याय में प्रयुक्त हुए हैं, इसलिये इनका विचार हम यहाँ करेंगे।

१. '**गण**' पदसे 'गणना किये गये, गिने हुए लोग,'

२. '**व्रात**' पद से 'एक व्रत का पालन करनेवाले लोग,' और—

३. '**पुञ्ज**' पदसे 'एक जातिके लोग' बोधित होते हैं।

जनगणना करनेकी बात 'गण' पदसे बोधित होती है। रुद्रकी शासनसंस्थामें जनोंकी गणना की जाती थी, यह इससे सूचित होता है। विना गणना किये 'गण' बन ही नहीं सकते। इसलिये जहां गणोंका राज्य होता है, वहां जनगणना अवश्य होती है। महादेवके भूतगण प्रसिद्ध हैं। इन भूतगणोंमें जनगणना की जाती थी। ये ही गण रुद्रशासनमें प्रमुख घटक माने गये हैं।

एक नियमका पालन करनेवाले, एक कार्य करनेवाले, एक उद्देश्यसे संघटित हुए, एक ध्येयको माननेवाले जो लोग होंगे, उनके समूहका नाम '**व्रात**' है। कर्मव्यवसायसे, व्यापारव्यवहारसे ये व्रात नामक संघ निर्माण होते हैं। सैनिकोंके समूहों के भी ये नाम मरुत्सूक्तोंमें प्रसिद्ध हैं। एक ही उद्देश्यसे एक ही कर्ममें लगनेके कारण इनमें सांघिक बल बढा चढा रहता है।

पूर्वोक्त रुद्रसूक्तमें '**गण, गणपति, व्रात, व्रातपति**' ऐसे पद आये हैं। अर्थात् इन संघोंका एक अध्यक्ष भी रहता है। इस अध्यक्ष का कार्य अपने संघका हित करना होता है। (आजकल Union, Guild आदि श्रमजीवी लोगोंके संघ और उनके अध्यक्ष रहते हैं, वैसे ही यहां ये दीखते हैं।)

इससे पूर्व कहा है, '**गण, गणमण्डल, गणमहामण्डल**' ऐसे संघोंसे छोटे और मोटे संघ हुआ करते हैं। इसी तरह '**गणेश, गणपति, गणमण्डलेश, गणमहामण्डलाधिपति, महागणपति**' आदि नाम गणपतिसहस्रनामोंमें संघाधिपतियोंके दिये हैं। इससे इनके कर्तव्योंका ज्ञान हो सकता है और ये संघ अपने संघमें रहनेवाले लोगोंके लिये क्या कार्य करते हैं, इसका भी ज्ञान इन नामोंके मननसे हो सकता है।

'**पुञ्ज**' के लिये '**पुंजपति**' नहीं है। '**पुंजिष्ठ**' पद ही है। अर्थात् इस नामके संघमें कोई अध्यक्ष नहीं होता था। ये संघके सभी सदस्य मिलकर अपना प्रबंध किया करते थे।

पुंज के सदस्य इकट्ठे होते हैं और वे सबके सब अपना संघ का हित या प्रबंध करने के लिये जो कुछ करना होगा वह कर लेते हैं। इनके नाम से यह सिद्ध होता है कि, ये संघशासक हैं। इन संघशासकों में कोई एक मुखिया नहीं होता। अतः ये पूरे पूरे 'समाजशासक' होते हैं। इस पुंजव्यवस्था से गण और व्रात की व्यवस्थामें कुछ भिन्नता है। पाठक इस भेद को ध्यान में अवश्य धारण करें। पुंज का जाति के साथ संबंध है और ऐसा जातीय समाजशासन इस भरतखण्ड में कई जातियों में प्राचीन काल से इस समय तक प्रचलित है।

ये गण और व्रात संघ कार्य, व्यवहार, धंधा, उद्योग, सिद्धान्त या ध्येय के साथ संबंधित हैं। पुंज के समान जातिके या कुल के साथ संबंधित नहीं हैं। इसीलिये गण और व्रातके पूर्व दूसरे व्यवसायों का वाचक कोई पद अवश्य रखना चाहिये, तब इस व्यवस्था की कल्पना ठीक तरह ध्यानमें आ सकती है। वा० यजुर्वेदके १६ वें अध्यायमें ऐसे अनेक धंधोंके पद हैं, उनको इस के साथ जोड दें। देखिये, इससे ये संघ सिद्ध होते हैं—

धंधा	संघ
भिषक् (वैद्य)	भिषग्गण (वैद्यों का संघ)
वणिक् (वैश्य)	वणिग्गण (व्यापारियों का संघ)
क्षत्ता (बढई)	क्षत्तृगण (बढइयों का संघ)
तक्षा (तर्खाण)	तक्षगण (तर्खाणों का संघ)
रथकार (रथ बनानेवाला)	रथकारगण (गाडी बनानेवालों का संघ)
कुलाल (कुम्हार)	कुलालगण (कुम्हारों का संघ)

इस तरह कार्यव्यवहार करनेवाले धन्धेवालों के **गण** होते थे और शर्ते लगाकर, नियम बांधकर एक ध्येय से प्रेरित होकर

जो संघ बनते थे, वे '**व्रात**' कहलाते थे। उतने नियमों का, उतनी शर्तोंका ही बन्धन उन व्रातनामक संघवालोंपर रहता था। व्रात संघके सदस्य अन्य व्यवहारके लिये स्वतंत्र समझे जाते थे। 'गण' व्यवस्थामें हरएक सदस्यपर अन्य सदस्योंके हिताहितकी जिम्मेवारी पूर्णतया रहती थी, पर 'व्रात' व्यवस्थामें उतने निश्चित व्रतकी मर्यादा तक की ही यह जिम्मेवारी रहती थी। गणमें उत्तरदायित्व अधिक और व्रातमें नियमानुकूल मर्यादित रहता था। इस कारण गणमें प्रविष्ट होनेवालोंको लाभ भी अधिक होते थे और व्रातमें उसकी अपेक्षासे लाभ भी कम होते थे।

विचार करनेसे पता चलता है कि, गणसंस्थामें संमिलित होनेवाले सदस्योंका हित करनेका पूर्णतासे उत्तरदायित्व गणके अधिष्ठातापर रहता था। इसलिये गणेश अर्थात् गणके अधिष्ठाताको तथा गणपति अर्थात् गणके पालनकर्ताको गणके प्रत्येक सदस्यके हितकी सब जिम्मेवारी उठानी पडती थी। अर्थात् गणमें प्रविष्ट सदस्य बीमार हुआ, युद्धमें जखमी हुआ, किसी अन्य आपत्तिमें फँसा, तो ऐसी सब आपत्तियोंका निवारण करनेके लिये सुप्रबन्ध करनेका कार्य गणपतिको करना पडता था। यह भाव निम्नलिखित नामोंसे ज्ञात होता है– '**गणभीतिहर, गणदुःखप्रणाशन, गणभीत्यपहारक, गणसौख्यप्रद, गणाभीष्टकर, गणरक्षणकर्ता,**' ऐसे अनेक नाम हैं, जो बताते हैं कि गणोंका सब प्रकारसे हित करनेके लिये गणोंके अध्यक्षको अनेक प्रकारका योग्य प्रबंध करना पडता था।

'व्रात' के विषयमें जिम्मेवारी थोडी होती है। जिस नियम या शर्तसे वह व्रात संघटित होता था, उतना ही उत्तरदायित्व संघाधिपतिपर रहता था। अन्य बातोंके विषयमें उसको देखने की आवश्यकता नहीं होती थी।

गण व्यवस्थामें छोटीमोटी कई संस्थाएं थीं, जो निम्नलिखित नामोंसे ज्ञात हो सकती हैं– 'गणप, गणवर, गणेश, गणपति, गणाधीश, गणाग्रणी, गणाध्यक्ष, गणेश्वर, गणेकराट्, गणाधिराज, गणनायक, गणमण्डलाध्यक्ष' ये पद एक अर्थके वाचक नहीं हैं। प्रत्येक पदमें अधिकारका भेद है और तदनुसार छोटे या बडे संघका भी वह सूचक है।

गणमण्डलाध्यक्ष वह है, जो अनेक गणोंके संघोंका अध्यक्ष होता है। गणनायक वह है, जो गणोंको चलानेवाला है। गणप वह है कि जो गणोंका पालन करता है। ये सब पद गणशासन की प्रणाली बताते हैं। इन सबका विचार करनेसे इस शासनसम्बन्धी सब बातोंका पता लग सकता है, पर हमें इस लेखमें गणपतिसंस्थाका पूर्ण विचार करना नहीं है, प्रत्युत रुद्रशासनसंस्थाका विचार करना है। इसके अन्तर्गत गणपति पद होनेसे गणपतिसंस्थाका थोडासा विचार करना आवश्यक हुआ, अतः अतिसंक्षेपसे यह विचार यहां किया है।

अपना प्रकृत विषय ठीक तरह समझमें आनेके लिये यजुर्वेद अ. १६ में आये गण और गणपति का थोडासा अधिक विचार करना आवश्यक है। विचार करनेके लिये मान लीजिये कि, '**रथकार-गण**' है, अर्थात् गाडियाँ बनानेवालोंका एक संघ रुद्रके अधिराज्यमें स्थापन हुआ है। इसका एक अध्यक्ष होगा, जिसका नाम '**रथकार-गणेश**' होगा। इस अध्यक्षका प्रथम कर्तव्य है अपने संघमें स्थित सदस्योंकी गणना करना, एक पुस्तकमें अपने सदस्योंके नाम, स्थान तथा उनकी आवश्यकताओंका लेख तैयार करके सुरक्षित रखना। अपने गणको अर्थात् संघसदस्यको कार्य न होगा, तो उसको कार्य देना, भोजनका प्रबंध न होगा तो करना, बीमार होनेपर दवाका प्रबंध करना, अर्थात् काम लेना और उसके बदले दाम देना अथवा सुखसाधन देना। इतने वर्णनसे पाठकोंके मनमें यह बात आयी होगी कि, यह गणव्यवस्था कैसी होनी चाहिये।

'**गण-आर्ति-हर**' यह नाम इस प्रबंधकी सुव्यवस्था का सूचक है। गणव्यवस्थामें आये सदस्योंकी हरप्रकारकी आपत्तियोंको दूर करना गणनायकका कर्तव्य होता है और वह उसको करना ही पडता है। सदस्य कर्म करनेके जिम्मेवार हैं, शेष जिम्मेवारी नायकपर रहती है।

पाठक ऐसी कल्पना करें कि, इस **रथकार-गण** में १०० सदस्य होंगे, तो उन को उन के करनेयोग्य काम देना, उन से काम करवा लेना और उन को सुखसाधन समय पर देना, यह इस गणसंस्था में अध्यक्ष का मुख्य कर्तव्य है। ऐसा प्रबन्ध करने के लिये देशभर कैसी सुव्यवस्था रखना आवश्यक है, इस का विचार पाठक कर सकते हैं। यह रथकार-संघ के विषय में हुआ।

इस के पश्चात् ऐसे अनेक गणों का '**गण-मण्डल**' होता है। जिस में एक दूसरे के साथ सम्बन्ध रखनेवाले अनेक उपकारण गणों का परस्पर सम्मेलन होता है और अनेक 'गणमण्डलों' का मिलकर एक '**महागणमण्डल**' हुआ करता है।

हम पूर्वोक्त स्वाध्यायमें देखेंगे कि, गणमण्डल में रथकार-गण के साथ कौन से अन्य गण संमिलित हो सकते हैं। हमारे विचार से निम्नलिखित कारीगरोंका गणमण्डल रथकार-गणके साथ बन सकता है- (क्षत्तृगण) बढइयोंका संघ, (तक्षगण) तर्खाणों का संघ, (कर्मारगण) लुहारों का संघ, ये और ऐसे एक दूसरेके साथ सम्बन्ध रखनेवाले अनेक कारीगरों के गणोंका मिलकर यह गणमण्डल होगा।

इस गणमण्डल का एक अध्यक्ष होगा। उसका कर्तव्य सब गणों का हित करना होगा। इस तरह सदस्यों का गण, गणों का गणमण्डल और गणमण्डलों का महागणमण्डल होता है। ऐसा संघों का यह जाला देशभर फैला रहता है। यह है गणशासन की आयोजना।

रुद्रसूक्त में जो नाम गिनाये हैं, उन में जो कार्यव्यवहार के वाचक नाम हैं, उन सब के ऐसे गण हैं, ऐसा समझकर इस रुद्रशासनप्रणाली का विचार करना चाहिये; तब वैदिक गणशासन का महत्त्व ध्यान में आ सकता है। यहां प्रत्येक के संघ का स्वतन्त्र विचार करके लेख को व्यर्थ बढाने की आवश्यकता नहीं है। रुद्र की शासनव्यवस्था की कल्पना ही पाठकों को देना है। ऊपर दिये वर्णन से यह व्यवस्था पाठकों के मन में आ गयी होगी। इस तरह ब्राह्मणवर्ग में कई गण अथवा संघ, क्षत्रियों में अनेक गण अथवा संघ, इसी तरह वैश्य और शूद्रों में भी कार्यव्यवहार तथा व्यवसाय के गण बनाने से यह रुद्र-शासनप्रणाली परिपूर्ण होती है।

राष्ट्र में कोई मनुष्य गणव्यवस्था से बाहर नहीं रहने पाय, जिसके कर्म और व्यवहार की गणना नहीं हुई, ऐसा भी कोई मनुष्य नहीं रहना चाहिये। प्रत्येक मनुष्य को उसके करनेके लिये सुयोग्य कार्य मिलना चाहिये और उस कर्म के बदले उसको कर्मफलस्वरूप आवश्यक सुखसाधन प्राप्त होने चाहिये। यह इस गणव्यवस्था का मूल सूत्र है।

प्रत्येक मनुष्य को अपना कर्म उत्तम कुशलता के साथ समाप्त करना चाहिये, कर्म के फलस्वरूप सुखसाधन देना इस शासनसंस्था की जिम्मेवारी है। कर्म करनेपर हरएक को आवश्यक सुखसमाधान मिलने ही चाहिये। आवश्यक सुखसाधनों में रहने के लिये सुयोग्य स्थान, भोजन के लिये योग्य और आवश्यक अन्न, पीने के लिये उत्तम जल, ओढने के लिये आवश्यक वस्त्र, बीमारी की निवृत्ति के लिये चिकित्सा के साधन, धर्मसंस्कार के समय पर होनेकी व्यवस्था, विद्या की पढाईकी व्यवस्था और आध्यात्मिक उन्नति के लिये आवश्यक गुरूपदेश आदिका समावेश होना स्वाभाविक है। जो सदस्य उत्तम धर्मानुकूल रहेंगे, उनका इस व्यवस्था से कल्याण होगा। पर जो नियमभंग करेंगे, उनको कठोर दण्ड देना भी इस रुद्रशासन के प्रबंधद्वारा ही होता रहता है। उसमें क्षमा नहीं होगी !

रुद्रसूक्त में जो नाम कार्यव्यवहार करनेवालोंके गिनाये हैं, उतने ही कार्यव्यवहार करनेवाले हैं, ऐसी बात नहीं है। किसी देशविशेषमें इससे न्यून वा अधिक भी कार्यव्यवहार करनेवाले लोग हो सकते हैं। वहां की स्थिति के अनुसार न्यून वा अधिक गणों की व्यवस्था होगी। इस स्वाध्याय के वर्णन में इस रुद्रीय शासनव्यवस्था का पता लगने के लिये केवल सूचनामात्र उल्लेख है। इस अध्याय में '**गण, गणपति**' तथा '**व्रात, व्रातपति**' ऐसे नाम लिखकर इस गणशासन के व्यवहार की सूचना दी है। परन्तु प्रत्येक धंधेवाले के साथ '**गण**' शब्द इस अध्याय में लगाया नहीं है। वह उन धंधेवाले नामों के साथ लगाकर इस शासन की कल्पना पाठकों को करनी चाहिये, इसीलिये यह लेख लिखा है।

उक्त अध्याय में कई पद सर्वसामान्य भाव बतानेवाले हैं, उन्हें देखिये- (**उपवीती**) यज्ञोपवीतधारी, (**उष्णीषी**) पगडीधारी, (**कपर्दी**) शिखाधारी, (**व्युप्तकेश**) जिस के बाल कटे हैं। ये पद सामान्य हैं। प्रत्येक वर्णके लोगों को ये पद लगाये जा सकते हैं। 'उपवीती' पद तीन वर्णों के लिये प्रयुक्त हो सकता है, शेष तीनों पद सब मानवोंके लिये प्रयुक्त हो सकते हैं।

इसी तरह (स्वपत्) सोनेवाला, (जाग्रत्) जागनेवाला, (शयानः) लेटनेवाला, (आसीनः) बैठनेवाला आदि पद सर्वसामान्य मानवों के लिये अथवा प्राणियों के लिये लगाये जा सकते हैं। तथा (महान्) बडा, (ज्येष्ठ) श्रेष्ठ, (प्रथम) पहिला, (कनिष्ठ) छोटा आदि पद भी सामान्य पद हैं, जो हरएक प्राणी के लिये प्रयुक्त हो सकते हैं। ऐसे सामान्य पद इस अध्याय में कौनसे हैं, उनका पता पाठकों को उक्त पदों का अर्थ देखने से लग सकता है। ऐसे सर्वसामान्य पद छोडने चाहिये, और शेष पदों में जो पद कर्मधंधेके सूचक हैं, व्यापार व्यवहार के सूचक तथा विशेष उद्यम के सूचक हैं, उनके साथ ही यह '**गण**' पद अथवा '**व्रात**' पद लग सकता

है। ये 'गण, व्रात और पुंज' पद सब व्यवसायों के साथ लगनेवाले पद हैं। उदाहरणके लिये हम कुछ ऐसे गण बता देते हैं—

ब्राह्मणवर्ण में- **गृत्सगण** (कवियोंका संघ), **श्रुतगण** (श्रुतिशास्त्रज्ञों का संघ), **अधिवक्तृगण** (उपदेशक संघ), **भिषग्गण** (वैद्यों का संघ), इ. इ.

क्षत्रियवर्ण में- **क्षेत्रपति-गण** (खेतोंके मालिकों का संघ), **रथीगण** (रथियोंका संघ), **स्वायुधगण** (उत्तम हथियार चलानेवालों का संघ), **दूरेवधगण** (दूर से वध करनेवालों का संघ), इ. इ.

वैश्यवर्णमें- **वणिग्गण** (व्यापारियोंका संघ), **संग्रहीतृ-गण** (बडे बडे संग्रह [Store] करनेवालोंका संघ), **पशु-पतिगण** (पशुपालकों का संघ), इ. इ.

शूद्रवर्ण में- **रथकारगण** (गाडी बनानेवालों का संघ), **इषुकृद्गण** (बाण बनानेवालों का संघ), **कुलालगण** (कुम्हारों का संघ), **निषादगण** (निषादोंका संघ), इ. इ.

इस तरह इस रुद्राध्याय का विचार करके जितने धंधेवाले यहां हैं और जितने कल्पना में आ सकते हैं, उतनों के संघों की अर्थात् उतने गणोंकी अथवा व्रातोंकी कल्पना पाठक कर सकते हैं। इस तरह गणोंकी स्थापना के पश्चात् अनेक परस्पर सहायक गणोंका मिलकर एक गणमण्डल बनने की भी कल्पना पाठक करें। प्रत्येक गण का एक अध्यक्ष तथा गणमण्डल का प्रमुख बनाने का भी विचार इसी तरह हो सकता है। इस संस्था के अध्यक्ष वा प्रमुख का कर्तव्य पूर्व स्थानमें बताया ही है। गणके सब सदस्यों का ठीक तरह योगक्षेम चलाना संघप्रमुखों का कर्तव्य है। कर्म कुशलता से करना संघस्थों का कर्तव्य है। इस तरह विचार करनेसे निःसन्देह पता लग सकता है कि, यह गणशासन की आयोजना अत्यंत उत्तम है और बडी सुखदायी भी है।

इसमें कर्मकर्ताओं को चिंता नहीं है, प्रमुखों को ही चिंता रहती है। कर्मकर्ताको इतनी ही चिंता रहती है कि, अपनी कारीगरी की अत्यधिक उन्नति करना। सबका योगक्षेम गणव्यवस्थाके प्रबंधद्वारा यथायोग्य होता रहता है।

शिक्षाका प्रबंध ब्राह्मणों के द्वारा विनामूल्य होता रहता है। रक्षाका प्रबंध क्षत्रिय करते रहते हैं। इसी तरह वैश्यशूद्रों के व्यवसायों का प्रबंध होता रहता है। और सब मानवों का योगक्षेम चलता है।

'गणनायक' का कार्य गणके सदस्यों को चलाना है। यहां नायक का अर्थ अधिपति नहीं है, परन्तु नेता अर्थात् चालक है। आज क्या कर्तव्य करना चाहिये, इस विषय की योग्य संमति अपने सदस्यों को देकर जो अपने संघ से उत्तमोत्तम कार्य कराता रहता है, वही गणनायक होता है। गण का ईश, गण का पालक, गण का अधिपति, गण का नायक ये सब विभिन्न कर्तव्य बतानेवाले पद हैं। इनके विभिन्न कर्तव्य अच्छी तरह समझनेसे ही गणशासन का उपयोगित्व ठीक तरह ध्यान में आ सकता है।

गण का अधिष्ठाता जानता है कि, अपने संघ में कितने कर्मकर्ता हैं, किसको किस वस्तु की जरूरत है, उस की आवश्यकता की पूर्तता किस तरह करनी चाहिये, अपने संघ में कौन बीमार है, किस वैद्य से उसकी चिकित्सा करनी योग्य है, आदि का विचार गण का अधिष्ठाता करता रहता है। गणमण्डल के अन्दर अनेक संघ संमिलित रहते हैं, उनके धंधोंका परस्पर संबंध रहता है और वे धंधे एक दूसरे के साहाय्यकारी रहते हैं। इसलिये गणमण्डल की सुव्यवस्थासे सब गणों का सुख बढता जाता है।

गणमण्डलों के मुख्य **महागणमण्डलाध्यक्ष** के पास सभी प्रकार की व्यवस्था रहती है। सारे कारीगरोंके सब पदार्थ उसके कार्यालयमें जमा होते हैं और आवश्यकताके अनुसार वह पदार्थों का लेनदेन करता है। अनावश्यक वस्तुओं के निर्माण पर वह प्रतिबंध रखता है, और आवश्यक वस्तुओं के निर्माण की प्रेरणा करता है। एक बार इस तरह की सुव्यवस्था की कल्पना पाठकोंके मनमें उतर गयी, तो वे ही इस सब व्यवस्था के विषय में उत्तम कल्पना अपने मन में कर सकते हैं। इस दृष्टि से यह वा० यजुर्वेद का १६ वॉ अध्याय विशेष अध्ययनीय है। साथ ही साथ वा० यजुर्वेद ३० वाँ अध्याय भी मनन-पूर्वक अध्ययन करनेयोग्य है। १६ वाँ अध्याय रुद्रदेवताके रूप बताने के लिये है और ३० वाँ अध्याय नारायण पुरुष के रूप बताने के लिये है। पर तत्त्वदृष्टि से दोनों का आशय एक ही है।

यह गणशासनव्यवस्था वेद की आदर्श शासनव्यवस्था है। इस से प्रजा का हित अधिक से अधिक हो सकता है। प्रजा

का सुख अधिक से अधिक करने के लिये इसी मार्ग से जाना चाहिये। इस में शासकों की व्यवस्था इस तरह रहती है—

१. **रुद्र** = (महारुद्र, महादेव) = सर्वाधिपति।

२. **मंत्री** = मन्त्री, सलाहकार।

३. **सभा, सभापति** = राष्ट्रसभा, राष्ट्रसभापति, ग्रामसभा, प्रांतसमिति, आमंत्रण (मन्त्रीमंडल)।

४, **गण, गणपति** = गणोंकी नाना प्रकार के संघों की व्यवस्था।

५. **व्रात, व्रातपति** = नाना प्रकार व्रतनिष्ठ संघों की व्यवस्था।

६. **पुञ्जिष्ठ** = मानवपुञ्जों की व्यवस्था।

यह व्यवस्था पूर्व स्थान में बतायी है। गण, महागण, गणमण्डल आदि बडे बडे संघों में से राष्ट्रसभा के सदस्य चुने जाते हैं और इस तरह राज्य का नियंत्रण होता रहता है और वहां प्रत्यक्ष जनताके साथ रातदिन रहनेवाले और जनता की स्थिति देखनेवाले ही लोग आते हैं, इसलिये उन का शासन जनहित का साधक होता है।

इस के साथ साथ निम्न लिखित कार्यकर्ता भी होते हैं—

७. **क्षेत्रपतिः** = खेतों की रक्षा करनेवाले,

८. **वनपतिः** = वनों की पालना करनेवाले,

९. **स्थपतिः** = स्थानों के पालनकर्ता,

१०. **कक्षाणां पतिः** = राष्ट्र की कक्षा चारों ओर की परिधि होती है, वहीं की सुरक्षा करने के लिये जो नियुक्त होते हैं, वे कक्षापति कहलाते हैं, गुप्त स्थानों के रक्षक।

११. **पत्तीनां पतिः** = पैदल विभाग के नेता,

१२. **सेना, सेनापतिः** = सब प्रकार की सेना और उस के अधिपति,

१३. **सेनानी** = सेना का संचालन करनेवाले,

१४. **आव्याधिनीनां पतिः** = हमला करनेवाली सेना के नेता।

इस तरह सेना की व्यवस्था इस रुद्रशासन में रहती है। इस रुद्राध्याय में सैनिकों के नाम बडे विस्तारपूर्वक दिये हैं। पाठक उन सब को यहां रखकर उन का कार्य राष्ट्ररक्षा में कितना है, इस का यथायोग्य विचार करें, उन सबको यहां पुनः लिखने की कोई आवश्यकता नहीं है।

१५. **वास्तुपः** = घरोंकी रक्षाके लिये नियुक्त पहरेदार,

१६. **वास्तव्यः** = लोग जहां रहते हैं, वहां रहनेवाला,

१७. **गह्वरेष्ठः** = गिरिकंदरों की रक्षाके लिये नियुक्त,

१८. **नादेयः, तीर्थ्यः** = नदी तैरकर पार होनेके स्थानपर रक्षा के लिये तथा सहायतार्थ नियुक्त,

१९. **नक्तंचरः** = रात्रीके समय घूमकर रक्षा करनेमें नियुक्त।

इस तरह अनेकानेक पदोंसे पाठक योग्य बोध प्राप्त कर सकते हैं और रुद्र की शासनव्यवस्थाका पता भी इस से लगा सकते हैं।

यहां पाठक देखें कि, रुद्राध्याय (वा. यजु. अ. १६) के विशेष सूक्ष्म रीति के इस अध्ययन से एक विशेष प्रकार की गणशासन की प्रणाली का बोध यहां हमें मिला है। यह वैदिक व्यवस्था है और प्रत्येक प्रजाजनको इससे लाभ हो सकता है। इस विषय में विस्तारपूर्वक बहुत कुछ स्पष्टीकरण करना आवश्यक है, परन्तु वैसा करने के लिये हमारे पास यहां स्थान नहीं है।

एक रुद्रके अनेक रूप हैं।

एक ही रुद्र के ये सब मानवी रूप हैं। गण, गणपति ये दोनों रुद्र के रूप हैं। मन्त्री और राजा, सेना और सेनापति, क्षेत्र और क्षेत्रपति, वणिक् और ग्राहक, शिष्य और गुरु ये सब रुद्र के रूप हैं। कोई मनुष्य, कोई प्राणी अथवा कोई वस्तु रुद्रका रूप नहीं, ऐसी वस्तु यहां नहीं है।

यहां राजा भी ईश्वर का रूप है और प्रजा भी। दोनों मिलकर एक ईश्वरके दो रूप हैं। राजा-प्रजा, गुरु-शिष्य, मालक-मजदूर, धनी-सेवक, ज्ञानी-अज्ञानी ये सब ईश्वरके ही रूप हैं, अतः ये परस्पर की सेवा करनेयोग्य हैं। एक सत्ता के ये अंश हैं। अतः सब की मिलकर एक ही सत्ता माननी चाहिये। यहां किसी की भी विभिन्न सत्ता नहीं है। हम सब एक ही जीवन के अंश हैं, यह जानकर परस्पर के सहायक व्यवहार हम सबको करने चाहिये।

जिस तरह एक शरीर में सिर, आंख, नाक, कान, मुख, जिह्वा, दांत, होट, गाल, बाहु, अंगुलियां, हात, पेट, पांव

आदि अनेक अवयव एक ही जीवनके अवयव हैं और पूर्णतया परस्पर सहायता करना इनका कर्तव्य है, सब का मिलकर एक जीवन है, यह जानना, मानना और उस एक जीवन के हितके लिये अपना समर्पण करना प्रत्येक अवयव का कर्तव्य है, उसी तरह सब मानव एक ही जीवनके अंश हैं, यह जानना, मानना और उस अखंड, अटूट, अनन्य एक जीवनका अत्यधिक हित करनेके लिये अपने जीवनको लगाना, अर्थात् पूर्ण की सेवाके लिये अंशने अपना अर्पण करना आवश्यक है।

जो लोग शंका करते हैं कि सदैक्यवादसे राष्ट्रीय शासन किस तरह होगा, राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रकी उन्नति तथा राष्ट्रीय संघटना किस तरह होगी, इस शंकाका उत्तर इस लेखमें दिया गया है। वेदने जनताकी उन्नतिके लिये '**सदैक्यवाद**' दिया और इस वादसे सिद्ध होनेवाला राष्ट्रीय संघटनाका आदर्श भी मानवोंके सम्मुख गणव्यवस्थाद्वारा रख दिया। सदैक्यवादसे अनन्यभावकी सिद्धता होती है और सब प्राणियोंका मिलकर एक अखण्ड और अटूट जीवन है, इसके विषयमें निश्चय होता है। इस निश्चयके पश्चात् व्यक्ति व्यक्तिकी, संघ संघकी तथा जाति जाति की सेवामें लगकर, परस्पर सेवाशुश्रूषासे जो सबकी उन्नति होती है, उस उन्नतिकी आयोजनाकी कल्पना इस गणसंस्थासे पाठकोंके मनमें स्थिर हो सकती है। इस तरह सदैक्यवादसे राष्ट्रोन्नति सिद्ध होती है और इससे मानवताका भी पूर्ण विकास हो सकता है।

इस रुद्राध्याय में सब प्राणी रुद्रके रूप हैं ऐसा कहकर संघटना का वैदिक संदेश दिया है। अन्य स्थानों में पुरुष, नारायण, आत्मा, ब्रह्म आदिके सब रूप हैं, ऐसा बता कर वही संदेश दिया है। सदैक्यवाद का तत्त्व यह है कि, सबके रूप भिन्न होने पर भी सब की सत्ता तत्त्वतः एक मानना। यहां तत्त्वतः भिन्न अनेक सत्ताएं नहीं हैं। इस सदैक्यवाद के सिद्धान्त को व्यवहार में लानेके लिये छोटे छोटे गणों में यह तत्त्व प्रथम आचरणद्वारा तथा परस्पर सेवाद्वारा सिद्ध करना चाहिये। पश्चात् गणों के, संघों के और राष्ट्रके व्यवहार में लाना चाहिये और अन्त में मानवों के व्यवहार में लाना योग्य है। इसका मार्ग जो वेद ने बताया है, वह यह है। इसका विचार पाठक करें।

अस्तु। रुद्रदेवताका स्वरूप और उसका कार्य इसका विचार यहांतक हुआ। पाठक रुद्रके मंत्रोंका अधिक विचार करें और वेदका आशय जाननेका यत्न करें। यहां रुद्रके संपूर्ण मंत्रोंका संग्रह इसी प्रकारके मनन के लिये इकट्ठा किया है।

मननीय विषय

'**रुद्र**' देवताका अतिव्यापक स्वरूप यहां बताया है। संपूर्ण विश्वमें एक ही एक रुद्र है। उस रुद्रके ये सब रूप हैं। रूप अनन्त होनेपर भी उन सबमें एक ही रुद्र व्याप रहा है। अर्थात् विभिन्न रूपोंमें एक अभिन्न देव रहा है।

यह केवल भारतमें ही है ऐसी बात नहीं है, परंतु भूमंडल पर जितने मानव या प्राणी हैं उन सबमें नाना रूपोंसे वही एक रुद्र विराजता है। इस रीतिसे विचार करनेपर तत्काल ध्यानमें आ जाता है, कि संपूर्ण पृथिवीपर रहनेवाली मानव जनता एक ही रुद्रके रूप हैं। यहां सब मानवोंकी एकता स्पष्ट सिद्ध हो रही है।

पृथिवीपर अनेक देश हैं। वे पृथक् पृथक् हैं ऐसा आज सब लोग मान रहे हैं। भारतके उत्तरमें तिब्बत है, पूर्वमें ब्रह्मदेश और चीन है, दक्षिणमें लंका है, पश्चिममें अफगाणिस्थान और ईरान है। इसी तरह युरोपमें, अमेरिकामें, आफ्रिकामें तथा आशियामें नाना देश हैं और उनमें नाना प्रकारके विभिन्न लोग हैं। आज ये देश आपसमें झगड रहे हैं, युद्ध कर रहे हैं और हम एक नहीं हैं ऐसा मान रहे हैं।

पर वेद कहता है कि यह सब '**विश्वरूप**' रुद्रका ही रूप है। किसी देशके ज्ञानी, शूर, वाणिज्यकर्ता और कारीगर ये सब रुद्रके ही रूप हैं। अर्थात् वेदकी दृष्टीसे ये सब विश्वके रूप एक रुद्रके ही रूप हैं। इस तरह वेदने सब विश्वको बताया है कि यह सब '**विश्वरूप**' एक अद्वितीय रुद्रका ही रूप है।

अर्थात् तत्त्वदृष्टीसे ये सब मानव प्राणी रुद्रके ही रूप हैं। इस तरह तत्त्वदृष्टीसे एकता वेदद्वारा प्रतिपादन की है। सब पृथिवी भरके लोगोंके मनमें यह बात आ जाय, तो उनको तत्त्वतः हम अविभक्त हैं, यह समझमें आ सकेगा और सबकी सेवा करना अपना धर्म है, यह बात ध्यानमें आ जायगी।

आज कई देश आगे बढे हैं और कई पीछे रहे हैं। आगे बढे हुए देशोंका कर्तव्य है कि, वे पीछे रहे हुओंकी सेवा करें और उनको उन्नत करें। ये लोग पीछे रहे हैं इसका दोष आगे बढे हुओंका है, यह एक बार वेदका उपदेश ध्यानमें आ जाय, तो सब झगडे मिट सकते हैं। विश्वरूप तत्त्वतः एक है, एक देह है, यह जाननेपर झगडेका मूल ही दूर हो सकता है।

श्रेष्ठ प्रचारक चाहिये

आज सब भूमंडलपर इस वैदिक ज्ञानका प्रचार करनेवाले श्रेष्ठ प्रचारक चाहिये। जो वेदके तत्त्वको जानकर, ठीक तरह समझ कर, उसका उत्तम रीतिसे प्रचार करें और विश्वसेवा करनेका धर्म सब देशोंमें प्रवृत्त करें।

वेदके प्रचारक ऐसे होने चाहिये, कि जो वेदका गुह्य अर्थ ठीक तरह समझें हों और जिनको वेदके वचन मुखोद्गत हों। तथा देशदेशकी भाषाएं जिनको आती हों। ऐसे प्रचारक विश्वभरमें वैदिक धर्मका प्रचार करनेके लिये जांय और एक एक देशमें इस धर्मतत्त्वका प्रचार करें तो सर्वत्र वैदिक धर्मका प्रचार हो सकता है।

वेदमें देवताका जो स्वरूप वर्णन किया है, वह यह है। यह पाठक समझें, इस विश्वमें विभिन्नता भी है और साथ साथ एकता भी है। जैसा हमारे शरीरमें आंख, नाक, कान, हाथ, पांवोंमें भिन्नता भी है और एक शरीरके ये अवयव हैं, इस कारण एकता भी है। वैसा ही पृथिवी भरकी मानवजातीके विषयमें समझना और सबको विश्वसेवामें लगना चाहिये।

प्रश्न

१ ज्ञानी पुरुष रुद्र हैं इसके कुछ वैदिक पद बताइये।
२ क्षत्रिय वर्गके रुद्रोंमें दस शब्द बताइये।
३ वैश्य वर्गके रुद्र बतानेवाले पांच पद बताइये।
४ शिल्पी वर्गके रुद्र पांच पदोंसे बताइये।
५ आततायी वर्ग रुद्रोंके कुछ नाम बताइये।
६ प्राणीयोंके स्वरूपमें रुद्र हैं उनके दस नाम लिखिये।
७ सर्वसाधारण रुद्रोंके रूप बतानेके लिये दस नाम लिखिये।
८ अन्न-पानीमेंसे रुद्र पेटमें जाते हैं और वहां रोग निर्माण करते हैं इसका वेदवचन क्या है?
९ ईश्वरवाचक रुद्रोंके नाम पांच बताइये।
१० 'गण' और 'व्रात' व्यवस्थामें कौनसा तत्त्व बताया है वह स्पष्ट कीजिये।
११ एक रुद्रके अनेक रूप हैं यह कैसे होता है यह बताइये।
१२ रुद्रका विश्वरूप किस तरह है यह विषय वेदवचन देकर समझाइये।

वेदके व्याख्यान

वेदोंमें नाना प्रकारके विषय हैं, उनको प्रकट करनेके लिये एक एक व्याख्यान दिया जा रहा है। ऐसे व्याख्यान २०० से अधिक होंगे और इनमें वेदोंके नाना विषयोंका स्पष्ट बोध हो जायगा।

मानवी व्यवहारके दिव्य संदेश वेद दे रहा है, उनको लेनेके लिये मनुष्योंको तैयार रहना चाहिये। वेदके उपदेश आचरणमें लानेसे ही मानवोंका कल्याण होना संभव है। इसलिये ये व्याख्यान हैं। इस समय तक ये व्याख्यान प्रकट हुए हैं।

१ मधुच्छन्दा ऋषिका अग्निमें आदर्श पुरुषका दर्शन।
२ वैदिक अर्थव्यवस्था और स्वामित्वका सिद्धान्त।
३ अपना स्वराज्य।
४ श्रेष्ठतम कर्म करनेकी शक्ति और सौ वर्षोंकी पूर्ण दीर्घायु।
५ व्यक्तिवाद और समाजवाद।
६ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।
७ वैयक्तिक जीवन और राष्ट्रीय उन्नति।
८ सप्त व्याहृतियाँ।
९ वैदिक राष्ट्रगीत।
१० वैदिक राष्ट्रशासन।
११ वेदोंका अध्ययन और अध्यापन।
१२ वेदका श्रीमद्भागवतमें दर्शन।
१३ प्रजापति संस्थाद्वारा राज्यशासन।
१४ त्रैत, द्वैत, अद्वैत और एकत्वके सिद्धान्त।
१५ क्या यह संपूर्ण विश्व मिथ्या है?
१६ ऋषियोंने वेदोंका संरक्षण किस तरह किया?
१७ वेदके संरक्षण और प्रचारके लिये आपने क्या किया है?
१८ देवत्व प्राप्त करनेका अनुष्ठान।
१९ जनताका हित करनेका कर्तव्य।
२० मानवके दिव्य देहकी सार्थकता।
२१ ऋषियोंके तपसे राष्ट्रका निर्माण।
२२ मानवके अन्दरकी श्रेष्ठ शक्ति।
२३ वेदमें दर्शाये विविध प्रकारके राज्यशासन।
२४ ऋषियोंके राज्यशासनका आदर्श।
२५ वैदिक समयकी राज्यशासन व्यवस्था।
२६ रक्षकोंके राक्षस।
२७ अपना मन शिवसंकल्प करनेवाला हो।
२८ मनका प्रचण्ड वेग।
२९ वेदकी दैवत संहिता और वैदिक सुभाषितोंका विषयवार संग्रह।
३० वैदिक समयकी सेनाव्यवस्था।
३१ वैदिक समयके सैन्यकी शिक्षा और रचना।
३२ वैदिक देवताओंकी व्यवस्था।
३३ वेदमें नगरोंकी और वनोंकी संरक्षण व्यवस्था।
३४ अपने शरीरमें देवताओंका निवास।
३५, ३६, ३७ वैदिक राज्यशासनमें आरोग्य-मन्त्रीके कार्य और व्यवहार।
३८ वेदोंके ऋषियोंके नाम और उनका महत्त्व।
३९ रुद्र देवताका परिचय।
४० रुद्र देवताका स्वरूप।
४१ उषा देवताका परिचय।
४२ आदित्योंके कार्य और उनकी लोकसेवा।
४३ विश्वेदेवा देवताका परिचय।

आगे व्याख्यान प्रकाशित होते जांयगे। प्रत्येक व्याख्यानका मूल्य ।≈) छः आने रहेगा। प्रत्येकका डा. व्य. ≈) दो आना रहेगा। दस व्याख्यानोंका एक पुस्तक सजिल्द लेना हो तो उस सजिल्द पुस्तकका मूल्य ५) होगा और डा. व्य. १॥) होगा।

मंत्री — स्वाध्यायमण्डल, पोस्ट- 'स्वाध्यायमण्डल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]

मुद्रक और प्रकाशक- व. श्री. सातवलेकर, भारत-मुद्रणालय, पोस्ट- 'स्वाध्याय-मंडल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]